नदेज्दा क्रूप्स्काया

श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण



प्रगति प्रकाशन

नदेज़्दा क्रूप्स्काया

श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण

प्रगति प्रकाशन

मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड

५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

अनुवादक : **योगेन्द्र नागपाल**

संकलन और टिप्पणियां : **फ़० स० ओज़ेरस्काया**

भूमिका : **म० न० स्कात्किन**

Н. К. Крупская

О ТРУДОВОМ ВОСПИТАНИИ И ОБУЧЕНИИ

на яз. хинди

Krupskaya N. K.

EDUCATION OF LABOUR AND THE UPBRINGING

in Hindi

सोवियत संघ में मुद्रित

K $\frac{4304000000-545}{014(01)-85}$ 369-85

विषय-सूची

संकलनकर्ता की ओर से

नदेज्दा कोन्स्तान्तीनोव्ना क्रूप्स्काया ने सोवियत जनता के इतिहास में एक साहसी क्रांतिकारी, लेनिन की हमविचार, सच्ची मित्र और संगिनी, प्रथम मार्क्सवादी शिक्षक और समाजवादी जनशिक्षा पद्धति की विलक्षण संस्थापक के रूप में स्थान पाया है।

इतिहास में ऐसे आदर्श सहबंध, महान प्रेम और आत्मिक समानता के, जैसे कि लेनिन और क्रूप्स्काया के बीच थे, विरले ही उदाहरण मिलते हैं। इन दोनों महान व्यक्तियों ने जन-कल्याण के लिए संघर्ष में अपने जीवन की आहुति दी।

क्रूप्स्काया लेनिन की घनिष्ठ सहयोगी थीं। लेनिन उन्हें अपने सभी विचारों और योजनाओं से, सामाजिक परिघटनाओं के मूल्यांकन से, मित्रों और शत्रुओं के बारे में अपनी राय से सदा अवगत कराते थे।

लेनिन के साथ और उनके मार्गदर्शन में क्रूप्स्काया ने पार्टी की स्थापना का काम किया। उन्हें किसी भी अन्य व्यक्ति से अधिक अच्छी तरह यह देखने का अवसर मिला कि लेनिन कैसे काम करते थे और यह जानने का भी कि क्या बातें लेनिन को उद्विग्न करती थीं और क्या प्रफुल्लित। कालांतर में क्रूप्स्काया ने लिखा था: "मुझे इल्यीच से (वह लेनिन को इसी नाम से पुकारती थीं – सं०) गहरा अनुराग था। जो कुछ उन्हें उद्विग्न करता था, वही सब मुझे भी उद्विग्न करता था। अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार मैं उनके काम में मदद करने का प्रयत्न करती थी।"

क्रूप्स्काया ने ही लेनिन की पहली और सबसे अच्छी जीवनी लिखी। लेनिन के बारे में उनके संस्मरण महान नेता के जीवन और कार्यकलापों की जानकारी का समृद्ध स्रोत हैं।

"इल्यीच के निधन के पश्चात मैं बारंबार वह सब पढ़ने लगी, जो उन्होंने संस्कृति के बारे में लिखा था, और तब से मैं अनचाहे ही सभी लेखों को इल्यीच के शब्दों के प्रसंग में देखती हूं," क्रूप्स्काया ने लिखा था।

शिक्षा, चरित्र-निर्माण, संस्कृति और कला के प्रश्नों पर लेनिन के कथनों के संकलन, अध्ययन और प्रचार का काम क्रूप्स्काया ने ही शुरू किया था।

नदेज्दा कोन्स्तान्तीनोव्ना क्रूप्स्काया का जन्म १४ (२६) फ़रवरी १८६९ को पीटर्सबर्ग में हुआ था। उनका परिवार अपने युग के अग्रणी सामाजिक विचारों से प्रभावित था। उनके पिता कोन्स्तान्तीन इग्नात्ये-विच क्रूप्स्की का सैनिक सेवा के दिनों में रूसी अफ़सरों के प्रगतिशील संगठन के साथ संपर्क बना था। सैनिक-विधिक अकादमी में शिक्षा पाने के पश्चात उन्हें उयेज़्द के प्रधान के पद पर पोलैंड में नियुक्त किया गया। यहां कोन्स्तान्तीन क्रूप्स्की इस बात का भरसक प्रयत्न करते रहे कि ज़ारशाही अधिकारी अत्याचार न कर पायें, स्थानीय जातियों को उत्पीड़ित न कर पायें। प्रवासियों के ज़रिए उनका प्रथम इंटरनेशनल के साथ संबंध था। उन पर क्रांतिकारी विचार रखने का संदेह किया गया और अराजभक्त घोषित करके राजकीय सेवा से हटाकर उन पर मुकदमा चलाया गया। छह साल बाद (१८८० में) सीनेट (तत्कालीन रूस के सर्वोच्च अपील न्यायालय) ने उन्हें निर्दोष घोषित किया।

माता-पिता बेटी की शिक्षा-दीक्षा की ओर बहुत ध्यान देते थे, सामाजिक जीवन के अंधेरे पहलू कभी नहीं छिपाते थे, विभिन्न सामाजिक संस्तरों और जातियों के बच्चों के साथ मिलने-जुलने, खेलने के लिए उसे प्रोत्साहित करते थे।

नदेज्दा की चेतना का निर्माण बचपन की छापों तथा कठिनाइयों और अभावों के सम्मुख माता-पिता के साहस के उदाहरण के प्रभाव में हुआ।

बचपन में ही शिक्षा-कार्य, विशेषतः देहाती इलाकों में शिक्षा

कार्य में नदेज्दा की रुचि जाग गई थी। ग्रामीण अध्यापिका और क्रांतिकारी अ० त० यावोर्स्कीया ने तथा जिस प्राइवेट स्कूल में नदेज्दा पढ़ती थीं, उसके अग्रणी शिक्षकों ने उनकी इस रुचि को बढ़ाया।

१४ वर्ष की आयु में नदेज्दा पितृ-सुख से वचित हो गई। अब पढ़ने के साथ-साथ ट्यूशनें भी करनी पड़ीं।

वयस्क होकर नदेज्दा क्रूप्स्काया जनता की खुशहाली के लिए संघर्ष का अपना रास्ता खोजने लगीं। १८८९ में क्रूप्स्काया पीटर्सबर्ग में गणित की उच्च शिक्षा पाने लगीं और शीघ्र ही विद्यार्थी मंडली में शामिल होकर मार्क्स-एंगेल्स की रचनाओं का गहन अध्ययन करने लगीं। वह इस विश्वास पर पहुंचीं कि "...न तो इक्के-दुक्के लोगों के आतंक में और न ही तोलस्तोय के आत्म-परिष्कार में रास्ता खोजना चाहिए। शक्तिशाली मज़दूर आंदोलन ही असल रास्ता है।... मनुष्य जिस बड़े से बड़े सुख की कामना कर सकता है, वही मुझे मार्क्सवाद ने दिया है। यह है इस बात का ज्ञान कि किधर जाना चाहिए और उस ध्येय की अंतिम विजय में निश्चिंततापूर्ण विश्वास, जिससे अपना जीवन जोड़ा है।"

मज़दूरों के निकट आ पाने के लिए, उनका कुछ हित कर पाने के लिए १८९१ से क्रूप्स्काया पीटर्सबर्ग के एक मज़दूर इलाके में रविवारीय संध्या मज़दूर पाठशालाओं में पढ़ाने लगीं। यहां मज़दूरों के साथ उनका घनिष्ठ संपर्क बना। १८९६ में गिरफ़्तार होने तक वह यहां सक्रिय शिक्षा-कार्य और राजनीतिक कार्य करती रहीं। अपने क्रांतिकारी कार्य को क्रूप्स्काया ने कभी भी शिक्षा-कार्य से अलग नहीं किया, इस कार्य को वह पेशेवर क्रांतिकारी के अपने जीवन का एक अभिन्न अंग मानती थीं।

१८९३ में जब लेनिन पीटर्सबर्ग आ गये तो क्रूप्स्काया उनके द्वारा संचालित मार्क्सवादी मंडलियों और उनके द्वारा स्थापित 'मज़दूर वर्ग की मुक्ति के लिए संघर्ष करनेवाली लीग' में सक्रिय भाग लेने लगीं। उन्होंने लिखा है: "व्लादीमिर इल्यीच से मुलाकात होने से पहले ही हम दोनों क्रांतिकारी मार्क्सवादी बन चुके थे. इस बात की हमारे संयुक्त जीवन एवं कार्य पर छाप पड़ी।"

क्रूप्स्काया अपने छात्रों के ज़रिए मज़दूरों के साथ लेनिन का संपर्क

स्थापित कराने लगीं। सामान्य ध्येय क्रूप्स्काया और लेनिन को एक दूसरे के निकट लाता था और उसके आधार पर उनके बीच सच्ची मैत्री-भावना पनप रही थी।

क्रूप्स्काया पर पुलिस दिन-रात नज़र रखती थी। ज़ार की राजनीतिक पुलिस की एक रिपोर्ट में कहा गया था: "वह मज़दूरों और बुद्धिजीवियों के बीच मध्यस्थ का काम करती थी, मज़दूर मंडलियों को प्रचारक प्रदान करती थी।" १८९६ में क्रूप्स्काया को गिरफ़्तार करके ३ साल तक उफ़ा नगर में निर्वासित रहने की सज़ा सुना दी गयी। बड़ी मुश्किल से लेनिन की मंगेतर के नाते उन्होंने साइबेरिया के शूशेन्स्कोये गांव में, जहां इससे पहले लेनिन को निर्वासित किया गया था, सज़ा काटने की इजाज़त पाई। यहीं दोनों का विवाह हुआ।

निर्वास-काल में उनका जीवन घोर परिश्रम से परिपूर्ण था। क्रूप्स्काया पति के विविध कार्यों में उनकी मदद करती थीं। 'रूस में पूंजीवाद का विकास' नामक रचना लेनिन ने वहीं लिखी। क्रूप्स्काया ने इसकी नक़ल तैयार की। ब्रिटिश ट्रेडयूनियनवाद के सिद्धांत और व्यवहार पर अंग्रेज़ सामाजिक कार्यकर्ताओं बी० और एस० वैब की पुस्तक के अनुवाद में लेनिन की मदद की। लेनिन के प्रेम और ध्यान से, उनकी गहरी हार्दिकता से निर्वास के उनके कठोर दिन इतने कठोर न रहे।

लेनिन के परामर्श पर क्रूप्स्काया ने यहां निर्वास में ही अपनी पहली पुस्तक 'कामगर नारी' लिखी, जिसमें उन्होंने यह दिखाया कि रूस में कामगर नारी के जीवन की परिस्थितियां कितनी कठोर हैं, परिवार में, बच्चों के लालन-पालन में उसका क्या स्थान है। उन्होंने यह कल्पना की कि समाजवादी समाज में बच्चों के लालन-पालन का सार्वजनिक संगठन होगा, ऐसा स्कूल होगा, जो बच्चों की आत्मिक और शारीरिक शक्तियों का विकास करेगा, उन्हें गहरा ज्ञान देगा, उत्पादक श्रम की शिक्षा देगा। यह पुस्तिका १९०१ में विदेश में ही (म्यूनिक में) पहली बार प्रकाशित हुई।

लेनिन बड़े ध्यान से क्रूप्स्काया को सलाह-मशविरा देते थे, उनके लिए रोचक सामग्री ढूंढ़ते थे।

निर्वास की सज़ा का अंतिम वर्ष क्रूप्स्काया ने उफ़ा में ही काटा। वहां निर्वासित सामाजिक-जनवादियों के साथ उन्होंने संपर्क स्थापित

किया। वे यहां पढ़ाती थीं और 'समारस्काया गज़ेता' (समारा समाचार-पत्र) में शिक्षा संबंधी लेख लिखती थीं। लेनिन तब निर्वास की सज़ा काटने के पश्चात विदेश में रह रहे थे। अपनी सज़ा काटकर क्रूप्स्काया भी उनके पास म्यूनिक में चली गईं। विदेश-प्रवास की कठिन परिस्थितियों में वे पार्टी के गठन में लेनिन की प्रमुख सहायक थीं। लेनिन की यह धारणा थी कि अखिल रूसी मार्क्सवादी अवैध समाचार-पत्र की स्थापन मार्क्सवादी पार्टी के गठन का एक नितांत महत्वपूर्ण पूर्वाधार है। उन्होंने 'ईस्क्रा' (चिंगारी) समाचारपत्र निकालना शुरू किया। क्रूप्स्काया इसके संपादकमंडल की सचिव और एक सर्वाधिक सक्रिय कर्मी बनीं। सभी गोपनीय संबंध, रूस के सभी सामाजिक-जनवादी संगठनों के साथ पत्र-व्यवहार उनके हाथों में ही केंद्रित थे। 'इस्क्रा' में काम के वर्षों में क्रूप्स्काया ने सैकड़ों पत्र गूढ़लिपि में लिखे। 'इस्क्रा' के संपादकमंडल के सचिव के पद पर क्रूप्स्काया का कार्य उनकी क्रांतिकारी की जीवनी का एक ज्वलंत पृष्ठ है। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की दूसरी और तीसरी कांग्रेसों (१९०३ और १९०५) की तैयारी में और इनके कार्य में क्रूप्स्काया ने सक्रिय भाग लिया, लेनिन के सृजनात्मक कार्य में, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी (बो०) के कार्यक्रम का मसौदा तैयार करने में नानाविध सहायता की।

विदेश-प्रवास के दौरान अत्यंत महत्वपूर्ण पार्टी-कार्य करने के साथ-साथ क्रूप्स्काया ने शिक्षा के विषय पर रूसी और विदेशी साहित्य का अध्ययन किया, जेनेवा और पेरिस में उन्होंने स्कूल देखे, विदेशी भाषाओं का अपना ज्ञान सुधारने के लिए भी समय निकाला।

इसके साथ ही वह अपनी साधारण गृहस्थी भी चलाती थीं। वह ऐसा माहौल बनाने की कोशिश करती थीं, जिसमें लेनिन को अपने विशाल कार्य के लिए शक्ति बचाये रखने में मदद मिलती थी। उनके यहां आने-जानेवाले सभी दोस्तों का कहना था कि उनके घर में सादगी का वातावरण था, जिसमें किसी को कोई संकोच नहीं होता था।

लेनिन के एक सहयोगी व० बोंच-ब्रुयेविच ने अपने संस्मरणों में लिखा है: "निरंतर ध्यान, मित्र और साथी का बर्ताव, साथ रहने की, एक दूसरे को समाचार और अपने नये विचार बताने, राजनीतिक

जीवन की सभी महत्वपूर्ण बातों पर मिलकर विचार करने की कामना और परिश्रम के बाद मिलकर आराम करने जाना – ऐसे थे लेनिन परिवार में संबंध।"

१९०५–१९०७ की पहली रूसी क्रांति के दिनों में क्रूप्स्काया लेनिन के साथ पीटर्सबर्ग आईं। यहां वह क्रांतिकारी कार्य में जुट गईं। रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केंद्रीय समिति की सचिव के नाते उन्होंने १९०५ में ताम्मेरफ़ोर्स नगर में हुए पार्टी सम्मेलन में और १९०६ में स्टाकहोम में हुई पार्टी कांग्रेस में भाग लिया।

१९०७ में क्रांति की विफलता के बाद लेनिन और क्रूप्स्काया को फिर से रूस छोड़कर जेनेवा जाना पड़ा। और फिर से पार्टी-कार्य चला। क्रूप्स्काया १९०६–१९०९ के दौरान छपते रहे बोल्शेविक साप्ताहिक समाचारपत्र 'प्रोलेतारी' (सर्वहारा) और १९१०–१९११ में प्रकाशित अवैध समाचारपत्र 'रबोचाया गज़ेता' (मज़दूर अख़बार) की सचिव थीं, लेनिन द्वारा पेरिस के पास लोंजुमो में संगठित पार्टी स्कूल में विशाल संगठनात्मक और शिक्षण कार्य करती रहीं।

१९१२ के क्रांतिकारी उत्थान के दिनों में लेनिन और क्रूप्स्काया क्राकोव नगर में आ गये, ताकि रूस के अधिक पास हो सकें। रूस के साथ, वहां निकलने लगे अख़बार 'प्राव्दा' के साथ, राजकीय दूमा में बोल्शेविक गुट के साथ संपर्क स्थापित करने का सारा काम क्रूप्स्काया के कंधों पर ही पड़ा। वह रूस के २५० अवैध संगठनों के साथ पत्र-व्यवहार करती थीं।

लेनिन की पहलक़दमी पर १९१४ में पीटर्सबर्ग में 'रबोत्नित्सा' (कामगारिन) पत्रिका निकलने लगी। इसके संगठन का भी मुख्य काम क्रूप्स्काया ने किया। वह इस पत्रिका की एक प्रमुख कर्मी थीं। १९१५ में क्रूप्स्काया ने रूसी प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के रूप में बर्लिन में हुए अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में भाग लिया और यहां युद्ध के संबंध में बोल्शेविक कार्यक्रम का समर्थन किया।

दूसरी बार विदेश-प्रवास के दिनों में भी क्रूप्स्काया ने शिक्षाशास्त्र के प्रश्नों का गहन अध्ययन जारी रखा। उग्रपंथी पत्रिकाओं 'स्वोबोद्नोये वोस्पितानिये' (मुक्त चरित्र-निर्माण), 'रूस्कया श्कोला' (रूसी स्कूल) और 'प्रोस्विश्चेनिये (ज्ञान-प्रसार) में उनके लेख

छपते थे। पत्र-पत्रिकाओं में उठाई जा रही सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षा-संबंधी समस्याओं पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए क्रूप्स्काया ने ही रूस में सबसे पहले जनशिक्षा के प्रश्न मार्क्सवादी दृष्टिकोण से पेश किये।

बुर्जुआ स्कूली शिक्षा पद्धति का थोथापन उघाड़ते हुए क्रूप्स्काया ने उस नई पद्धति की रूप-रेखा इंगित की, जिसे मज़दूर वर्ग को समाजवादी समाज में बनाना होगा।

क्रूप्स्काया की सभी रचनाओं में यह विचार लाल सूत्र की तरह पिरोया गया है कि स्कूली शिक्षा और चरित्र-निर्माण "सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों पर" निर्भर होते हैं। उनका कहना था कि उदीयमान पीढ़ी के विश्वदृष्टिकोण और भावनाओं पर स्कूल का प्रभाव इस बात पर निर्भर है कि स्कूल किसके हाथों में है, उसमें कैसी भावनाएं व्याप्त हैं।

क्रूप्स्काया के कुछ लेखों ने मार्क्सवादी शिक्षाशास्त्र के कतिपय सिद्धांतों के निरूपण में बहुत बड़ी भूमिका अदा की।

क्रूप्स्काया सदा लेनिन की सहायता और समर्थन पाती थीं। लेनिन शिक्षा और चरित्र-निर्माण के प्रश्नों को नये समाज के लिए क्रांतिकारी संघर्ष का अभिन्न अंग मानते थे।

१९१३ में शिक्षा के प्रश्नों पर अखिल रूसी कांग्रेस हुई थी। इसकी तैयारी के दिनों में लेनिन और क्रूप्स्काया ने 'प्राव्दा' में ८ लेख छापे, ताकि शिक्षकों और मेहनतकश जनसमूह को स्कूली शिक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बोल्शेविकों के रुख से परिचित करा सकें।

लेनिन के परामर्श पर १९१५ में क्रूप्स्काया ने 'जनशिक्षा और जनवाद' शीर्षक से एक विशाल शोधग्रंथ तैयार किया, जो १९१७ में पहली बार छपा। यह श्रम-विद्यालय के विचार के विकास पर पहली मार्क्सवादी रचना है। इसमें क्रूप्स्काया ने यह दिखाया कि किस प्रकार जनशिक्षा के कार्य में बौद्धिक विकास के साथ उत्पादक श्रम को जोड़ने की आवश्यकता का विचार जनवादी हलकों में उत्पन्न और विकसित हुआ। इस ग्रंथ में पहली बार शिक्षा और चरित्र-निर्माण के प्रश्नों पर मार्क्स और एंगेल्स के विचार सुव्यवस्थित रूप से पेश किये गये; रूसो, पेस्तालोत्सी, ओवन तथा १७८९ की फ़्रांसीसी क्रांति के नेताओं

की शिक्षा संबंधी धरोहर के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण से रुख तय किया गया, स्कूली शिक्षा की पद्धति और व्यवहार पर तकनीकी प्रगति के प्रभाव पर ग़ौर किया गया। क्रूप्स्काया ने यह दिखाया कि कतिपय पश्चिमी देशों के विकास में नये सम्राज्यवादी चरण के कारण स्कूली शिक्षा में कैसे मौलिक परिवर्तन आये हैं। साथ ही उन्होंने शिक्षा संबंधी नवीनतम धाराओं का विश्लेषण भी किया। उनके समसामयिक लोगों का कहना है कि 'जनशिक्षा और जनवाद' वह पुस्तक थी, जिसे स्कूली शिक्षा संबंधी कार्यक्रम और नये विचार निरूपित करने के लिए तथा सोवियत सत्ता की स्थापना के बाद व्यावहारिक कार्य के लिए आधार माना गया।

'जनशिक्षा और जनवाद' पुस्तक से तथा अक्तूबर क्रांति से पहले लिखी गई दूसरी रचनाओं से क्रूप्स्काया ने ऐतिहासिक विकास द्वारा निर्धारित अपार महत्व का कार्यभार पूरा किया। यह कार्यभार था: क्रांति होने तक "शिक्षा मोर्चे" के आमूल पुनर्गठन की तैयारी कर लेना।

गोर्की के नाम पत्र में लेनिन ने क्रूप्स्काया की इस रचना का उच्च मूल्यांकन किया था।

फ़रवरी १९१७ में बुर्जुआ जनवादी क्रांति आरंभ होने के पश्चात लेनिन और क्रूप्स्काया अंततः कई वर्षों के प्रवास के बाद स्वदेश लौट पाये। क्रूप्स्काया ने महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की तैयारी के विराट कार्य में भाग लिया। पेत्रोग्राद के वीबोर्ग ज़िला दूमा में निर्वाचित होकर उन्होंने इसमें संस्कृति और शिक्षा विभाग का काम संभाला, जनसमूह में राजनीतिक ज्ञान-प्रसार का व्यापक कार्य किया, मज़दूरों के लिए स्कूल और मज़दूरों के बच्चों के लिए मुफ़्त भोजनालय खुलवाये, बाल-श्रम के उपयोग का विरोध किया, शिक्षा के क्षेत्र में पार्टी का कार्यक्रम लोगों को समझाया।

पार्टी के निर्देश पर क्रूप्स्काया ने मज़दूर युवाजन के समाजवादी संघ गठित करने में, देश के तरुणों में क्रांतिकारी आंदोलन फैलाने के काम में भाग लिया। क्रूप्स्काया को उचित ही तरुण आंदोलन का एक प्रवर्तक, युवाजन का मित्र और शिक्षक माना जाता है। अक्तूबर क्रांति की विजय के साथ क्रूप्स्काया के राजकीय और शिक्षा-कार्यों का

नया काल आरंभ हुआ।

सोवियत सत्ता के पहले दिनों से ही क्रूप्स्काया जनशिक्षा की सोवियत पद्धति बनाने के काम में जुट गईं। १६१८ से १६२६ तक वह रूसी संघात्मक जनतंत्र की शिक्षा कमिसारियत के आयोग की सदस्या रहीं, जनशिक्षा और ज्ञान-प्रसार के महत्वपूर्ण कार्यों का संचालन करती रहीं। १६२६ से १६३६ तक क्रूप्स्काया शिक्षा की उप-जन-कमिसार रहीं। ये सभी वर्ष नवोदित सोवियत जनतंत्र के अस्तित्व के लिए उग्र संघर्ष के, बुद्धिजीवियों द्वारा भीतरघात के वर्ष थे। उस देश में, जिसकी तीन चौथाई आबादी निरक्षर थी, जहां ४७ जातियों की अपनी लिपि नहीं थी, वहां जनशिक्षा की नई पद्धति की नींव रखनी थी: वर्गाधारित बुर्जुआ प्रकृति की पुरानी स्कूली शिक्षा व्यवस्था ख़त्म करनी थी, पुरानी पाठ्यपुस्तकें, पुरानी शिक्षा विधियां हटानी थीं, शिक्षकों में जो प्रतिगामी थे, उनका विरोध ख़त्म करना था। शुरू-शुरू में तो जनशिक्षा के संचालकों को अत्यंत कठिन स्थिति का सामना करना पड़ा: कोई अनुभव नहीं था, कोई यह नहीं जानता था कि नई स्कूली शिक्षा-पद्धति का निर्माण कैसे किया जाये।

ऐसी परिस्थितियों में क्रूप्स्काया के अनुभव और ज्ञान का विशेष महत्व था।

"...हम बड़ी आशा से नदेज्दा कोन्स्तान्तीनोव्ना की ओर देखते थे, क्योंकि उनके पास सचमुच इस क्षेत्र में कहने के लिए कुछ था, जबकि दूसरों को अटकलें लगानी पड़ती थीं, रास्ते खोजने और जीवन मे सीखना पड़ता था," रूस के पहले शिक्षा जन-कमिसार अ० लुनाचार्स्की ने लिखा।

अतीत के गहन ज्ञान, सांस्कृतिक धरोहर के प्रति संभाल का रुख तथा सामाजिक विकास के क्रम की समझ के फलस्वरूप क्रूप्स्काया बच्चों और किशोरों की सभी शिक्षा संस्थाओं के लिए नये सिद्धांत, उनके कार्य की नई विधियां और नये रूप तय करने, जनशिक्षा कार्य के संचालन के नये रूप निर्धारित करने में सफलता पा सकीं।

नवप्रवर्तक-शिक्षाशास्त्री क्रूप्स्काया सभी सामाजिक-राजनीतिक परिघटनाओं में शिक्षा संबंधी पहलू ढूंढ़ लेती थीं, उन जन्म ले रहे नवीन तत्वों को देख लेती थीं, जो नव मानव के व्यक्तित्व के गठन में सहायक

हो सकते हैं। उन्होंने लिखा : "...रास्ता सदा आसान नहीं था, लेकिन इस बात पर कभी कोई संदेह नहीं हुआ कि रास्ता सही है। संभवत:, गलत कदम उठाये गये, ऐसा होना ही था, लेकिन गलतियां ठीक की जाती थीं और आंदोलन की विशाल लहर लक्ष्य की ओर बढ़ती रहती थी।..." सोवियत शिक्षाविज्ञान में एक भी ऐसी बड़ी समस्या नहीं थी, जिसके हल पर क्रूप्स्काया ने उल्लेखनीय प्रभाव न डाला हो। शिक्षा संबंधी उनके विचार अपने समय से बहुत आगे थे और उनका महत्व आज भी बना हुआ है।

चरित्र-निर्माण का सार, जीवन के साथ स्कूल का संबंध, बौद्धिक शिक्षा का श्रम शिक्षा और पोलीटेक्निकल शिक्षा के साथ संबंध, शिक्षा का अंतर्य और उसके संगठनात्मक रूप, वैज्ञानिक विश्वदृष्टिकोण का निरूपण, बाल कम्युनिस्ट आंदोलन के अंतर्य एवं संगठनात्मक रूपों के आधारभूत सिद्धांत, स्वप्रबंध के प्रश्न, स्कूल और परिवार के परस्पर संबंध, शिक्षक की भूमिका और स्थान, उसका प्रशिक्षण आदि प्रश्नों पर उनके विचार ही सर्वप्रथम ऐसे विचार हैं।

क्रूप्स्काया के शिक्षा संबंधी बहुपक्षीय कार्यों में एक आंतरिक एकता है, वे सब प्रमुख सामाजिक-शैक्षिक समस्या – नव मानव के चरित्र-निर्माण पर केंद्रित हैं।

क्रूप्स्काया उच्चत: शिक्षित व्यक्ति थीं, उन्हें कई विदेशी भाषाओं का ज्ञान था। वे उन लोगों की सख़्त भर्त्सना करती थीं, जो अतीत की शिक्षा संबंधी धरोहर से इन्कार करते थे, साथ ही उन लोगों की भी, जो बुर्जुआ शिक्षाशास्त्र के विचारों को यंत्रवत ग्रहण करते थे। वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के विचारों को सृजनात्मक ढंग से प्रयुक्त करते हुए उन्होंने आश्वस्तकारी ढंग से यह दिखाया कि नई संस्कृति, नई शिक्षा-पद्धति, नये स्कूल का निर्माण अतीत की धरोहर को आलोचनात्मक दृष्टि से ग्रहण करके और मानवजाति द्वारा संचित ज्ञान को सुदृढ़ आधार बनाकर ही किया जा सकता है।

सैद्धांतिक प्रस्थापनाओं को जीवन के साथ, स्कूलों के व्यावहारिक कार्य के साथ घनिष्ठ रूप से जोड़ते हुए क्रूप्स्काया ने सोवियत स्कूली शिक्षा पद्धति के विकास की वस्तुगत नियमसंगतियों का पता लगाया। समाजवादी समाज में स्कूली शिक्षा और चरित्र-निर्माण के लक्ष्यों एवं

कार्यभारों के बारे में क्रूप्स्काया ने ही पहली प्रस्थापनाएं निरूपित कीं, जिनका उन दिनों की परिस्थितियों में अपार महत्व था। स्कूली शिक्षा और कम्युनिस्ट चरित्र-निर्माण के कार्य में परिष्कार के परिप्रेक्ष्य इंगित करते हुए क्रूप्स्काया अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति के बीच परस्पर संबंध पर ख़ास तौर से ज़ोर देती थीं। उनका कहना था कि स्कूली शिक्षा सामाजिक आवश्यकताओं और समाजवादी समाज की शिक्षा संबंधी अपेक्षाओं के अनुरूप होनी चाहिए।

क्रूप्स्काया की सभी रचनाएं मानवतावाद के विचारों, बच्चे के व्यक्तित्व के प्रति आदर, बच्चे पर विश्वास, उसमें इंसान को देखने की योग्यता और उसकी शक्ति में विश्वास की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं।

उनके शिक्षा संबंधी कार्य का केंद्रीय विचार था व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास का विचार, जिसे नये समाजवादी समाज का स्कूल मूर्त रूप देने में समर्थ है। हर बार नई स्थिति में मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत को आधार बनाकर क्रूप्स्काया इस विचार पर नये संबंधों और माध्यमों के प्रसंग में विचार करती थीं। चर्चा स्कूली शिक्षा और चरित्र-निर्माण के ध्येयों की हो या शिक्षा के अंतर्य की, अध्यापन की विधियों की या सामाजिक सक्रियता बढ़ाने की – हर मामले में उनके लिए यह विचार ही प्रस्थान-बिंदु था और हर नई स्थिति में उसका विशेष महत्व था, ठोस रूप था।

व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास के, नये समाजवादी समाज के मानव के विकास के विचारों को क्रूप्स्काया सामूहिकतावाद के विचार के साथ घनिष्ठ रूप मे जोड़ती थीं, इस विचार के साथ कि "लोगों की सारी मानसिकता बदली जानी चाहिए – ताकि लोग व्यक्तिवादी न रहकर, जैसा कि पूंजीवाद ने उन्हें बनाया है, सामूहिकतावादी बन जायें"। शिक्षा का उत्पादक श्रम के साथ, पोलीटेक्नीकल शिक्षा के साथ संबंध जोड़ना भी वे आवश्यक मानती थीं।

अंतर्राष्ट्रीय मंच पर उग्र विचारधारात्मक संघर्ष की समसामयिक परिस्थितियों में क्रूप्स्काया द्वारा की गई बुर्जुआ शिक्षाशास्त्र और स्कूली शिक्षा पद्धति की सिद्धांतनिष्ठ आलोचना विशेषतः महत्वपूर्ण हो गई है। अपनी रचनाओं में उन्होंने बुर्जुआ समाज में सत्ताधारी वर्ग की

नीति और प्रतिगामी शिक्षा सिद्धांतों व स्कूली शिक्षा के बीच गहरा संबंध उघाड़ा। उन्होंने लिखा : "बुर्जुआ वर्ग के हाथों में स्कूल अधिकाधिक हद तक उसके वर्ग-प्रभुत्व को सुदृढ़ करने का साधन बनता जाता है। बुर्जुआ वर्ग इस साधन को यथासंभव परिष्कृत करने, उसे अधिक सूक्ष्म, अधिक कारगर बनाने, 'शिक्षा-दीक्षा की नयी विधियां लागू करने ... नयी परिस्थितियों के अनुकूल बनने, उन पर नियंत्रण पाने' के यथासंभव प्रयास करता है।"

अग्रणी शिक्षकों को सोवियत सत्ता के गिर्द एकजुट करने के काम में भी क्रूप्स्काया ने बहुत परिश्रम किया। पायोनियरों, कोमसोमोल (युवा कम्युनिस्ट संघ) के सदस्यों के साथ उनका घनिष्ठ संपर्क था, हज़ारों मेहनतकशों के साथ उनका पत्र-व्यवहार चलता था। आत्मा की सच्ची महानता और उच्च संस्कृति के साथ जो विनम्रता और सादगी पायी जाती है, वह क्रूप्स्काया के चरित्र का अभिन्न लक्षण थी। यह सब लोगों को उनकी ओर आकर्षित करता था, उनके साथ दुख-सुख बांटने की प्रेरणा देता था। क्रूप्स्काया असाधारण इच्छा बल और सहनशक्ति की धनी थीं। लेनिन की मृत्यु पर गहरे सदमे में भी उन्होंने बहुत ही सादगी भरा यह भाषण दिया कि किस प्रकार लेनिन का कार्य जारी रखा जाना चाहिए। अपने एक निकट मित्र के नाम पत्र में उन्होंने लिखा कि अब वह व्लादीमिर इल्यीच के बारे में, उनके काम के बारे में ही सबसे अधिक सोचना चाहती हैं, उनकी रचनाएं ही पढ़ना चाहती हैं। "लेकिन दूसरा काम भी करना होगा। ..." और वह पूरे तन-मन से काम करती रहीं।

कम्युनिज़्म के निर्माण में स्कूल की भूमिका और स्थान के बारे में क्रूप्स्काया के प्रमुख विचारों पर हमारे देश में सफलतापूर्वक अमल हो रहा है। पोलीटेक्निकल शिक्षा की ऐसी पद्धति बनायी गयी है जिसके मूलभूत सिद्धांत लेनिन की रचनाओं में निरूपित हैं। आधुनिक सोवियत स्कूल युवा पीढ़ी को बुनियादी ज्ञान देता है, उसे मानसिक और शारीरिक श्रम के लिए तैयार करता है, उसके लिए अपनी इच्छानुसार और विवेकसंगत ढंग से व्यवसाय चुनने के अवसर सुनिश्चित करता है। स्कूल में जीवन के प्रति सचेतन रुख अपनाना, नये समाज के निर्माण में सक्रिय भाग लेना सिखाया जाता है।

नदेज्दा कोन्स्तात्तीनोव्ना क्रूप्स्काया की शिक्षा संबंधी विशाल धरोहर का हमारे देश में उच्च मूल्यांकन किया गया है। उनके विलक्षण कार्यों के लिए सरकार ने उन्हें लेनिन पदक और 'लाल श्रम-पताका' पदक से विभूषित किया था। सोवियत विज्ञान अकादमी ने जनशिक्षा के क्षेत्र में उनकी रचनाओं को ऊंचा आंकते हुए उन्हें मानद अकादमी-शियन चुना था।

१९६७ से सोवियत सरकार ने क्रूप्स्काया पदक देने का निश्चय किया। इस पदक से उन लोगों को सम्मानित किया जाता है, जिन्होंने उदीयमान पीढ़ी की शिक्षा और चरित्र-निर्माण के लिए विशेष कार्य किया हो। १९६८ से शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण के विषय पर श्रेष्ठ वैज्ञानिक शोध कार्य के लिए क्रूप्स्काया पुरस्कार दिया जाने लगा है। रूसी संघात्मक जनतंत्र की सरकार बच्चों एवं किशोरों के लिए श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं के लिए क्रूप्स्काया पुरस्कार प्रदान करती है।

अनेक देशों में क्रूप्स्काया की रचनाओं का ग़ौर से अध्ययन किया जाता है।

शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति के प्रश्नों पर संयुक्त राष्ट्र संघ का संगठन (यूनेस्को) १९६९ से विकासशील देशों में साक्षरता के प्रचार के क्षेत्र में विशेष कार्य करनेवाले संगठनों और व्यक्तियों को क्रूप्स्काया पुरस्कार देता है। इस पुरस्कार की राशि यूनेस्को को सोवियत सरकार से मिलती है।

* * *

क्रूप्स्काया ने उदीयमान पीढ़ियों की पोलीटेक्निकल शिक्षा तथा श्रम-शिक्षा के सिद्धांत एवं व्यवहार में अमूल्य योगदान किया। उन्होंने यह दिखाया कि विभिन्न ऐतिहासिक चरणों में किस प्रकार श्रम-शिक्षा का अंतर्य बदलता आया है और यह सदा इस बात पर निर्भर रहा है कि कौन-सा सामाजिक वर्ग इस शिक्षा को मूर्त रूप प्रदान करता रहा है। क्रूप्स्काया ने ही सबसे पहले पोलीटेक्निकल शिक्षा पर मार्क्स और एंगेल्स के विचारों का गहन विश्लेषण किया।

क्रूप्स्काया जीवन पर्यंत मार्क्सवाद-लेनिनवाद के इन विचारों को समझाती और उनका प्रचार करती रहीं कि उत्पादक श्रम को शिक्षा

और व्यायाम के साथ जोड़ना न केवल सामाजिक उत्पादन बढ़ाने की एक नितांत महत्वपूर्ण शर्त होगा, बल्कि नये समाजवादी समाज के उच्चत: विकसित, सृजनात्मक श्रम के लिए चहुंमुखी प्रशिक्षित लोगों को शिक्षित करने की विधि भी होगा, शारीरिक और मानसिक श्रम की प्रतिस्थापना ख़त्म करने का एक रास्ता होगा। क्रूप्स्काया मार्क्स के इस विचार पर ख़ास तौर से ज़ोर देती थीं कि मज़दूर वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता पा लेने पर ही उदीयमान पीढ़ियों की पोलीटेक्निकल शिक्षा के द्वार खुलेंगे।

पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के गठन के प्रमुखतम प्रश्नों के हल में लेनिन की असाधारण भूमिका पर भी क्रूप्स्काया ने अनेक ज्वलंत पृष्ठ लिखे हैं। क्रूप्स्काया इस बात पर ज़ोर देती थीं कि लेनिन पोलीटेक्निकल शिक्षा को नये समाज के निर्माण का राजकीय-राजनीतिक कार्यभार मानते थे और उसे शिक्षण के ऐसे सार्विक सिद्धांत के रूप में देखते थे, जो शिक्षा का ध्येय और स्वरूप निर्धारित करता है। उनके शब्दों में लेनिन यह आवश्यक समझते थे कि "श्रम सभी किशोरों के लिए अनिवार्य हो और शिक्षा के साथ उसका घनिष्ठ संबंध हो"। अपने कार्यकलापों में क्रूप्स्काया लेनिन के इन निर्देशों का पालन करती थीं कि कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा का ध्येय है: "चहुंमुखी विकसित और चहुंमुखी प्रशिक्षित लोगों को" तैयार करना, "ऐसे लोगों को, जिन्हें सब कुछ करना आता हो।"

महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद नई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में पोलीटेक्निकल और श्रम-शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण के सिद्धांत तैयार करते हुए क्रूप्स्काया ने पोलीटेक्निकल शिक्षा की मार्क्सवादी-लेनिनवादी समझ की शुद्धता बनाये रखने के लिए संघर्ष किया। उन्होंने शिक्षा-दीक्षा के बुर्जुआ सिद्धांतों का, श्रम-शिक्षा के बारे में महान चिंतकों के जनवादी विचारों का अपने वर्ग-हितों में उपयोग करने के बुर्जुआ शिक्षाशास्त्रियों के प्रयासों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया।

प्रस्तुत पुस्तक में क्रूप्स्काया के वे लेख, आदि संकलित हैं, जिनसे पोलीटेक्निकल शिक्षा और चरित्र-निर्माण की उनकी पद्धति की तस्वीर हम पाते हैं।

पहले परिच्छेद में वे लेख रखे गये हैं, जिनमें पोलीटेक्निकल शिक्षा और चरित्र-निर्माण पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों के विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

संग्रह के दूसरे परिच्छेद में पोलीटेक्निकल शिक्षा की समस्याओं पर क्रूप्स्काया के लेख एवं भाषण दिये गये हैं। इन समस्याओं पर उन्होंने समाज के विकास के साथ द्वंद्वात्मक संबंध में ग़ौर किया है। पोलीटेक्निकल शिक्षा के सामाजिक-राजनीतिक प्रकार्य का उल्लेख करते हुए क्रूप्स्काया ने आर्थिक कार्यभारों की पूर्ति में इसकी भूमिका पर बल दिया। साथ ही वह सामान्य शिक्षा के अंतर्य के साथ, मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्वदृष्टिकोण के निरूपण के साथ सांगोपांग संबंध के बिना पोलीटेक्निकल शिक्षा की कल्पना नहीं करती थीं।

क्रूप्स्काया ने ही अपनी रचनाओं में पहली बार पोलीटेक्निकल शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के कार्यभार व अन्योन्य संबंध निरूपित किये। वह इस बात पर ज़ोर देती थीं कि चहुंमुखी सामान्य और पोली-टेक्निकल शिक्षा ही व्यावसायिक शिक्षा के सभी चरणों का आधार होनी चाहिए।

तीसरे परिच्छेद में प्रकाशित क्रूप्स्काया के भाषणों और लेखों में समाजवाद के निर्माण की परिस्थितियों में श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण के सिद्धांत एवं व्यवहार के अनेक प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है। बच्चों व किशोरों के श्रम-कार्यों के संगठन को क्रूप्स्काया पोलीटेक्निकल शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंश तथा मानव चरित्र के निर्माण का जीवन-आधार मानती थीं। शिक्षा और चरित्र-निर्माण कार्य के मज़दूरों व किसानों के श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध के बारे में लेनिन के निर्देश का अनुसरण करते हुए क्रूप्स्काया ने स्कूल छात्रों में, उनकी आयु के अनुसार, श्रम के प्रति सचेतन रुख विकसित करने का सुघड़ कार्यक्रम तैयार किया, कतिपय महत्वपूर्ण निष्कर्ष निरूपित किये, जो समाज के विकास के समसामयिक चरण में श्रम-शिक्षा की तात्कालिक समस्याओं के हल के लिए उपयोगी स्रोत हो सकते हैं।

कम्युनिज़्म के निर्माण तथा नव मानव के गठन के बारे में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की २६वीं कांग्रेस के कार्यक्रम को देखते हुए मिलों-कारखानों और कृषि में, जहां जीवन की समझ बनती है, श्रम की

आवश्यकता, श्रम से लगाव और आदर की भावनाएं, सामूहिकतावाद और अपने काम के प्रति दायित्व की भावना विकसित होती है, किशोरों के श्रम संबंधी क्रूप्स्काया के विचार विशेषत: तात्कालिक महत्व के हो गये हैं।

श्रम-कार्य के दौरान चरित्र-निर्माण की समस्याओं पर सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्य के संदर्भ में भी क्रूप्स्काया ने गहराई से विचार किया। प्रस्तुत संग्रह में उनके वे लेख दिये गये हैं, जिनमें सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम के शिक्षा संबंधी सिद्धांत और शैक्षिक मूल्य निर्धारित किये गये हैं। क्रूप्स्काया के मत में सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम बहुत हद तक जीवन के साथ संबंध तथा उच्चत: उत्पादनशील श्रम के लिए स्कूल छात्रों की नैतिक-मानसिक तैयारी सुनिश्चित करता है।

चौथे परिच्छेद में पोलीटेक्निकल शिक्षा के एक अंश के रूप में व्यवसाय के चयन की समस्या को समर्पित क्रूप्स्काया की रचनाएं दी गयी हैं। व्यवसायों के चयन का कार्य संगठित करने के बारे में क्रूप्स्काया के व्यावहारिक परामर्श आज भी स्वयं छात्रों व देश की अर्थव्यवस्था के विकास – दोनों के लिए बहुत रोचक हैं।

सोवियत शिक्षाशास्त्र की संस्थापक क्रूप्स्काया की शिक्षा संबंधी धरोहर नव मानव के विकास के सिद्धांत एवं व्यवहार में अमूल्य योगदान है। अपने जीवन के अंतिम दिन तक वह पोलीटेक्निकल शिक्षा के मार्क्स-वादी-लेनिनवादी विचारों के लिए संघर्ष करती रहीं। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि "अंतत: हमारे यहां स्कूल श्रम-स्कूल, पोलीटेक्निकल स्कूल होगा।"

क्रूप्स्काया के शिक्षा संबंधी विचारों, शिक्षा विधि पर परामर्शों और टिप्पणियों का सृजनात्मक दृष्टि से, वैज्ञानिक-तकनीकी प्रगति की उपलब्धियों और आधुनिक स्कूल की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उपयोग किया जाना छात्रों को जीवन के लिए और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम के लिए तैयार करने में बहुत सहायक होगा।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि क्रूप्स्काया मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक विधि के अनुसार शिक्षा और चरित्र-निर्माण की अलग-अलग समस्याओं को उनकी समग्रता, उनके आंतरिक संबंधों और विकास को ध्यान में रखकर ग़ौर करती थीं। इसलिए अपनी रुचि के किसी प्रश्न का

अध्ययन कर रहे पाठक के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह तत्संबंधी परिच्छेद में दी गयी रचनाओं पर ही नहीं, बल्कि दूसरे परिच्छेदों की रचनाओं पर भी ध्यान दे।

संग्रह के आरंभ में सोवियत विज्ञान अकादमी के सह-सदस्य, डा० म० स्कात्किन के लेख 'नदेज्दा क्रूप्स्काया – पोलीटेक्निकल शिक्षा और श्रम-शिक्षा के सिद्धांत की प्रवर्तक' दिया गया है।

संग्रह के अंत में संक्षिप्त टिप्पणियां दी गयी हैं। पहले परिच्छेद के अलावा शेष सभी परिच्छेदों में क्रूप्स्काया की रचनाएं कालानुक्रम में दी गयी हैं। यों तो क्रूप्स्काया के विचारों का महत्व आज भी बना हुआ है, किंतु उनकी रचनाओं में चर्चित कुछ बातें तत्कालीन ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए अधिक अच्छी तरह समझी जा सकती हैं, सो प्रत्येक रचना के अंत में उसका लेखन-वर्ष दिया गया है।

नदेज्दा क्रूप्स्काया – पोलीटेक्निकल तथा श्रम-शिक्षा के सिद्धांत की प्रवर्तक

म० न० स्कात्किन, सह-सदस्य, सोवियत
शिक्षाविज्ञान अकादमी

विज्ञान और संस्कृति के इतिहास में नदेज्दा क्रूप्स्काया ने प्रथम रूसी मार्क्सवादी शिक्षक, समाजवादी जनशिक्षा की विलक्षण सिद्धांतकार और संगठनकर्ता तथा सोवियत शिक्षाविज्ञान की एक संस्थापक के नाते स्थान पाया है। श्रम-शिक्षा के सिद्धांत के निरूपण में उनका योगदान अमूल्य है।

क्रांति से पहले ही क्रूप्स्काया ने शिक्षण कार्य को उत्पादक श्रम और पोलीटेक्निकल शिक्षा के साथ जोड़ने के विषय पर वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के संस्थापकों के विचारों का गहन अध्ययन कर लिया था। महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद उन्होंने इस दिशा में अपने सैद्धांतिक कार्य को, इन विचारों को मूर्त रूप देने के ठोस रास्तों की खोज के साथ जोड़ा।

पोलीटेक्निकल शिक्षा

पोलीटेक्निकल शिक्षा का विचार समाज के विकास के वस्तुगत नियमों के परिणामस्वरूप, निरंतर बदलती और जटिल होती तकनीक की अनिवार्य अपेक्षा के रूप में प्रकट हुआ। अपनी कालजयी रचना 'जनशिक्षा और जनवाद' में क्रूप्स्काया ने मार्क्स-एंगेल्स की रचनाओं

के आधार पर लिखा था : "बड़े पैमाने के उद्योग की प्रकृति ही यह मांग करती है कि मज़दूर चहुंमुखी रूप से विकसित हो, उसमें श्रम की आम योग्यता हो, उसे पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण प्राप्त हो, यानी उसे किसी भी मशीन पर काम करना आता हो, वह श्रम की प्रत्येक प्रक्रिया को समझता हो।"

इस वस्तुगत नियम के आधार पर क्रूप्स्काया शिक्षा के क्षेत्र में अपने सारे कार्यकाल में पोलीटेक्निकल शिक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर देती रहीं। उन दिनों नवोदित सोवियत रूस में ख़रादियों, फ़िटरों और दूसरे औद्योगिक पेशों के मज़दूरों की सख़्त ज़रूरत थी। इसलिए कुछ लोगों का कहना था कि अलग-अलग पेशों की ही शिक्षा देनी चाहिए, पोलीटेक्निकल शिक्षा का विचार छोड़ देना चाहिए। क्रूप्स्काया ने इन विचारों के विरुद्ध अनम्य संघर्ष किया। तीसरी अखिल रूसी ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के सांस्कृतिक एवं जनशिक्षा प्रभाग की बैठक में अपने भाषण में तथा 'प्राव्दा' में २३ फ़रवरी और ८ मार्च १९२१ को छपे अपने लेखों में क्रूप्स्काया ने इन विचारों की सारी भ्रामकता स्पष्ट की।

पोलीटेक्निकल शिक्षा के विरोधियों के दृष्टिकोण से लेनिन परिचित थे। पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में क्रूप्स्काया द्वारा निरूपित सूत्रों पर अपनी टिप्पणियों में और 'शिक्षा जन-कमिसारियात के काम के बारे में' शीर्षक अपने लेख में लेनिन ने इस दृष्टिकोण को आमूल गलत बताया। उनके विचार में ऐसा दृष्टिकोण इस बात का साक्षी था कि ये लोग पार्टी के कार्यक्रम से पूरी तरह अपरिचित हैं और अमूर्त नारों से ही इन्हें निस्सार लगाव है।

कालांतर में भी, जब कभी व्यावसायिक-तकनीकी विद्यालय पर्याप्त संख्या में उद्योगों के लिए सुप्रशिक्षित मजदूर तैयार नहीं कर पाये, तब-तब पोलीटेक्निकल शिक्षा के स्थान पर व्यावसायिक शिक्षा लागू करने की कोशिशें की गईं। लेकिन हर बार ये कोशिशें नाकाम सिद्ध हुईं, क्योंकि ये श्रम के परिवर्तन के वस्तुगत नियम के प्रतिकूल थीं, मज़दूरों के बहुमुखी प्रशिक्षण प्राप्त होने की अपेक्षा के प्रतिकूल थीं।

अपने अनेक लेखों और भाषणों में क्रूप्स्काया ने पोलीटेक्निकल शिक्षा के सार व कार्यभारों पर तथा व्यावसायिक शिक्षा से उसकी

भिन्नता पर प्रकाश डाला। उनके विचार में पोलीटेक्निकल शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है छात्रों को प्रविधि के मूलभूत नियमों से परिचित कराना, जो प्रविधि की सारी विविधता के बावजूद इसकी हर शाखा में पाये जाते हैं। आधुनिक प्रविधि को प्रकृति की शक्तियों पर विजय के बारे में सामान्य वैज्ञानिक जानकारी के साथ तथा श्रम के व सारे सामाजिक जीवन के संगठन के प्रश्नों के साथ उसके सारे संबंधों के प्रसंग में देखा जाना चाहिए। इस सबका ज्ञान छात्रों को सिद्धांत में और व्यवहार में मूलभूत लाक्षणिक श्रम-प्रक्रियाओं से परिचित कराकर देना चाहिए और छात्रों को इन प्रक्रियाओं में भाग लेते हुए इनसे परिचित होना चाहिए। शिक्षा के साथ उत्पादक श्रम का संबंध जोड़ने से ही उदीयमान पीढ़ी को समग्र अर्थव्यवस्था को समझने में मदद मिल सकती है और इस समझ के बिना तो समाजवाद का सच्चा निर्माता नहीं बना जा सकता।

१९३० में हुई पोलीटेक्निकल शिक्षा पर पहली अखिल रूसी कांग्रेस की तैयारी के दिनों में क्रूप्स्काया ने 'स्कूली शिक्षा पोलीटेक्निकल होनी चाहिए' शीर्षक से एक लेख छपवाया था, जो बाद में अलग पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ। इस लेख में पोलीटेक्निकल शिक्षा के सार और इसकी आवश्यकता को बड़ी स्पष्टता से समझाया गया है। आधुनिक प्रविधि एक स्थान पर नहीं खड़ी है, वह बड़ी तेज़ी से विकसित हो रही है। पुरानी मशीनों के स्थान पर नई लगती हैं, जो अधिक अच्छी तरह और अधिक तेज़ी से काम करती हैं। आधुनिक मशीनों की बनावट और कार्यविधि में बहुत-सी बातें एक-सी हैं। इन मशीनों की बनावट अच्छी तरह समझनी चाहिए, सामान्य श्रम-अभ्यास होना चाहिए, मशीन पर काम करना आना चाहिए – तब नगर और देहात में श्रम की विभिन्न शाखाओं में काम का आदी हो पाना आसान है। स्कूलों में ऐसी वर्कशापें बनानी चाहिए, जो उत्पादन के विभिन्न रूपों के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित हों।

अपने अनेक लेखों व भाषणों में क्रूप्स्काया ने कार्यशालाओं में श्रम की शिक्षा देने के प्रति पोलीटेक्निकल रुख का सार उजागर किया, व्यावसायिक रुख से इसकी भिन्नता समझायी। इस सिलसिले में १९२९ में लिखे उनके 'पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में' शीर्षक लेख में दिया

गया मिलाई की पोलीटेक्निकल और व्यावसायिक शिक्षा का उदाहरण उल्लेखनीय है।

क्रूप्स्काया इस बात की तीव्र आलोचना करती थीं कि स्कूलों में श्रम-शिक्षा एक पेशे की शिक्षा बनकर रह जाती है, उस पेशे से संबंधित अभ्यास ही कराया जाता है, जिसका गणित, भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, भूगोल, आदि सामान्य शिक्षा विषयों के साथ कोई संबंध नहीं होता। नगर और देहात के निरंतर निकट आने की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए क्रूप्स्काया यह मानती थीं कि नगरों और देहातों के स्कूलों में श्रम-शिक्षा का पाठ्यक्रम एक सा होना चाहिए।

क्रूप्स्काया का कहना था कि स्कूलों की कार्यशालाओं (वर्कशापों) में छात्रों का श्रम उत्पादनशील होना चाहिए, उसका स्वरूप सामूहिक होना चाहिए। उन्होंने अनेक बार यह विचार प्रकट किया था कि पोली-टेक्निकल दृष्टिकोण और श्रम का अभ्यास स्कूलों की कार्यशालाओं और स्कूलों के बगीचों में ही नहीं, बल्कि कारखानों, फ़ार्मों और बिजलीघरों में भी पाया जाता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि स्कूल प्रतिष्ठानों से संलग्न हों। लेकिन प्रतिष्ठान का अध्ययन व्यावसायिक शिक्षा में नहीं बदल जाना चाहिए।

क्रूप्स्काया भली-भांति यह समझती थीं कि पोलीटेक्निकल शिक्षा के क्षेत्र में स्कूल के सम्मुख कितने जटिल कार्यभार हैं। स्कूल अकेले अपने बूते पर ही ये कार्यभार पूरे नहीं कर सकते हैं। इसीलिए क्रूप्स्काया बारंबार लेनिन के ये शब्द याद दिलाती थीं कि सच्चे अर्थों में पोलीटेक्निकल स्कूल तभी बनाये जा सकेंगे, जब इस काम में स्वयं मज़दूर भाग लेंगे।

पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में क्रूप्स्काया के विचार इसलिए जीवनक्षम सिद्ध हुए हैं, क्योंकि वे उत्पादन के विकास तथा व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास के वस्तुगत नियमों पर आधारित हैं। मार्क्स ने श्रम में परिवर्तन के जिस नियम का आविष्कार किया था वह आज भी क्रियाशील है, और उसकी यह अपेक्षा है कि मज़दूर के श्रम-प्रकार्यों में गतिशीलता हो, युवाजन को अच्छा पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण प्राप्त हो। अर्थव्यवस्था में अब एकीकरण की, औद्योगिक और कृषि उत्पादन की अलग-थलग शाखाओं को एक दूसरे के निकट लाने का काम विशाल

पैमाने पर हो रहा है, और इसके फलस्वरूप इनमें जो सामान्य वैज्ञानिक-तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक आधार हैं, उनका पता लगता है। इन आधारभूत सिद्धांतों का ज्ञान ही पोलीटेक्निकल शिक्षा का अंतर्य है। इस अंतर्य को समझ लेने पर स्कूल छात्रों को समस्त उत्पादन कार्य के बारे में, उसकी संरचना, कार्य और विकास के बारे में जानकारी रहेगी, और इस सामान्य आधार के बल पर वे आगे चलकर कोई भी उत्पादन व्यवसाय आसानी से सीख पायेंगे। चूंकि आधुनिक उत्पादन कार्य विज्ञान के नियमों के उपयोग पर आधारित है, इसलिए पोलीटेक्निकल शिक्षा प्रकृति, समाज और उत्पादन के वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। सामान्य शिक्षा विषयों को "उत्पादन कार्य की ओर उन्मुख" करना चाहिए, क्योंकि उत्पादन कार्य का वैज्ञानिक आधार उजागर करना आवश्यक है। उत्पादन के वैज्ञानिक आधार के ज्ञान का उत्पादक श्रम में संश्लेषण और सृजनात्मक उपयोग करना चाहिए; उत्पादक श्रम के बिना पोलीटेक्निकल शिक्षा का स्वरूप अनिवार्यतः शाब्दिक-कल्पनात्मक बनकर रह जाता है, ज्ञान अमूर्त हो जाता है।

क्रूप्स्काया द्वारा निरूपित इन सैद्धांतिक प्रस्थापनाओं में से सभी का हमारे स्कूलों के समसामयिक पाठ्यक्रमों में और पोलीटेक्निकल शिक्षा के व्यवहार में सुसंगत रूप से पालन नहीं होता। अभी भी श्रम-शिक्षा में महज़ पेशा सिखाने के तत्व पाये जाते हैं। स्कूलों की वर्कशापों में श्रम सदा सृजनात्मक नहीं होता, इन वर्कशापों में काम प्रतिष्ठानों के काम के साथ जुड़ा हुआ नहीं होता। शिक्षा-उत्पादन उद्यमों में शिक्षा प्रायः पोलीटेक्निकल न होकर संकीर्ण व्यावसायिक ही रह जाती है। आर्थिक कार्यकलापों में, उत्पादन-आर्थिक संबंधों की व्यवस्था में स्कूल छात्र बहुत कम हिस्सा ले पाते हैं। शिक्षा का जीवन के साथ संबंध व्यवहार में सुदृढ़ करने, सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम के लिए छात्रों का प्रशिक्षण बेहतर बनाने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है।

शिक्षा को उत्पादक श्रम के साथ जोड़ना

पूंजीवादी उत्पादन के विकास की नियमसंगतियों का अध्ययन करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने बच्चों व किशोरों के भयावह शोषण की ओर ध्यान दिया। लेकिन, जैसा कि क्रूप्स्काया ने अपनी रचना 'जनशिक्षा और जनवाद' में लिखा: "बाल श्रम के पूंजीवादी शोषण और परिवार के पुराने रूपों के विघटन की विभीषिका के पीछे मार्क्स बच्चों व किशोरों को (स्त्रियों को भी) सामाजिक उत्पादन में भाग लेने के लिए प्रवृत्त करने के तथ्य को एक प्रगतिशील परिघटना मानते थे, जो परिवार के उच्चतर रूपों की स्थापना में सहायक होगी तथा मानव व्यक्तित्व के विकास का स्रोत बनेगी।"

अपनी कई रचनाओं में क्रूप्स्काया ने मार्क्स के ये शब्द उद्धृत किये हैं कि छोटी उम्र में ही उत्पादक श्रम को शिक्षा के साथ जोड़ देना आधुनिक समाज के पुनर्गठन का तथा चहुंमुखी विकसित लोगों के प्रशिक्षण का एक सर्वाधिक सशक्त साधन है। क्रूप्स्काया ने न केवल इन विचारों का प्रचार किया, बल्कि इन्हें ठोस रूप प्रदान किया, यह पता लगाया कि सोवियत रूस में समाजवादी समाज के निर्माण का जो कार्य शुरू हुआ है उसकी परिस्थितियों में सामान्य नियमसंगतियां किन रूपों में प्रकट होती हैं। उन्होंने श्रम-शिक्षा और पोलीटेक्निकल शिक्षा के क्षेत्र में कार्यभार निरूपित किये, इन्हें पूरा करने के ठोस मार्ग इंगित किये तथा इस दिशा में स्कूलों के पहले अनुभव का विश्लेषण किया।

५ फ़रवरी १९१८ को 'प्राव्दा' में छपे अपने एक लेख में क्रूप्स्काया ने शिक्षा को उत्पादक श्रम के साथ संलग्न करने के प्रश्न पर मार्क्स का दृष्टिकोण समझाया और बाल-श्रम के लिए आवश्यक कदम निर्धारित किये: १) किशोरों का कार्यदिवस छोटा हो तथा उनकी श्रम-सुरक्षा के लिए दूसरे कदम उठाये जायें; २) किशोरों के यथाशक्ति श्रम का सही संगठन किया जाये; ३) इस बात के लिए सभी यत्न किये जायें कि कारखानों के अधीन किशोरों के ऐसे विद्यालय खुलें, जिनमें शिक्षा उत्पादक श्रम से जुड़ी हो।

क्रूप्स्काया ने इस बात पर जोर दिया कि किशोरों का श्रम बिल्कुल एकरस और यंत्रवत नहीं होना चाहिए, ऐसा श्रम मंदबुद्धि बनाता है।

फ़ैक्टरी में श्रम का दूसरा रूप होना चाहिए, ताकि हर किशोर वहां शिक्षा पाने के कुछ वर्षों के दौरान कोई एक यंत्रवत कार्य नहीं, बल्कि एक के बाद एक कई तरह के, सरल से जटिल होते हुए कार्य करे, इसके साथ वह फ़ैक्टरी या कारखाने के एक खाते से दूसरे में जाता रहे और सारी उत्पादन प्रक्रिया का अध्ययन करे। इसके साथ-साथ छात्रों को स्कूल में गणित, भौतिकी, यांत्रिकी, मैकेनिकल ड्राइंग और सामान्य शिक्षा के दूसरे विषय भी पढ़ाये जाने चाहिए। ऐसा काम नौजवानों को मंदबुद्धि नहीं बनाता, बल्कि उनका विकास करता है।

सोवियत सत्ता के पहले वर्षों में स्कूल अपने साधनों से उत्पादक श्रम का प्रबंध करने में अक्षम थे। क्रूप्स्काया यह समझाती थीं कि यह ज़रूरी नहीं कि छात्र स्कूल की चहारदीवारी में ही श्रम-कार्य करें। उन दिनों बच्चे, विशेषतः गांवों के बच्चे छोटी आयु में ही वयस्कों के श्रम-जीवन में भाग लेने लगते थे। क्रूप्स्काया का कहना था कि बच्चों के इस असली श्रम-कार्य को ही प्रस्थान-बिंदु मानना चाहिए और इसके साथ शिक्षा को संलग्न करना चाहिए।

कालांतर में जब स्कूलों में कार्यशालाएं बनने लगीं, तो क्रूप्स्काया ने परामर्श दिया कि तीसरी-चौथी कक्षाओं में ही बच्चों के श्रम को उत्पादक श्रम बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करने चाहिए। ऐसा करते हुए यह बात विशेषतः ध्यान में रखनी चाहिए कि स्कूलों की कार्यशालाओं में काम का उत्पादन के साथ अटूट संबंध हो: "कार्यशालाएं ऐसा स्थान नहीं होनी चाहिए, जहां बच्चे 'श्रम सुलेख' का अभ्यास करते हैं, बल्कि ऐसा करना आवश्यक है कि कार्यशालाओं में जो कुछ किया जाता है, उसका वास्तव में उत्पादन के साथ कोई संबंध हो।"

क्रूप्स्काया ने बच्चों के उत्पादक श्रम की कारगरता की शैक्षिक शर्तों से संबंधित नियमसंगतियों का पता लगाया। यह श्रम वास्तव में गंभीर और यथासंभव मशीनीकृत श्रम होना चाहिए, अलग-अलग आयु के बच्चों के लिए उनकी क्षमता के अनुरूप होना चाहिए। बच्चों की भूमिका, उन्हें जो कहा जाये, वही काम करने तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उन्हें सारे आर्थिक कार्यकलाप के संगठन में भी सक्रिय भाग लेना चाहिए। ऐसा होने पर वे उत्पादन प्रक्रिया के तर्क द्वारा निर्धारित होने वाली मांगों को समझने लगते हैं। ऐसा श्रम बच्चों में

सचेतन अनुशासन के विकास में सहायक होता है। शिक्षक भी इस कार्य के तर्क की शर्तों को मानते हैं और अपना शैक्षिक एवं चरित्र-निर्माण कार्य बाहर से हुक्म चलाकर नहीं, बल्कि स्वयं बाल-समुदाय के सदस्य के रूप में करते हैं, ताकि बच्चों की पहलक़दमी पर, उनके स्वावलंबन पर अंकुश न आये। स्वप्रबंध के निकाय बाल-समुदाय का अभिन्न अंग होते हुए उसके जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार बनते और विकसित होते हैं, शिक्षकों द्वारा थोपे नहीं जाते। बाल-समुदायों के बीच प्रतियोगिता उनमें काम से लगाव की भावना विकसित करने में सहायक होती है।

श्रम का अंतर्य, उसकी तकनीकी सज्जा, उसके संगठन के बाह्य रूप समय के साथ-साथ बदलते रहते हैं, लेकिन शैक्षिक चरित्र-निर्माण प्रक्रिया के सार में, श्रम-शिक्षा के सिद्धांतों और विधियों के आधार में निहित शैक्षिक नियमसंगतियों में स्थायित्व होता है। यही कारण है कि क्रूप्स्काया के शिक्षा संबंधी विचार, विशेषत: स्कूल में, स्कूल की स्वतंत्र कार्यशाला में बच्चों का उत्पादक श्रम संगठित करने के बारे में उनके विचार आज भी अमूल्य हैं।

स्कूलों में स्वयं अध्यापकों द्वारा बच्चों के उत्पादक श्रम के संगठन के अनुभव का सकारात्मक मूल्यांकन करते हुए क्रूप्स्काया ने इसे कभी एकमात्र और प्रमुख रूप नहीं माना। स्कूल की चहारदीवारी में अपने ही साधनों से उत्पादक श्रम का संगठन करने की संभावनाएं सीमित हैं। यह आवश्यक है कि छात्र औद्योगिक प्रतिष्ठानों और कृषि फ़ार्मों में श्रम करें। यहां वयस्क मज़दूरों और किसानों के साथ मिलकर काम करना महत्वपूर्ण है। कोमसोमोल की तीसरी कांग्रेस में लेनिन ने इसी बात पर ज़ोर दिया था।

तब अध्यापकों के सम्मुख यह प्रश्न उठा: नगरों और देहातों के स्कूल छात्रों को श्रम-शिक्षा एक-सी या अलग-अलग दी जाये? क्रूप्स्काया का कहना था कि पूंजीवादी समाज में नगर और देहात के बीच बहुत भेद होता है। समाजवादी समाज में ऐसा भेद नहीं होना चाहिए। नगर और देहात की प्रतिस्थापना मिटाने में स्कूल को भी मदद करनी चाहिए, इसके लिए छात्रों को औद्योगिक और कृषि संबंधी दोनों तरह के श्रम की शिक्षा देनी चाहिए।

क्रूप्स्काया ने स्कूल छात्रों के उत्पादक श्रम के संगठन के जिन नियमों और विधियों का पता लगाया, उन्हें स० शात्स्की, अ० मकारेन्को और व० सुखोम्लीन्स्की ने व्यवहार में उतारा।

कालांतर में उद्योग और कृषि में स्कूल छात्रों के उत्पादक श्रम के संगठन के कई रूप बने – प्रतिष्ठानों में शैक्षिक खाते, शिक्षा-उत्पादन उद्यम, सामूहिक और राजकीय फ़ार्मों में छात्रों की टोलियां, स्कूलों के वन-खंड, श्रम एवं विश्राम कैम्प, निर्माण टोलियां, इत्यादि। यहां हम एक बार फिर यह देखते हैं कि श्रम के संगठन का अंतर्य और रूप समय के साथ बदलते जाते हैं, लेकिन नई परिस्थितियों में भी शैक्षिक प्रक्रिया की वे वस्तुगत नियमसंगतियां क्रियाशील रहती हैं, जो इस प्रक्रिया की कारगरता निर्धारित करती है: श्रम के रूपों की विविधता, औद्योगिक और कृषि श्रम का प्रत्यावर्तन, छात्रों का बड़ों के साथ काम करना, उत्पादन के अंगों – मशीनों, कच्चे माल, उत्पादन और समस्त उत्पादन क्रिया – का अध्ययन, श्रम से संबंधित अनुसंधान कार्य।

समाजोपयोगी श्रम

श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण कार्य स्कूलों और प्रतिष्ठानों में छात्रों के उत्पादक श्रम के संगठन तक ही सीमित नहीं है। सोवियत स्कूली शिक्षा-पद्धति के गठन के पहले वर्षों में ही समाजोपयोगी श्रम का व्यापक प्रचलन हुआ। समाजवादी समाज के निर्माण में छात्रों का भाग लेना ही इस श्रम का अंतर्य था।

स्कूल छात्रों को समाजोपयोगी कार्य में प्रवृत्त करने का विचार मानव के सामाजिक गठन के उस वस्तुगत नियम पर आधारित है, जिसे मार्क्स और एंगेल्स ने 'जर्मन विचारधारा' नामक रचना में इस संक्षिप्त सूत्र में अभिव्यक्त किया: "व्यक्तियों की जीवंत गतिविधियां जैसी होती हैं वैसे ही वे स्वयं होते हैं।"

कोमसोमोल की तीसरी कांग्रेस में दिये गये भाषण में लेनिन ने समाजवादी समाज के निर्माण में युवाजन और किशोरों की सक्रिय शिरकत का कार्यक्रम रेखांकित किया: "उन्हें शिक्षा संबंधी अपने तमाम कार्यों की ओर इस तरह का रवैया अपनाना चाहिए कि प्रति दिन हर

गांव में, हर शहर में नौजवान लोग सामूहिक श्रम की किसी एक समस्या को व्यावहारिक रूप मे हल करने के लिए काम करें, चाहे वह कितनी ही छोटी, कितनी ही सीधी-सादी समस्या क्यों न हो।"*

लेनिन के विचारों के आधार पर क्रूप्स्काया ने इंगित किया कि स्कूल छात्रों का समाजोपयोगी श्रम समाजवादी समाज के निर्माण की आम योजना का अंग होना चाहिए। यह निर्माण कार्य स्थानीय सोवियतों द्वारा क्रियान्वित और संचालित होता है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि स्कूल छात्रों को सोवियत से तैयार निर्देश मिलें और वे बस उनका पालन करें। समाजोपयोगी श्रम का ध्येय सर्वप्रथम शैक्षिक है – छात्रों को सक्रिय नागरिक होने की शिक्षा देना। ऐसा केवल तभी हो सकता है, जबकि छात्र इस ध्येय को समझेंगे, यह उनका अपना ध्येय होगा। छात्रों में लगन जगाना, उनकी पहलक़दमी प्रेरित करना अध्यापक का काम है।

समाजोपयोगी काम छात्रों के लिए सामूहिकता का विद्यालय होना चाहिए। सभी छात्रों को स्कूली शिक्षा के सभी वर्षों में सामूहिक कार्य की शिक्षा देनी चाहिए। यह कोशिश नहीं करनी चाहिए कि छात्र अधिक से अधिक सार्वजनिक कार्य करें, जिन सार्वजनिक कार्यों की आदतें स्कूल में डाली जाती हैं, वे ही महत्वपूर्ण हैं। छात्रों को सार्वजनिक कार्यों में भाग लेनेवाले सक्रिय नागरिक बनना चाहिए, समाजवादी समाज के निर्माण के कार्यभार सामूहिक रूप से पूरे करने सीखना चाहिए।

समाजोपयोगी कार्य के बारे में क्रूप्स्काया के विचारों पर आजकल स्कूलों में पायोनियर और कोमसोमोल संगठनों में अमल किया जाता है। इनके जीवंत महत्व का कारण यह है कि ये विचार गतिविधियों और संबंधों की प्रक्रिया में व्यक्तित्व के गठन की वस्तुगत नियमसंगतियों पर आधारित हैं। कार्य का सामाजिक महत्व जितना अधिक समझा जाता है, उतना ही अधिक वह बच्चों के लिए शिक्षाप्रद होता है।

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'सोवियतों की आठवीं अखिल रूसी कांग्रेस, २२-२९ दिसम्बर, १९२०' (व्ला० इ० लेनिन, 'राज्य के प्रशासन में जनता की शिरकत', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७८, पृष्ठ २३८)।

बच्चों के समाजोपयोगी कार्य का संचालन शिक्षकों को बहुत सोच-समझकर और नाप-तोलकर करना चाहिए, ताकि वे आवश्यकता से अधिक संरक्षण देकर बच्चों की पहलकदमी, उनका स्वावलंबन न दबायें।

व्यवसाय का चयन

क्रूप्स्काया व्यवसाय के चयन को अपार महत्व की बात मानती थीं। व्यवसाय के चयन का न केवल व्यक्ति के, बल्कि समाज के हितों पर भी प्रभाव पड़ता है – यह एक विशाल सामाजिक समस्या है। एक मार्क्सवादी शिक्षाशास्त्री होने के नाते क्रूप्स्काया अपने भाषणों और लेखों में सामंतवादी और पूंजीवादी समाजों में तथा समाज के समाजवादी पुनर्गठन के काल में व्यवसाय के चयन की ओर बहुत ध्यान देती थीं।

सोवियत सत्ता अपने पहले कदमों के साथ ही जनशिक्षा-पद्धति का पुनर्गठन करने लगी; शिक्षा के द्वार सबके लिए खोल दिये गये। सोवियत संघ में बड़े पैमाने के उद्योग के विकास, कृषि के सामूहिकीकरण और मशीनीकरण के फलस्वरूप कालांतर में नगर और देहात के निकट आने का आधार बना। शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच संबंध बढ़ा, वे पुरानी दीवारें ढह गयीं, जो जनसाधारण के लिए शिक्षा का मार्ग रोके खड़ी थीं। इस सबके फलस्वरूप व्यवसाय के स्वतंत्र चयन का आधार बना। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि व्यवसाय के चयन के कार्य को स्वतःस्फूर्त ढंग से होने दिया जा सकता है। ऐसे कदमों की एक पूरी पद्धति सोच-समझकर तैयार की जानी चाहिए, जो व्यक्ति और समाज के हितों की पूर्ति समान रूप से सुनिश्चित करे।

अपने देश के और विदेशों के तत्संबंधी अनुभव तथा विशेष शोध कार्यों के परिणामों के आधार पर क्रूप्स्काया ने अपनी रचनाओं में व्यवसायों के चयन के क्षेत्र में कदमों की ऐसी पद्धति पर प्रकाश डाला, उसका विज्ञानसम्मत आधार पेश किया और साथ ही कुछ ऐसे दूरगामी प्रश्न निरूपित किये, जिन पर अनुसंधान किया जाना चाहिए। इन प्रश्नों में एक है व्यवसायों के मेल का प्रश्न। शारीरिक श्रम के व्यवसायों

और मानसिक श्रम के व्यवसायों का सही मेल यदि बड़े पैमाने पर बिठा लिया जाये, तो उससे दिमागी काम करनेवालों और गैरहुनरमंद, शारीरिक काम करनेवालों में कर्मियों के सामाजिक विभाजन की जड़ कट जाती है। कार्यभार यह नहीं है कि अधिक से अधिक मज़दूरों को दिमागी काम करने, मज़दूर न रहने के अवसर प्रदान किये जायें, बल्कि यह कि श्रम-विभाजन बिल्कुल नये आधार पर हो।

दूसरा दूरगामी प्रश्न है श्रम में परिवर्तन का, कार्यों की गतिशीलता का प्रश्न, जिसकी चर्चा मार्क्स ने बड़े उद्योग द्वारा उत्पन्न एक नियम के रूप में की थी। वैज्ञानिक और तकनीकी खोजों के प्रभाव में नये व्यवसाय जन्म लेते हैं, पुराने विलुप्त हो जाते हैं। क्रूप्स्काया ने लिखा कि निस्संदेह अर्थव्यवस्था के नियोजन के फलस्वरूप श्रम-शक्ति को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर लगाने का काम भी अधिक योजनाबद्ध ढंग से होगा, लेकिन इसके लिए यह रास्ता नहीं चुना जायेगा कि एक मज़दूर सदा एक ही कार्य करे, एक ही ख़राद पर लगा रहे। क्रूप्स्काया ने चेताया कि यदि इस प्रक्रिया का नियमन नहीं किया जाता, तो यह कर्मियों द्वारा अपना कार्य-स्थल बदलने का अनियंत्रित रूप धारण कर सकती है, जिससे उत्पादन-कार्य को बहुत हानि होती है। लेकिन स्थानांतरण का सही नियमन करने के लिए व्यवसायों की किस्में जानना और यह जानना भी कि प्रत्येक व्यवसाय के लिए कर्मी में कैसी योग्यताएं व गुण होने चाहिए, ज़रूरी है। इसके बिना नियमन का काम कारगर नहीं होगा।

क्रूप्स्काया इस बात पर ज़ोर देती थीं कि व्यवसाय के स्वतंत्र चयन के लिए सामान्य और पोलीटेक्निकल शिक्षा का व्यापक दृष्टिकोण होना बहुत ज़रूरी है। यह दृष्टिकोण संकीर्ण होने पर व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है, चयन सांयोगिक हो जाता है। क्रूप्स्काया का कहना था कि स्कूलों में छात्रों को श्रम-संसाधनों के उपयोग की आगामी संभावनाओं से, यथासंभव अधिक व्यवसायों और उनकी विशिष्टताओं से परिचित कराया जाना चाहिए। इसके लिए छात्रों को विभिन्न प्रतिष्ठान दिखाने ले जाना चाहिए, अनेक विशेषज्ञताओं के कर्मियों के साथ उनकी भेंट करानी चाहिए, उन्हें व्यक्तिगत परामर्श दिलाने चाहिए। शारीरिक श्रम और मज़दूर व्यवसायों के

प्रति स्कूल छात्रों के हिक़ारत भरे दृष्टिकोण से भी संघर्ष करना चाहिए।

जीवन पथ के चयन में स्कूल छात्रों की सहायता व्यवसायों की विविधता के बारे में सूचना तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए। छात्रों की योग्यता का भी अध्ययन करना चाहिए। लेकिन साथ ही व्यवसायों के चयन के प्रति रुख कुछ गुणों (शारीरिक शक्ति, तीक्ष्ण दृष्टि, हाज़िरजवाबी, आदि) के टेस्टों के परिणामों पर आधारित भाग्यवादी रुख नहीं होना चाहिए। छात्रों को अपना रुझान प्रकट करने, भांति-भांति के कार्यकलापों में अपनी शक्ति परखने और अभ्यास करने के अवसर देने चाहिए।

स्कूलों में विभिन्न मंडलियां बनाना इस काम में बहुत सहायक हो सकता है। मंडलियों में भाग लेते हुए किशोर शीघ्र ही यह समझ जायेगा कि इस श्रम में उसकी कितनी दिलचस्पी है। मंडली में भाग लेना अनिवार्य नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होने पर उनका कोई अर्थ ही नहीं रहता। नाटक, साहित्यिक, क्रीड़ा मंडलियों के अलावा किशोर प्रकृतिप्रेमियों की, कृषि, विद्युततकनीकी, रेडियो, शिक्षण कार्य, आदि की मंडलियां होनी चाहिए। मंडलियां जितनी अधिक विविध होंगी, उतना ही किशोर-किशोरियों के लिए अपना मनपसंद काम ढूंढ़ पाना आसान होगा।

क्रूप्स्काया की शिक्षा संबंधी धरोहर के इस भाग में भी हम अमूल्य विचार पाते हैं, जो व्यवसाय के स्वतंत्र चयन की वस्तुगत सामाजिक-शैक्षिक शर्तों को प्रतिबिंबित करते हैं। ये शर्तें हैं: समाजवादी व्यवस्था, जो व्यवसाय का स्वतंत्र चयन सुनिश्चित करती है; व्यापक सामान्य और पोलीटेक्निकल शिक्षा, जो व्यवसाय के स्वतंत्र चयन का शिक्षाशास्त्रीय आधार है; समाज के लिए आवश्यक व्यवसायों के व्यापक दायरे के बारे में सूचना; स्कूल छात्रों की अभिरुचियों, रुझानों और योग्यताओं का अध्ययन, उन्हें श्रम के विभिन्न रूपों में अपनी शक्ति आज़माने के अवसर प्रदान करना।

आधुनिक सोवियत स्कूलों में छात्रों को अपना भावी व्यवसाय चुनने की ओर प्रवृत्त करने का कार्य क्रूप्स्काया द्वारा इंगित दिशाओं में ही होता है। वैसे यह मानना होगा कि उनके सभी विचारों पर पूरी तरह से और आवश्यक स्तर पर अमल नहीं हो रहा है। छात्रों

के रुझानों और योग्यताओं का अध्ययन करने, उन्हें व्यवसायों की जानकारी देने का कार्य अभी सभी स्कूलों में नहीं होता है। ऐसी परि-स्थितियां बनाने की ओर भी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है, जिनमें छात्र विविध कार्यों में अपनी शक्ति और क्षमता व्यावहारिक रूप मे आज़मा सकें। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की २६वीं कांग्रेस में निर्धारित कार्यभारों के अनुसार, समसामयिक जीवन की मांगों के अनुसार व्यव-सायों के चयन का कार्य करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है।

* * *

कहना न होगा कि हम यहां श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण की समस्याओं पर क्रूप्स्काया के सभी विचारों का विवेचन नहीं कर पाये हैं। प्रस्तुत संग्रह में संकलित लेखों और भाषणों से पाठक इन विचारों के बारे में अधिक पूर्ण जानकारी पा सकेंगे। हमारा ध्येय श्रम-शिक्षा की उन वस्तुगत नियमसंगतियों की उत्पत्ति, विकास और कार्य की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना था, जो क्रूप्स्काया के विचारों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रतिबिंबित हुईं और जिनकी बदौलत ये विचार शैक्षिक यथार्थ के संज्ञान एवं पुनर्गठन का चिर स्रोत बन गये हैं। इन विचारों का सृजनात्मक ढंग से उपयोग करते हुए हम कम्युनिस्ट समाज के निर्माण की समसामयिक मंज़िल में स्कूल के सम्मुख उपस्थित श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण के जटिल कार्यभार सफलतापूर्वक पूरे कर सकेंगे।

परिच्छेद १

श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण की समस्याओं पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों का दृष्टिकोण

उदीयमान पीढ़ी को कम्युनिज़्म की भावना में शिक्षित करने के बारे में मार्क्स के विचार

मार्क्स ने उदीयमान पीढ़ी को कम्युनिज़्म की भावना में शिक्षित करने के विषय पर कोई विशेष रचना नहीं लिखी। लेकिन सुविदित है कि उनकी कृतियों में शिक्षा-दीक्षा के कार्य के बारे में अनेक ऐसे विचार हैं, जो मार्क्स के सारे सिद्धांत के साथ संलग्न होकर हमारे लिए इस मामले में मार्गदर्शक का काम देते हैं।

सभी यह जानते हैं कि १८४८ के आरंभ में मार्क्स और एंगेल्स द्वारा लिखे गये 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' का कितना अपार महत्व था। यह क्रांतिकारी जोश से ओत-प्रोत एक संक्षिप्त रचना है, जिसमें समाज के विकास पर कम्युनिस्टों का दृष्टिकोण दिया गया है। 'घोषणापत्र' में यह बताया गया है कि समाज का विकास किस दिशा में और कैसे होता है, कि अर्थव्यवस्था और विचारधारा के बीच क्या परस्पर संबंध है, वर्ग और वर्ग-संघर्ष क्या है, इस संघर्ष में सर्वहारा की भूमिका क्या है, किस प्रकार सर्वहारा की विजय और पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर कम्युनिस्ट व्यवस्था का आना अवश्यंभावी है। इस प्रसंग में 'घोषणापत्र' में उस पीढ़ी को, जिसे कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करना होगा, शिक्षित करने के प्रश्नों की भी चर्चा की गई है। घोषणापत्र में कहा गया है: "जिस तरह से वर्ग-सम्पत्ति का विलोपन पूंजीपति वर्ग को उत्पादन का ही विलोपन ज्ञात होता है, उसी तरह से **वर्ग-शिक्षा का विलोपन** (शब्दों पर ज़ोर **लेखक** द्वारा) उसे सारी शिक्षा का विलोपन ज्ञात होता है।

"वह शिक्षा, जिसके विनाश के बारे में वह इतना रोता-धोता है, अधिकांश जनता के लिए महज़ मशीन की तरह काम करने की प्रशिक्षा मात्र है।"[1]

शिक्षा का वर्ग-स्वरूप इंगित करते हुए 'घोषणापत्र' के रचयिता इस बात पर ज़ोर देते हैं कि बड़े पैमाने का उद्योग बच्चों का असीम शोषण करता है, मज़दूरों को अपने बच्चों का शोषण करने के लिए मजबूर करता है, पुराने पारिवारिक संबंध नष्ट करता है, पारिवारिक शिक्षा-दीक्षा की जड़ खोदता है। पूंजीवादी समाज में सारी शिक्षा पूरी तरह से वर्गाधारित होती है। कम्युनिस्ट लोग शिक्षा का स्वरूप बदलना चाहते हैं। इसके बारे में घोषणापत्र में कहा गया है:

"क्या आप हमारे ऊपर यह आरोप लगाते हैं कि हम बच्चों का उनके माता-पिता द्वारा शोषण किया जाना बन्द कर देना चाहते हैं? इस अपराध को हम स्वीकार करते हैं। लेकिन आप कहेंगे कि घरेलू शिक्षा की जगह पर सामाजिक शिक्षा क़ायम करके हम एक अत्यन्त पवित्र संबंध को नष्ट कर देते हैं।

"और आपकी शिक्षा! क्या वह भी सामाजिक नहीं है और उन सामाजिक संबंधों से निर्धारित नहीं होती है, जिनमें आप समाज के प्रत्यक्ष या परोक्ष हस्तक्षेप से स्कूलों, आदि के ज़रिए शिक्षा देते हैं? शिक्षा में समाज का हस्तक्षेप कम्युनिस्टों की ईजाद नहीं है; कम्युनिस्ट तो केवल इस हस्तक्षेप के स्वरूप को बदल देना चाहते हैं और शासक वर्ग के प्रभाव से शिक्षा का उद्धार करना चाहते हैं।

"जैसे-जैसे आधुनिक उद्योग के विकास द्वारा सर्वहारा वर्ग में समस्त पारिवारिक संबंधों की धज्जियां उड़ती जा रही हैं और मज़दूरों के बच्चे तिजारत के मामूली सामान और श्रम के औज़ार बनते जा रहे हैं, वैसे-वैसे परिवार और शिक्षा तथा माता-पिता और बच्चों के पुनीत अन्योन्य संबंधों के बारे में बुर्जुआज़ी की बकवास और भी घिनौनी बन जाती है।"[2]

'घोषणापत्र' में ऐसे कुछ कदम इंगित किये गये हैं, जो सर्वहारा वर्ग को सत्ता पा लेने पर उठाने होंगे। इनके अंतर्गत दसवें मुद्दे में शिक्षा संबंधी क़दम भी दिये गये हैं। ये हैं: "सार्वजनिक पाठशालाओं में तमाम बच्चों के लिए मुफ़्त शिक्षा की व्यवस्था। वर्तमान रूप में

बच्चों से कारखानों में काम लेना ख़तम कर देना। शिक्षा और भौतिक उत्पादन का संयोजन, आदि, आदि।"[3] इसी मुद्दे को मार्क्स ने कई अन्य मुद्दों के साथ जोड़कर पेश किया, जैसे कि उत्पादन साधनों का राज्य के हाथों में जाना, सभी के लिए एक समान श्रम-दायित्व, कृषि श्रम को फ़ैक्टरी में काम के साथ जोड़ना, नगर और देहात के बीच भेद का क्रमिक विलोपन।

'घोषणापत्र' का दूसरा अध्याय इन शब्दों के साथ ख़त्म होता है: "तब वर्गों और वर्ग-विरोधों से बिंधे पुराने बुर्जुआ समाज के स्थान पर एक ऐसे संघ की स्थापना होगी, जिसमें व्यष्टि का स्वतंत्र विकास समष्टि के स्वतंत्र विकास की शर्त होगा।"[4]

यह क्या है? "स्वतंत्र विकास" का सिद्धांत? क्या मार्क्स इसके समर्थक थे? हम इस स्थान को तब तक नहीं समझ पायेंगे, जब तक यह नहीं याद रखेंगे कि स्वतंत्रता से मार्क्स का अभिप्राय बुर्जुआज़ी द्वारा स्वतंत्रता की व्याख्या से बिल्कुल भिन्न था। घोषणापत्र में कहा गया है: "लेकिन हमसे उलझने से तब तक कोई लाभ नहीं है, जब तक बुर्जुआ स्वामित्व के उन्मूलन के हमारे इरादे को आप स्वतंत्रता, शिक्षा, क़ानून, आदि की अपनी बुर्जुआ धारणाओं के मापदंड से नापते हैं; क्योंकि आपके विचार स्वयं ही बुर्जुआ उत्पादन और बुर्जुआ स्वामित्व के संबंधों की उपज हैं..."[5] आगे लिखा है: "धर्म-स्वातंत्र्य और अन्तःकरण की स्वतंत्रता की बातें ज्ञान जगत में मुक्त होड़ के प्रभुत्व को ही व्यक्त करती थीं।"[6]

एंगेल्स ने 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' में लिखा: "हेगेल पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने स्वतंत्रता और आवश्यकता के संबंध की सही व्याख्या की थी। [...] 'आवश्यकता केवल उसी हद तक अंधी होती है, जिस हद तक **वह समझी नहीं जाती**।' स्वतंत्रता प्राकृतिक नियमों से स्वाधीन हो जाने के स्वप्न में निहित नहीं है, बल्कि वह इन नियमों के ज्ञान में तथा इस ज्ञान की सहायता से इन नियमों से निश्चित उद्देश्यों के लिए सुनियोजित ढंग से कार्य कराने की जो संभावना पैदा होती है, उस संभावना में निहित है। यह बात बाह्य प्रकृति के नियमों के लिए भी सच है और उन नियमों के लिए भी, जो खुद मनुष्यों के शारीरिक तथा मानसिक अस्तित्व पर शासन करते हैं। नियमों के इन दो वर्गों

को हम अधिक से अधिक केवल चिन्तन में ही एक दूसरे से अलग कर सकते हैं। वास्तव में उन्हें अलग करना असम्भव है। अतः इच्छा की स्वतंत्रता का अर्थ विषय के ज्ञान के आधार पर निर्णय करने की सामर्थ्य के सिवा और कुछ नहीं है। इसलिए किसी ख़ास प्रश्न के संबंध में किसी आदमी का मत जितना अधिक **स्वतंत्र है**, इस मत के सार को उतनी ही अधिक **आवश्यकता** के साथ निर्धारित किया जायेगा; जबकि दूसरी ओर अज्ञान पर आधारित वह अनिश्चितता, जो बहुत-से भिन्न-भिन्न प्रकार के तथा परस्पर विरोधी संभव निर्णयों से किसी एक को मनमाने ढंग से चुनती प्रतीत होती है, ठीक अपने इस कार्य से ही यह स्पष्ट कर देती है कि वह स्वतंत्र नहीं है, बल्कि वह स्वयं उसी वस्तु के नियंत्रण में है, जिसका उसे ख़ुद नियंत्रण करना चाहिए था। अतः स्वतंत्रता अपने ऊपर तथा बाह्य प्रकृति के ऊपर नियंत्रण में निहित होती है और नियंत्रण प्राकृतिक आवश्यकता के ज्ञान पर आधारित होता है। इसलिए स्वतंत्रता लाज़िमी तौर पर ऐतिहासिक विकास का फल होती है।"[7]

यदि हम उपरोक्त शब्दों – "तब वर्गों और वर्ग-विरोधों से बिंधे पुराने बुर्जुआ समाज के स्थान पर एक ऐसे संघ की स्थापना होगी, जिसमें व्यष्टि का स्वतंत्र विकास समष्टि के स्वतंत्र विकास की शर्त होगा" – को इस दृष्टिकोण से देखें, तो हम समझ जायेंगे कि पूंजीवादी अंकुश से पूरी तरह मुक्त समाज में, जिसमें न वर्ग रहेंगे, न वर्ग-संघर्ष, विज्ञान की ऐसी प्रगति होगी, प्रकृति के नियमों और मानव-जाति के विकास के नियमों का इतना गहरा ज्ञान पाया जायेगा कि इसके फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति का अधिकतम पूर्ण, चहुंमुखी विकास होगा, और इस संघ का, इस सहबंध का प्रत्येक सदस्य सारे संघ के साथ और उसकी कुल प्रगति के साथ इतने घनिष्ठ एवं अभिन्न रूप से संलग्न होगा कि उसके सारे कार्यकलाप, सारा जीवन इस भावी वर्गहीन समाज का और आगे विकास करने को ही अर्पित होंगे।

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में बारंबर इस विचार पर ज़ोर दिया गया है कि विचारधारा का आधार अर्थव्यवस्था ही है। "क्या यह समझने के लिए गहरी अन्तर्दृष्टि की ज़रूरत है कि मनुष्य के विचार, मत और उसकी धारणाएं – एक शब्द में उसकी चेतना – उसके भौतिक

अस्तित्व की अवस्थाओं, उसके सामाजिक संबंधों और सामाजिक जीवन के प्रत्येक परिवर्तन के साथ बदलती है?

"विचारों का इतिहास इसके सिवा और क्या साबित करता है कि जिस अनुपात में भौतिक उत्पादन में परिवर्तन होता है, उसी अनुपात में बौद्धिक उत्पादन का स्वरूप परिवर्तित होता है? हर युग के प्रभुत्व-शील विचार सदा उसके शासक वर्ग के ही विचार रहे हैं।

"जब लोग समाज में क्रांति ला देनेवाले विचारों की बात करते हैं, तब वे केवल इस तथ्य को व्यक्त करते हैं कि पुराने समाज के अन्दर एक नये समाज के तत्त्व पैदा हो गये हैं और पुराने विचारों का विघटन अस्तित्व की पुरानी अवस्थाओं के विघटन के साथ कदम मिलाकर चलता है।"[8]

मार्क्स केवल तथ्य ही पेश नहीं करते थे, बल्कि सदा यह भी इंगित करते थे कि तत्संबंधी स्थिति में क्या किया जाना चाहिए। १८४५ में 'फ़ायरबाख़ पर निबंध' में ही उन्होंने लिखा था: "दार्शनिकों ने विभिन्न विधियों से विश्व की केवल व्याख्या ही की है, लेकिन प्रश्न विश्व को **बदलने का** है।" [9]

विश्व को बदलने के सही रास्ते ढूंढ़ने के लिए उन्होंने भौतिक परिस्थितियों के विकास का तथा उनके उन तत्वों का, जो सारी सामाजिक व्यवस्था के पुनर्गठन का साधन बने थे, अध्ययन किया।

इस सिलसिले में आन्नेनकोव के नाम मार्क्स का पत्र[10] रोचक है, जो उन्होंने 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' से पहले ही २८ दिसंबर १८४६ को लिखा था। इस पत्र में मार्क्स ने लिखा: "श्रम-विभाजन श्री के लिए बड़ी सरल-सी चीज़ है। लेकिन जात-पांत व्यवस्था क्या एक श्रम-विभाजन नहीं था? शिल्प-संघों का शासन भी क्या एक और श्रम-विभाजन न था? और क्या मैनुफ़ैक्चर व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम-विभाजन भी, जिसका इंगलैंड में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में सूत्रपात हुआ और अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में अन्त हुआ, बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग के अन्तर्गत श्रम-विभाजन से सर्वथा भिन्न न था?...

"...राष्ट्रों का पूरा आन्तरिक संगठन, उनके सारे अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों समेत, क्या एक ख़ास श्रम-विभाजन की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त

भी कुछ है? और क्या श्रम-विभाजन में परिवर्तन होने पर इस संगठन में भी परिवर्तन होना अनिवार्य नहीं है?

"श्री प्रूदों ने श्रम-विभाजन की समस्या को इतना कम समझा है कि वह नगर और देहात के बिलगाव की (उदाहरणार्थ, जर्मनी में ९वीं से १२वीं शताब्दी के बीच ऐसा बिलगाव हुआ था) चर्चा तक नहीं करते। अतः यह बिलगाव श्री प्रूदों के लिए, जो उसकी उत्पत्ति और विकास दोनों ही से नावाक़िफ़ हैं, नित्य नियम है।"[12]

१८४७ में लिखी 'दर्शन की दरिद्रता' नामक रचना में मार्क्स ने इस बात का शानदार उदाहरण दिया कि किस प्रकार निरंतर आगे बढ़ रहे श्रम-विभाजन में इस प्रवृत्ति के सकारात्मक पहलू उजागर करने चाहिए। मार्क्स ने लिखा कि "आधुनिक समाज के अंदर श्रम-विभाजन का लक्षण यह है कि वह विशेषज्ञताओं, अलग-थलग व्यवसायों और उनके साथ ही **व्यावसायिक मूढ़ता** को जन्म देता है" (शब्दों पर ज़ोर **लेखक** द्वारा)।[13]

व्यावसायिक मूढ़ता का तथ्य उद्धृत करते हुए मार्क्स ने साथ ही यह भी इंगित किया कि किस प्रकार श्रम-विभाजन का और आगे विकास इस मूढ़ता के उन्मूलन में सहायक होता है। 'दर्शन की दरिद्रता' में उन्होंने मज़दूरों के विकास पर **स्वचालित कारखाने** (किसी भी तरह के कारखाने के नहीं, बल्कि केवल स्वचालित कारखाने) के प्रभाव के बारे में लिखा है:

"कारखाने में श्रम-विभाजन की विशेषता यह है कि यहां श्रम एक व्यवसाय का अपना स्वरूप बिल्कुल खो बैठता है। लेकिन जैसे ही विशेषीकृत विकास रुक जाता है, तत्क्षण सर्वोन्मुखता की आवश्यकता, व्यक्ति के चहुंमुखी विकास की चेष्टा महसूस होने लगती है। कारखाना अलग-थलग व्यवसायों और व्यावसायिक मूढ़ता का उन्मूलन करता है।"[14]

मार्क्स को बच्चों से बहुत प्यार था। १८५९ में पहली बार प्रकाशित पुस्तक 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास' में बच्चों के बारे में एक बड़ी शानदार बात कही गई है। वैसे तो मार्क्स ने यह बात "चलते-चलते" कही है, लेकिन इससे यह पता चलता है कि मार्क्स को बच्चों से इतना प्यार क्यों था और वह बच्चों में क्या

देखते थे। कला की चर्चा करते हुए वह लिखते हैं: "पुरुष बचकानापन दिखाये बिना फिर से बच्चा नहीं बन सकता। लेकिन क्या बच्चे के भोलेपन से उसे ख़ुशी नहीं होती और क्या उसे इस बात की चेष्टा नहीं करनी चाहिए कि वह अधिक उच्च स्तर पर अपने सच्चे सार को प्रस्तुत करे? क्या हर युग में उस युग का चरित्र अपनी अकृत्रिम सच्चाई में बाल स्वभाव में जी नहीं उठता?"[15]

मार्क्स संकीर्ण विशेषज्ञतावाले विद्वान नहीं थे। वे साहित्य और कला के मर्मज्ञ थे, बच्चों को समझते थे।

कितने ऐसे लोग हैं, जो बच्चों को इस दृष्टि से देख सकते हैं? लेव तोलस्तोय में यह गुण था, वह एक महान कलाकार की नज़रों से बच्चों को देखते थे, लेकिन उनका दुर्भाग्य यह था कि वह अपने युग को नहीं समझ सकते थे। मार्क्स अपने युग को भी और बच्चों को भी समझ सकते थे। हर आधुनिक शिक्षक को मार्क्स से बच्चों की गहरी समझ सीखनी चाहिए।

बच्चों के प्रति प्रेम के कारण ही बाल-श्रम के पूंजीवादी शोषण पर मार्क्स को इतना अधिक आक्रोश होता था। लेकिन बच्चों के प्रति प्रेम ही इस बात का एकमात्र कारण नहीं है कि मार्क्स ने 'पूंजी' के पहले खंड में पूंजीवादी समाज में बच्चों की स्थिति की ओर इतना अधिक ध्यान दिया है। 'श्रम दिवस' अध्याय में ही मार्क्स ने फ़ैक्टरियों-कारखानों में बच्चों के घोर शोषण के बीस से अधिक उदाहरण दिये हैं और ये तथ्य उन्होंने अधिकृत दस्तावेज़ों (फ़ैक्टरी इंस्पेक्टरों की रिपोर्टों, अदालती मामलों, अधिनियमों) से लिये हैं। 'मशीनें और बड़े पैमाने का उद्योग' अध्याय में भी बाल-श्रम के शोषण के प्रश्न को कम स्थान नहीं प्राप्त है।

इंगलैंड में बाल-श्रम की रक्षा के राजकीय विधान की सारी तुच्छता की मार्क्स ने बड़ी जीती-जागती तसवीर उतारी है। उन्होंने यह दिखाया है कि किस प्रकार पूंजीपति इन नगण्य क़ानूनों तक से बचकर निकलने का रास्ता खोज लेते हैं, किस प्रकार उदीयमान पीढ़ी को मानसिक और शारीरिक रूप से अपंग बनाते हैं।

मार्क्स ने इस सबके बारे में इसलिए लिखा, क्योंकि बाल-श्रम के प्रश्न में जनसाधारण के असीम शोषण की पूंजीवादी व्यवस्था की

सारी प्रवृत्ति ही प्रतिबिंबित होती थी।

एक ओर, उद्योग के विकास का, उसमें किन्हीं परिवर्तनों का मज़दूर जनसमूह पर प्रभाव का तथा दूसरी ओर, उत्पादन स्थलियों पर बच्चों-किशोरों की स्थिति का अध्ययन करते हुए मार्क्स ने उन आधारभूत सिद्धांतों को खोजने की चेष्टा की, जिनसे सामाजिक शिक्षा-दीक्षा का काम इस तरह संगठित करने में मदद मिले, जिससे कि उदीयमान पीढ़ी पूंजीवादी समाज का आमूल पुनर्गठन करने में सक्षम हो।

हम यहां 'मशीनें और बड़े पैमाने का उद्योग' अध्याय से दो उद्धरण दे रहे हैं, जिनमें यह कहा गया है कि आधुनिक उद्योग के लिए चहुंमुखी विकसित मज़दूर की आवश्यकता है :

"आधुनिक उद्योग ने हर क्रिया को उसकी संघटक गतियों में बांट देने के सिद्धांत का अनुसरण किया और ऐसा करते हुए इस बात का कोई ख़याल नहीं किया कि मनुष्य का हाथ इन गतियों को कैसे सम्पन्न कर पायेगा। इस सिद्धांत ने प्रौद्योगिकी के नये आधुनिक विज्ञान को जन्म दिया। औद्योगिक प्रक्रियाओं के नाना प्रकार के, प्रकटतः असम्बद्ध प्रतीत होनेवाले और पथराये हुए रूप निश्चित ढंग के उपयोगी प्रभाव पैदा करने के लिए प्राकृतिक विज्ञान को सचेतन और सुनियोजित ढंग से प्रयोग करने के तरीक़ों में परिणत हो गये। प्रौद्योगिकी ने गति के उन थोड़े-से मौलिक रूपों का भी पता लगाया, जिनमें से किसी न किसी रूप में ही मानव-शरीर की प्रत्येक उत्पादक कार्रवाई व्यक्त होती है, हालांकि मानव-शरीर नाना प्रकार के औज़ारों को इस्तेमाल करता है। यह उसी तरह की बात है, जैसे यांत्रिकी का विज्ञान अधिक से अधिक संश्लिष्ट मशीनों में भी सरल यांत्रिक शक्तियों की निरन्तर पुनरावृत्ति के सिवा और कुछ नहीं देखता।

"आधुनिक उद्योग किसी भी प्रक्रिया के वर्तमान रूप को कभी उसका अन्तिम रूप नहीं समझता और न ही व्यवहार में उसे ऐसा मानता है। इसलिए इस उद्योग का प्राविधिक आधार क्रान्तिकारी ढंग का है, जब कि इसके पहले वाली उत्पादन की तमाम प्रणालियां बुनियादी तौर पर रूढ़िवादी थीं। आधुनिक उद्योग मशीनों, रासायनिक क्रियाओं तथा अन्य तरीक़ों के द्वारा न केवल उत्पादन के प्राविधिक आधार में, बल्कि

मज़दूर के कार्यों में और श्रम-प्रक्रिया के सामाजिक संयोजनों में भी लगातार तबदीलियां कर रहा है। साथ ही वह इस तरह **समाज में पाये जानेवाले श्रम-विभाजन में भी क्रांति पैदा कर देता है** और पूंजी की राशियों को तथा मज़दूरों के समूहों को उत्पादन की एक शाखा से दूसरी शाखा में निरन्तर स्थानांतरित करता रहता है। इसलिए **आधुनिक उद्योग ख़ुद अपने स्वरूप के कारण श्रम के निरन्तर परिवर्तन, काम के रूप में लगातार तबदीली और मज़दूरों में सार्वत्रिक गतिशीलता को ज़रूरी बना देता है।**"[16]

"आधुनिक उद्योग जिन विपत्तियों को ढाता है, उनके द्वारा वह सबसे यह मनवा लेता है कि काम में बराबर परिवर्तन होते रहना और इसलिए मज़दूर में विविध प्रकार के काम करने की योग्यता का होना तथा इस कारण उसकी विभिन्न प्रकार की क्षमताओं का अधिक से अधिक विकास होना सामाजिक उत्पादन का एक मौलिक नियम है। उत्पादन की प्रणाली को इस नियम के सामान्य कार्य के अनुकूल बनाने का सवाल समाज की ज़िन्दगी और मौत का सवाल बन जाता है। वस्तुतः आधुनिक उद्योग समाज को मौत की धमकी देकर इसके लिए मजबूर करता है कि आजकल के तफ़सीली काम करने वाले मज़दूर को, जो जीवन भर एक ही, बहुत तुच्छ क्रिया को दुहरा-दुहराकर पंगु हो गया है और इस प्रकार इन्सान का एक अंश भर रह गया है, एक पूर्णतया विकसित ऐसे व्यक्ति में बदल दे, जो अनेक प्रकार का श्रम करने की योग्यता रखता हो, जो उत्पादन में होनेवाले किसी भी परिवर्तन के लिए तैयार हो और जिसके लिए उसके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले विभिन्न सामाजिक कार्य केवल अपनी प्राकृतिक एवं उपार्जित क्षमताओं को स्वतंत्रतापूर्वक व्यवहार में लाने की प्रणालियां भर हों।

"इस क्रांति को पैदा करने के लिए एक क़दम पहले ही से स्वयंस्फूर्त ढंग से उठाया जा चुका है। वह है प्राविधिक एवं कृषि स्कूलों और "écoles d'enseignement professionnel" (व्यावसायिक स्कूलों) की स्थापना, जिनमें मज़दूरों के बच्चों को प्रौद्योगिकी की, और श्रम के विभिन्न औज़ारों का व्यावहारिक उपयोग करने की थोड़ी-बहुत शिक्षा मिल जाती है। फ़ैक्टरी-क़ानून के रूप में पूंजी से जो पहली और

बहुत तुच्छ रियायत छीनी गयी है, उसमें फ़ैक्टरी के काम के साथ-साथ केवल प्राथमिक शिक्षा देने की बात है। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि जब मज़दूर-वर्ग सत्ता पर अधिकार कर लेगा, जो कि अनिवार्य है, तब सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ढंग की प्राविधिक शिक्षा मज़दूरों के स्कूलों में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगी। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि इस तरह की क्रान्तिकारी उथल-पुथल, जिसके अन्तिम परिणाम के रूप में पुराना श्रम-विभाजन ख़तम हो जायेगा, उत्पादन के पूंजीवादी रूप के और इस रूप में मज़दूर की जो आर्थिक हैसियत है, उसके बिलकुल ख़िलाफ़ पड़ती है।"[17]

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मार्क्स की दृष्टि में पूंजीवादी समाज के पुनर्निर्माण में, समाजवादी पुनर्गठन में उदीयमान पीढ़ी की सामाजिक शिक्षा की भूमिका कितनी विशाल है। इस सामाजिक शिक्षा से चहुंमुखी विकसित लोग बनने चाहिए। बड़े पैमाने के उद्योग के स्वरूप की ही यह मांग है। किशोरों को काफ़ी बड़े परिमाण में ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, काम करना सीखना चाहिए। इंगलैंड में बाल-श्रम के प्रश्न पर कारखानों संबंधी क़ानूनों के इतिहास का अध्ययन करते हुए मार्क्स इसी निष्कर्ष पर पहुंचे।

'पूंजी' के पहले खंड में मार्क्स लिखते हैं: "संसद ने बच्चों के श्रम के बारे में जांच करने के लिए १८४० में ही एक आयोग नियुक्त कर दिया था। एन० डब्ल्यू० सीनियर[18] के शब्दों में, इस आयोग की १८४२ की रिपोर्ट से:

> "मालिकों और मां-बापों के लोभ, स्वार्थ और निर्दयता का और लड़के-लड़कियों तथा बच्चों के कष्ट, पतन और विनाश का एक ऐसा भयानक चित्र सामने आया, जैसा इसके पहले कभी नहीं आया था... यह रिपोर्ट २० वर्ष तक यों ही पड़ी रही और किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया; और इस बीच वे बच्चे, जिनको इस बात का तनिक भी आभास नहीं दिया गया था कि नैतिकता शब्द का क्या अर्थ होता है, और जिनमें न तो ज्ञान था, न धर्म और न ही स्वाभाविक पारिवारिक स्नेह, वे मौजूदा पीढ़ी के मां-बाप बन गये।"[19]

आयोग ने यह मांग की थी कि फ़ैक्टरियों-कारखानों में बच्चों के श्रम का क़ानून द्वारा नियमन किया जाये।

मार्क्स लिखते हैं, "परन्तु अपरिपक्व मनुष्यों को महज़ अतिरिक्त मूल्य पैदा करनेवाली मशीनों में बदलकर बनावटी ढंग से जो बौद्धिक शून्यता पैदा कर दी गयी थी और जो उस स्वाभाविक अज्ञान से बिल्कुल भिन्न थी, जिसमें मनुष्य का मस्तिष्क परती ज़मीन की तरह ख़ाली तो पड़ा रहता है, पर उसकी विकास करने की क्षमता, उसकी स्वाभाविक उर्वरता नष्ट नहीं हो जाती, – इस मनोदशा ने अन्त में इंगलैंड की संसद तक को यह नियम बनाने के लिए विवश कर दिया कि ऐसे तमाम उद्योगों में, जिनपर फ़ैक्टरी-क़ानून लागू हैं, १४ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को केवल उसी समय "उत्पादक" ढंग से नौकर रखा जा सकेगा, जब साथ ही उनकी प्राथमिक शिक्षा का भी बन्दोबस्त कर दिया जायेगा।"[20]

"फ़ैक्टरी-क़ानून की शिक्षा-संबंधी धाराएं कुल मिलाकर भले ही तुच्छ प्रतीत होती हों, पर उनसे यह अवश्य प्रकट हो जाता है कि प्राथमिक शिक्षा बच्चों को नौकर रखने की एक नितान्त आवश्यक शर्त बना दी गयी है। इन धाराओं की सफलता से पहली बार यह प्रमाणित हुआ कि हाथ के श्रम के साथ शिक्षा और व्यायाम को जोड़ना सम्भव है और इसलिए शिक्षा और व्यायाम के साथ हाथ का श्रम भी जोड़ा जा सकता है। स्कूल-मास्टरों से पूछ-ताछ करने पर फ़ैक्टरी-इंस्पेक्टरों को शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि यद्यपि फ़ैक्टरी में काम करने वाले बच्चों को नियमित रूप से स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की केवल आधी शिक्षा ही मिलती है, तथापि वे उन विद्यार्थियों के बराबर और अक्सर उनसे भी अधिक सीख जाते हैं।

> 'इसका कारण यह साधारण तथ्य है कि केवल आधे दिन स्कूल में बैठने के कारण ये बच्चे हमेशा ताज़ा रहते हैं और शिक्षा प्राप्त करने के लिए ये लगभग सदैव ही तैयार तथा राज़ी होते हैं। वे जिस व्यवस्था के अनुसार काम करते हैं, – यानी आधे दिन हाथ का श्रम करना और आधे दिन स्कूल में पढ़ना, – उससे श्रम और पढ़ाई दोनों एक दूसरे के संबंध में विश्राम और

4 1000

राहत का रूप धारण कर लेते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि दोनों काम बच्चे के लिए अधिक सुखकर बन जाते हैं। यदि बच्चे से लगातार श्रम या पढ़ाई कराई जाती, तो ऐसा न होता। यह बात बिल्कुल साफ़ है कि जो लड़का (ख़ास तौर पर गरमियों के मौसम में) सुबह से स्कूल में पढ़ रहा है, वह उस लड़के का मुक़ाबला नहीं कर सकता, जो अपने काम से ताज़ा और उल्लासपूर्ण दिमाग़ लिए हुए लौटता है।'

"इस विषय में और अधिक जानकारी सीनियर के उस भाषण से मिल सकती है, जो उन्होंने १८६३ में एडिनबर्ग में समाज-विज्ञान कांग्रेस में दिया था। उसमें सीनियर ने अन्य बातों के अलावा यह भी बताया है कि उच्च और मध्य श्रेणियों के बच्चों को स्कूलों में जो नीरस और व्यर्थ के लिए लम्बा समय बिताना पड़ता है, उससे शिक्षक का श्रम किस तरह फ़िज़ूल ही बढ़ जाता है, और शिक्षक किस तरह "न केवल अनुपयोगी ढंग से, बल्कि सर्वथा हानिकारक ढंग से बच्चों के समय, स्वास्थ्य और शक्ति का अपव्यय करता है।" जैसा कि रोबर्ट ओवेन[21] ने विस्तार के साथ हमें बताया है, फ़ैक्टरी-व्यवस्था में से भावी शिक्षा की कली फूटती है, – उस शिक्षा की, जो एक निश्चित आयु से ऊपर के प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा और व्यायाम के साथ-साथ उससे कोई उत्पादक श्रम कराने का भी प्रबंध करेगी, और यह केवल इसलिए नहीं किया जायेगा कि यह उत्पादन की कार्य-क्षमता को बढ़ाने का एक तरीक़ा है, बल्कि इसलिए भी कि पूरी तरह विकसित मानव के उत्पादन का यह एकमात्र तरीक़ा है।"[22]

क्या मार्क्स यह मानते थे कि श्रम की शिक्षा फ़ैक्टरी के बजाय स्कूल की चहारदीवारी में दी जानी चाहिए? कतई नहीं। पोलिटेक्निकल स्कूल की आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी वे फ़ैक्टरी में बच्चों के काम करने का समर्थन करते थे।

"पूंजीवादी व्यवस्था में पुराने पारिवारिक बंधनों का टूटना चाहे जितना भयंकर और घृणित क्यों न प्रतीत होता हो, परन्तु आधुनिक उद्योग **स्त्रियों, लड़के-लड़कियों और बच्चे-बच्चियों को घरेलू क्षेत्र के बाहर उत्पादन की क्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका देकर** (शब्दों पर

ज़ोर **लेखक** द्वारा) परिवार के और नारी तथा पुरुष के संबंधों के एक अधिक ऊंचे रूप के लिए एक नया आर्थिक आधार तैयार कर देता है।"[23]

मां-बाप द्वारा बच्चों के असीम शोषण, ख़ास तौर पर घरेलू उद्योग में शोषण के बारे में बताते हुए मार्क्स ने यह इंगित किया कि पूंजीवादी शोषण पद्धति ने माता-पिता की सत्ता के समनुरूप जो आर्थिक आधार था, उसे नष्ट करके इस सत्ता को दुरुपयोग में बदल दिया है। मार्क्स कहते हैं: "बच्चों के अधिकारों की घोषणा करना आवश्यक हो गया।" "बच्चों और लड़के-लड़कियों को एक प्राकृतिक अधिकार के रूप में संसद से यह मांग करने का हक होना चाहिए कि उनसे कोई ऐसा काम न लिया जाये, जो उनकी शारीरिक शक्ति को समय से पहले ही नष्ट कर देता हो और जो बौद्धिक तथा नैतिक जीवों के रूप में उनको पतन के गर्त में गिरा देता है।"[24] सार्वजनिक रूप से संगठित प्रक्रिया में लड़के-लड़कियां जो निर्णायक भूमिका अदा करते हैं, उससे भी बच्चों और माता-पिता के बीच संबंध बदलते हैं, बच्चे अधिक स्वावलंबी और सचेतन बनते हैं।

मार्क्स आगे लिखते हैं: "यह बात भी साफ़ है कि यदि काम करने-वालों के सामूहिक दल में स्त्री और पुरुष दोनों और हर उम्र के व्यक्ति शामिल हों, तो उपयुक्त परिस्थितियां होने पर यह तथ्य लाज़िमी तौर पर मानवीय विकास का कारण बन जायेगा, हालांकि अपने स्वयं-स्फूर्त ढंग से विकसित, पाशविक, पूंजीवादी रूप में, जहां उत्पादन की क्रिया मज़दूर के लिए नहीं होती, बल्कि मज़दूर का अस्तित्व उत्पादन की क्रिया के लिए होता है, यह तथ्य समाज में दुराचार और दासता का विष फैलाने का कारण बन जाता है।"[25]

बड़ों के साथ मिलकर काम करना बच्चों के विकास में सहायक होता है।

हम जानते हैं कि मार्क्स ने मज़दूरों के विकास पर स्वचालित फ़ैक्टरी के प्रभाव के बारे में क्या लिखा था। 'पूंजी' के पहले खंड में, सहकारीकरण के बारे में अध्याय में मार्क्स संयुक्त श्रम की शिक्षाप्रद भूमिका के बारे में लिखते हैं:

"बहुत-सी शक्तियों के मिलाप से जो एक नई ताक़त पैदा होती

है, उसके अलावा अधिकतर उद्योगों में महज़ सामाजिक सम्पर्क ही एक ऐसा स्पर्द्धा पैदा कर देता है और तबीयत के जोश (animal spirit) को इतना बढ़ा देता है कि हर मज़दूर की व्यक्तिगत कार्य-कुशलता पहले से बढ़ जाती है।"[26]

सितंबर १८६६ में जेनेवा में हुई प्रथम इंटरनेशनल की कांग्रेस में मार्क्स द्वारा लिखा गया निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था:

"बच्चे-बच्चियों और किशोर-किशोरियों को सामाजिक उत्पादन के काम में लगाने की आधुनिक उद्योग की प्रवृत्ति को हम प्रगति-शाली, हितकर और नियमसंगत मानते हैं, हालांकि पूंजीवाद के प्रभुत्व में यह प्रवृत्ति घिनौने रूप ग्रहण कर लेती है। विवेकसंगत सामाजिक व्यवस्था में बिना किसी अपवाद के सभी बच्चों को नौ वर्ष की आयु से उत्पादक श्रम में भाग लेना होगा; ठीक ऐसे ही किसी भी वयस्क को प्रकृति के इस सामान्य नियम से छूट नहीं मिल सकती कि मनुष्य को भोजन पाने के लिए काम करना चाहिए, और केवल दिमाग़ से नहीं, बल्कि हाथों से भी। इस दृष्टिकोण को मानते हुए हम यह कहते हैं कि माता-पिता को भी, और मालिकों को भी बच्चों के श्रम का उपयोग करने की इजाज़त समाज से तब तक नहीं मिलेगी, जब तक कि उनका उत्पादक श्रम शिक्षा से संलग्न न हो।

"शिक्षा से हमारा अभिप्राय तीन बातों से है: १) बौद्धिक शिक्षा; २) शारीरिक विकास, जैसा कि जिम्नास्टिक और फ़ौजी कवायद से होता है; ३) पोलीटेक्निकल शिक्षा, जो सभी उत्पादन प्रक्रियाओं के सामान्य वैज्ञानिक सिद्धांतों से परिचित कराती है और साथ ही बच्चे व किशोर को सभी उत्पादन कार्यों के बुनियादी औज़ारों से काम लेना सिखाती है।"[27]

आइये, मार्क्स की दो और रचनाओं पर ग़ौर करें: 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' (१८७१) तथा 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' (१८७५), जिनमें स्कूल के प्रति मार्क्स के रुख़ के दूसरे पहलुओं पर प्रकाश पड़ा है।

'फ़्रांस में गृहयुद्ध' में मार्क्स लिखते हैं:

"पुरानी सरकार की भौतिक शक्ति के मुख्य अवयव स्थायी सेना और पुलिस से छुटकारा पाने के बाद कम्यून दमन की आध्यात्मिक शक्ति, यानी "पादरी-शक्ति" को राज्य से चर्चों का संबंध ख़त्म

करके, उन्हें राज्य से मिलनेवाले अनुदान से वंचित करके, उनका सम्पत्तिधारी निकाय का रूप समाप्त करके – मिटा देने की इच्छुक थी। पादरियों को सार्वजनिक जीवन से हटाकर व्यक्तिगत रूप से सादा जीवन बिताने के लिए बाध्य किया गया, ताकि वे अपने पूर्ववर्ती संत-महात्माओं की तरह धर्मावलम्बियों के दान के सहारे जीवनयापन करें। सभी शिक्षा संस्थाएं आम जनता के लिए मुफ़्त कर दी गईं, उसके लिए खोल दी गईं, साथ ही उन्हें चर्च और राज्य के हर प्रकार के हस्तक्षेप से मुक्त किया गया। इस प्रकार न केवल स्कूली शिक्षा सब के लिए सुलभ बना दी गई, बल्कि विज्ञान को इन सभी बंधनों से मुक्त कर दिया गया, जिनमें वर्ग-पूर्वाग्रह एवं सरकारी दबाव ने उसे बांध रखा था।"[28]

मार्क्स कम्यून की इस बात के लिए प्रशंसा करते हैं कि उसने तुरंत ही स्कूल पर और सभी शिक्षा संस्थाओं पर चर्च और बुर्जुआ राज्य का, बुर्जुआ सरकारी सत्ता का, जो छोटी उम्र से ही लोगों की चेतना पर अंधकार का पर्दा डालने के लिए सभी कुछ करती थी, प्रभाव एकदम ख़त्म कर दिया।

'फ़्रांस में गृहयुद्ध' का एक और स्थान रोचक है। यह इंगित करते हुए कि कम्यून किसानों को आस-पास के शहरों के वैचारिक नेतृत्व के अधीन लाना तथा नगरों के मज़दूरों के रूप में उन्हें उनके हितों के स्वाभाविक प्रतिनिधि दिलाना चाहती थी, मार्क्स लिखते हैं: "कम्यून किसानों को रक्त-कर से छुटकारा दिलाती, उन्हें सस्ती सरकार देती, उनके वर्तमान ख़ून चूसनेवालों – लेख्य-प्रमाणकों, वकीलों, निष्पादकों तथा अन्य अदालती जोंकों – के स्थान पर कम्यून के वेतनभोगी तथा किसानों के द्वारा निर्वाचित और उन्हीं के प्रति उत्तरदायी कर्मचारी नियुक्त करती। वह उन्हें ग्रामीण पुलिस, जेन्दार्म और प्रीफ़ेक्ट की धांधली से छुटकारा दिलाती; पादरियों द्वारा मूर्ख बनाये जाने के बदले स्कूल के शिक्षकों द्वारा ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कराती।"[29]

मई १८७५ में गोथा नगर में हुई जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी की कांग्रेस में कतिपय संशोधनों के साथ स्वीकृत कार्यक्रम की आलोचना करते हुए मार्क्स ने शिक्षा के प्रश्न पर भी अपने विचार व्यक्त किये। स्त्रियों का श्रम सीमित करने और बाल-श्रम पर प्रतिबंध लगाने के

मुद्दे की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा : " '**बाल-श्रम की मनाही**!' यहां आयुसीमा का उल्लेख एकदम अनिवार्य था।

"**बाल-श्रम की पूर्ण मनाही** बड़े पैमाने के उद्योग के अस्तित्व के साथ असंगत है और इसलिए एक थोथी सदिच्छा मात्र है।

"इसकी पूर्ति – यदि वह संभव हो, तो – प्रतिक्रियावादी होगी, क्योंकि विभिन्न आयु-समुदायों के अनुसार कार्य-काल के कड़े नियमन तथा बालकों के संरक्षण के लिए अन्य सुरक्षा-उपायों द्वारा उत्पादक श्रम का शिक्षा के साथ यथाशीघ्र संयोग वर्तमान समाज के रूपांतरण के सबसे प्रभावी साधनों में एक है।"[30]

उस मुद्दे पर ग़ौर करते हुए, जिसमें जर्मन मज़दूर पार्टी की ओर से मांग की गई थी कि : "सार्विक और **सबके लिए समान जनशिक्षा हो**, जो राज्य के हाथों में हो। स्कूल जाना अनिवार्य हो। शिक्षा निश्शुल्क हो।" मार्क्स ने लिखा :

"**समान सार्वजनिक शिक्षा**? इन शब्दों में क्या भाव है? क्या यह ख़याल किया जाता है कि वर्तमान समाज में (और वास्ता सिर्फ़ इसी से ही है) शिक्षा सभी वर्गों के लिए **समान** हो सकती है? या यह मांग की जाती है कि उच्च वर्ग भी शिक्षा के न्यूनतम स्तर – प्राथमिक स्कूल – पर बलात् ले आये जायेंगे, एकमात्र वह स्तर जो न केवल मज़दूरों, बल्कि किसानों की भी आर्थिक स्थितियों के अनुरूप है?

" 'सार्विक अनिवार्य स्कूली हाज़िरी। निश्शुल्क शिक्षण।' प्रथमोक्त जर्मनी तक में विद्यमान है, दूसरा स्विट्ज़रलैंड में और प्राथमिक स्कूलों के मामले में संयुक्त राज्य अमरीका में है। अमरीका के कुछ राज्यों में अगर उच्च शिक्षा संस्थाएं भी "निश्शुल्क" हैं, तो वास्तव में इसका अर्थ केवल सामान्य करों की प्राप्तियों से उच्च वर्गों की शिक्षा का ख़र्च अदा करना ही है। [...]

"स्कूल संबंधी पैराग्राफ़ में प्राथमिक स्कूल के साथ-साथ कम से कम तकनीकी स्कूलों (सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक) की मांग की जानी चाहिए थी।

" '**राज्य द्वारा सार्वजनिक शिक्षा**' की बात एकदम आपत्तिजनक है। सामान्य क़ानून द्वारा प्राथमिक स्कूलों पर व्यय, शिक्षकों की योग्यता, शिक्षा विषयों, आदि का निर्धारण और, जैसा कि संयुक्त राज्य

अमरीका में किया जाता है, इन क़ानूनी निर्देशों का राजकीय निरीक्षकों की अधीक्षण में पालन, राज्य को जनता का शिक्षक नियुक्त करने से बहुत भिन्न चीज़ है! बल्कि सरकार और चर्च को स्कूल पर कोई भी प्रभाव डालने से समान रूप से वंचित कर देना चाहिए। विशेषकर प्रशियाई-जर्मन साम्राज्य में (और इसमें इस सड़ियल ढोंग की आड़ नहीं लेनी चाहिए कि बात एक "भविष्य के राज्य" की हो रही है; हम देख चुके हैं कि इस लिहाज़ से स्थिति क्या है) तो असल में, इसके विपरीत, राज्य को जनता द्वारा बहुत सख़्त शिक्षा दी जाने की ज़रूरत है।"[31]

मार्क्स उदीयमान पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा को चर्च के, बुर्जुआ राज्य के चंगुल से छुड़ाना चाहते थे। उन्होंने लासालपंथियों[32] से ज़ोरदार बहस की। ये लासालपंथी सोचते थे कि बुर्जुआ सरकार से सौदेबाज़ी की जा सकती है, उससे किन्हीं ऐसे सुधारों की उम्मीद की जा सकती है, जिनसे मज़दूर वर्ग को कोई वास्तविक सहायता मिलती हो, इतना ही नहीं, ऐसे सुधारों की भी, जो सारी सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की तैयारी आसान करते हों। मार्क्स तो यही चाहते थे कि बच्चों और किशोरों की शिक्षा-दीक्षा का कार्य इस तरह संगठित हो, जिससे कि वह समसामयिक समाज के पुनर्गठन का सशक्त साधन बन जाये।

हमने यहां शिक्षा के बारे में मार्क्स के कथनों में से केवल कुछेक पर ही ग़ौर किया है। यहां हमने जो कथन उद्धृत किये हैं, वे सोवियत स्कूली शिक्षा-पद्धति के लिए पथ-प्रदर्शक हैं। अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार हम उदीयमान पीढ़ी की शिक्षा और चरित्र-निर्माण के कार्य को उस उच्च स्तर पर उठाने का यत्न कर रहे हैं, जिस पर मार्क्स उसे सर्वहारा अधिनायकत्व के काल में देखना चाहते थे। वैसे जनशिक्षा के हमारे काम में हमें मार्क्स के इस विषय पर कथनों से ही मदद नहीं मिलती। उनकी समग्र शिक्षा, परिघटनाओं के अध्ययन की उनकी द्वंद्वात्मक विधि हमारे काम में सहायक है। हम मार्क्स की प्रस्थापनाओं का व्यापक विकास करके उन्हें पूरी तरह से क्रियान्वित तभी कर सकेंगे, जबकि उनकी शिक्षा व्यापकतम जनसमूह तक पहुंच जायेगी। इसके लिए हम अथक कार्य कर रहे हैं।

१९३३

पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के लिए संघर्ष में लेनिन की भूमिका

लेनिन सदा उदीयमान पीढ़ी की शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण को असाधारण महत्व का कार्य समझते थे। स्कूल को वह वर्गहीन समाज की तैयारी का, सारी उदीयमान पीढ़ी को कम्युनिज़्म की भावना में शिक्षित करने का साधन समझते थे। लेनिन के पिता एक मेधावी अध्यापक थे, उन्होंने आम प्राथमिक शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दिया था और जीवनपर्यंत इस शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाने के लिए काम करते रहे थे। ऐसे पिता के पुत्र व्लादीमिर इल्यीच ने बड़े ध्यान से वह सब पढ़ा, जो मार्क्स और एंगेल्स ने स्कूली शिक्षा के बारे में, शिक्षा को उत्पादक श्रम से जोड़ने के बारे में लिखा था। १८९७ में जब हमारे देश में लोगों का ध्यान मार्क्सवाद की ओर आकर्षित हो ही रहा था और नरोदवादियों[1] के साथ, जो समाजवाद की ओर पथ की एकदम ग़लत कल्पना करते थे, संघर्ष चल रहा था, उन्हीं दिनों लेनिन ने 'नरोदवादियों की मनसूबेबाज़ी के कमाल' नामक लेख लिखा था। नरोदवादी युझाकोव[2] ने यह योजना बनायी थी कि कैसे किसानों के बेटे-बेटियों को ज्ञान पाने का अवसर प्रदान किया जाये। इसके लिए उन्होंने गांवों में हानि-लाभ के आधार पर काम करनेवाले ऐसे स्कूल खोलने का प्रस्ताव रखा, जिनके अधीन बड़े-बड़े फ़ार्म हों। अमीर किसान अपने बच्चों के लिए फ़ीस देंगे, जबकि गरीबों के बच्चे अपने रहन-सहन के खर्चे और फ़ीस के बदले काम करेंगे। ऐसे स्कूलों का

पाठ्यक्रम ज़ारशाही के ज़माने के स्कूलोंवाला ही होना था। लेनिन ऐसी मनसूबेबाज़ी पर आगबबूला हो गये। युभाकोव का ख़याल था कि किसी भी तरह के संघर्ष के बिना, समाज में विद्यमान वर्ग-विभाजन और निरंकुश शासन व्यवस्था बनाये रखकर किसानों के लिए बहुसंख्य स्कूल खोले जा सकते हैं। सेंसर की पाबंदियों के कारण लेनिन को अपनी बात प्रच्छन्न रूप से, रूपकों में, इशारों से कहनी पड़ी, लेकिन फिर भी वह जो कहना चाहते थे, वह उन्होंने कह डाला, इस मनसूबेबाज़ी की सारी अव्यावहारिकता, इसकी निर्बलता सिद्ध कर दी, यह दिखा दिया कि युभाकोव रूसी यथार्थ को, रूसी समाज के वर्ग स्वरूप को नहीं समझते, कि उनकी सारी योजना, जो नौजवानों को ज़मीन से बांधे रखती है, भूदासतावादी भावना के रंग में रंगी हुई है, किसान लड़के-लड़कियों को परवश खेत-मज़दूरों में बदलती है, ऐसे परवश लोगों में, जो २५ वर्ष की आयु में भी स्कूल के प्रधानों की अनुमति के बिना विवाह नहीं कर सकते। युभाकोव की इस योजना के मुकाबले में लेनिन ने सबके लिए अनिवार्य एकीकृत श्रम-विद्यालय का विचार रखा, जिसमें गंभीर ज्ञान भी दिया जाये और सभी छात्र काम भी करें।

इसके बाद लेनिन ने अरसे तक इस प्रश्न पर कुछ नहीं लिखा, लेकिन बच्चों-किशोरों के श्रम की ओर सदा बहुत ध्यान देते रहे, उनकी श्रम-रक्षा की आवश्यकता के बारे में लिखा और इस बारे में कि किशोरों को शुरू से ही राजनीति में लाना चाहिए।

जब विश्व युद्ध छिड़ा, तो लेनिन ने मानवजाति के इतिहास में विराट ऐतिहासिक परिवर्तनों की पूर्वकल्पना करते हुए और उदीयमान पीढ़ी के बारे में सोचते हुए चरित्र-निर्माण के प्रश्नों पर ग़ौर किया। ग्रनात[3] के लिए लिखे गये लेख 'कार्ल मार्क्स' के 'समाजवाद' अनुच्छेद में उन्होंने शिक्षा को उत्पादक श्रम से संलग्न करने के बारे में मार्क्स का उद्धरण दिया। व्लादीमिर इल्यीच ने तब मुझे यह सलाह दी कि शिक्षा को उत्पादक श्रम से जोड़ने की दिशा में अग्रणी औद्योगिक देशों में जो कुछ किया गया है और किया जा रहा है, उसके बारे में मैं किताब लिखने बैठूं। परिणामस्वरूप मैंने 'जनशिक्षा और जनवाद' नामक पुस्तिका लिखी, जिसे लेनिन ने बड़े ध्यान से पढ़ा और उसे छपवाने की फ़िक्र करने लगे। युद्ध के वर्षों में विदेश-प्रवास के दौरान,

उन्होंने वर्ग संघर्ष में, गृहयुद्ध में युवाजन के भाग लेने की आवश्यकता के बारे में लिखा, यह भी लिखा कि १५ वर्ष की आयु से किशोरों को सर्वहारा मिलीशिया के सर्वजनिक कार्य में भाग लेना चाहिए।

१९१८ में पार्टी के कार्यक्रम का मसविदा तैयार करते हुए लेनिन ने स्कूली शिक्षा के बारे में अनुच्छेद इस तरह निरूपित किया: यह सुनिश्चित करना चाहिए कि "**१६ साल तक के सभी लड़के-लड़कियों को निश्शुल्क और अनिवार्य सामान्य एवं पोलीटेक्निकल (यानी उत्पादन की सभी प्रमुख शाखाओं से सिद्धांत और व्यवहार में परिचित करानेवाली) शिक्षा उपलब्ध हो; शिक्षा का बच्चों के सामाजिक-उत्पादक श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध हों।**"[4] इस मसविदे में लेनिन ने बच्चों के सामाजिक उत्पादक श्रम की अनिवार्यता पर ख़ास तौर से ज़ोर दिया था।

सत्ता हाथ में लेने के क्षण से इल्यीच इस बात पर ज़ोर देने लगे थे कि शिक्षा की जन-कमिसारियत पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति को लागू करने का काम शुरू करे। बिना किसी अनुभव के, अपार आर्थिक तबाही के हालात में यह काम करना पड़ा। शुरू में यह काम मुख्यत: प्रायोगिक स्कूलों में ही किया गया। अपने आरंभिक चरण में "पोलीटेक्निकल" शिक्षा काफ़ी दयनीय थी, यह मुख्यत: स्वयंसेवा, बढ़ईगिरी, कपड़े सीने और जिल्दसाज़ी के काम में भाग लेने तक ही सीमित थी। लेनिन चाहते थे कि सभी शिक्षा संस्थाओं में विद्युतीकरण की शिक्षा गंभीर रूप से दी जाये, इसके लिए उन्होंने काम की रूपरेखा भी तैयार कर दी थी। यह दिसंबर १९२० की बात है।

व्लादीमिर इल्यीच का ख़याल था कि हमारे यहां स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने का काम बहुत ही धीमी गति से हो रहा है। शिक्षा जन-कमिसारियत में एक मत यह था कि स्कूलों में छोटी कक्षाओं से ही व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए। इस मत के समर्थकों का कहना था कि पोलीटेक्निकल शिक्षा की कोई ज़रूरत नहीं, मोनोटेक्निकल शिक्षा की ज़रूरत है। ऐसी बातें भी सुनने में आती थीं कि पोलीटेक्निकल शिक्षा सभी जगह लागू करना असंभव है, कि इसे केवल बड़े नगरों में ही लागू किया जाना चाहिए, गांवों में ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उक्राइना में तो पोलीटेक्निकल शिक्षा के

विचार को बिल्कुल तोड़-मरोड़ दिया गया था। लेनिन का आग्रह था कि पार्टी सम्मेलन बुलाया जाये।[5] इस सम्मेलन में मुझे पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में रिपोर्ट पेश करनी थी। कहना न होगा कि इसकी प्रस्थापनाओं का खाका मैंने इल्यीच को दिखाया। इल्यीच ने उस पर अपनी टिप्पणियां लिखीं, साथ ही सबसे ऊपर लिख दिया: "निजी। कच्चा। **ज़ाहिर न किया जाये।** मैं अभी इस पर और एक-दो बार अच्छी तरह सोच-विचार करूंगा।"[6] अब मेरी पहलक़दमी पर ये प्रस्थापनाएं ज़ाहिर कर दी गई हैं। तब से काफ़ी समय बीत चुका है, पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न जीवन में बड़े तीक्ष्ण रूप में उभर रहा है। सो मुझे लगा कि जो बात तब ज़ाहिर नहीं करनी चाहिए थी, अब उसे ज़ाहिर करना आवश्यक है। अब तो हम लेनिन की कच्ची टिप्पणियों का भी अध्ययन करते हैं। मेरी प्रस्थापनाएं तब काम में नहीं आयी थीं। मैं बीमार पड़ गई थी और सम्मेलन में रिपोर्ट पेश नहीं कर सकी। इल्यीच की टिप्पणियों में किस बारे में कहा गया था? **पोलीटेक्निकल शिक्षा के बुनियादी महत्व पर** ज़ोर देने की आवश्यकता के बारे में। स्वयं इल्यीच इसे अपार महत्व की बात समझते थे। उनका विचार था कि पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति से वर्गहीन समाज का आधार बनाने में मदद मिलेगी। और वह चाहते थे कि मेरी प्रस्थापनाओं में इस बात पर ज़ोर दिया गया हो। आगे, इल्यीच के विचार में, यह कहना आवश्यक था कि पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति तुरंत लागू की जानी चाहिए। मेरी प्रस्थापनाओं में व्यावसायिक शिक्षा के समर्थकों को रियायत दी गई थी। प्रत्यक्षतः (प्रस्थापनाओं का पाठ मेरे पास नहीं बचा है) मैंने यह लिखा था कि स्कूल के द्वितीय चरण का संशोधित व्यावसायिक विद्यालयों में विलय होना चाहिए, इल्यीच ने जोड़ा था कि "सारे दूसरे चरण का नहीं, बल्कि १३-१४ वर्ष की आयु से **शिक्षकों के निर्देश और निर्णय के अनुसार** विलय होना चाहिए"।[7] पार्टी सम्मेलन में यह आयु १५ वर्ष निर्धारित की गई। 'शिक्षा जन-कमिसारियत के काम के बारे में' लेख में, जो पार्टी सम्मेलन के निर्णयों के सिलसिले में लिखा गया था, लेनिन ने लिखा: "यदि हमें (सामान्य पोलीटेक्निकल शिक्षा से व्यावसायिक-पोलीटेक्निकल शिक्षा की ओर संक्रमण की) आयु **अस्थाई तौर पर** १७ वर्ष से घटाकर १५ वर्ष करनी

पड़ रही है, तो आयु सीमा में इस कमी को "**पार्टी को**" "केवल" (केंद्रीय समिति के निर्देशों का मुद्दा १) व्यावहारिक आवश्यकता के रूप में अस्थाई क़दम के तौर पर "**देखना चाहिए**", जो "**देश की ग़रीबी और तबाहहाली**" के कारण उठाना पड़ा है।[8]

इल्यीच ने आगे व्यावसायिक स्कूलों के बारे में, जिनमें स्कूल के द्वितीय चरण की बड़ी कक्षाओं का विलय होना था, जो कुछ लिखा है, उसे प्रायः सातवीं कक्षा तक के स्कूलों पर लागू किया जाता है। लेनिन ने व्यावसायिक स्कूलों के बारे में लिखा है कि उन्हें कारीगरों के स्कूल न बनकर पोलीटेक्निकल शिक्षा के केंद्र बनना चाहिए, कि इनमें सामान्य शिक्षा विषयों को काफ़ी स्थान दिया जाना चाहिए, उन्हें पोलीटेक्निकल रंग देना चाहिए। यह बात फ़ैक्टरी-कारखाना शार्गिर्दी स्कूलों[9] और तकनीकी विद्यालयों पर लागू होती है। और यह बात भूलनी नहीं चाहिए। आगे लेनिन ने इस बात के ठोस निर्देश तैयार करने की ज़रूरत की चर्चा की है कि किस तरह हमारी परिस्थितियों में स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू की जाये। लेनिन संस्थान के अभिलेखागार में क्रमांक ३६४६ की लेनिन की एक और टिप्पणी है, जिसका संबंध पोलीटेक्निकल शिक्षा से है। वह लिखते हैं: "जोड़ा जाये: १) नौजवानों और वयस्कों के लिए पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में; २) स्कूल में (बच्चों द्वारा) स्वयंसेवा और पहलकदमी।

"**वयस्कों के लिए** – व्यावसायिक शिक्षा का विकास और पोलीटेक्निकल शिक्षा में उसका रूपांतरण।"[10]

यह टिप्पणी कब और किस सिलसिले में लिखी गई इसका कोई संकेत अभिलेखागार में नहीं है। लेकिन यह टिप्पणी हमारे लिए नितांत महत्वपूर्ण है।

फ़रवरी १९२१ में प्रकाशित लेनिन के लेख 'शिक्षा जन-कमिसारियत के काम बारे में' तथा उनके द्वारा लिखे गये 'शिक्षा जन-कमिसारियत के कम्युनिस्ट सदस्यों के नाम केंद्रीय समिति के निर्देश' हमें बहुत कुछ देते हैं। 'निर्देशों' में स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने की आवश्यकता और व्यावसायिक शिक्षा को पोलीटेक्निकल शिक्षा के साथ संलग्न करने की अनिवार्यता की चर्चा की

गई थी, यह कहा गया था कि सभी उपयुक्त तकनीकी और कृषि विशेषज्ञों को व्यावसायिक-तकनीकी और पोलीटेक्निकल शिक्षा में कार्यप्रवृत्त किया जाये, कि थोड़ा बहुत भी ढंग से काम कर रहे कारखानों और फ़ार्मों में से प्रत्येक का उपयोग किया जाये।

दिसंबर १९२१ में हुई सोवियतों की नौवीं कांग्रेस में इल्यीच ने इस बात पर ज़ोर दिया कि स्कूलों का काम सारे जनतंत्र के भी और जिस प्रदेश, जिस इलाके में स्कूल हो, उसके भी आर्थिक कार्यभारों के साथ संबंधित होना चाहिए।

लेनिन के कथनों में हम इस बात के बड़े ठोस निर्देश पाते हैं कि पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति का निर्माण कैसे किया जाये। पांच वर्ष तक यह काम उनके संचालन में होता रहा और आगे के वर्षों में भी उनकी बताई दिशा में चलता रहा है।

अब ऐसे कुछ सामान्य पूर्वाधार बना लिये गये हैं, जिनसे यह काम आसान होता है। सबसे महत्वपूर्ण पूर्वाधार है – हमारे उद्योग की सफलताएं, हमारे देश का औद्योगीकरण, कृषि का नये आधार पर पुनर्गठन ; अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध होने का अपार महत्व है : इससे पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण व्यापक होता है, यह पता चलता है कि किस प्रकार उद्योग की विभिन्न शाखाएं परस्पर संबंधित हैं ; हमारे उद्योग और कृषि के कर्मियों का प्रशिक्षण ज़ोरों से हो रहा है, मेहनतकश अवाम में श्रम के प्रति सचेतन रुख बढ़ रहा है, जिसमें समाजवादी प्रतियोगिता विशेषतः सहायक है, सचेतन अनुशासन बढ़ रहा है। सभी बच्चे प्राथमिक स्कूल में जाते हैं, प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य हो गई है। अब हम सातवीं कक्षा तक शिक्षा अनिवार्य करने पर आ रहे हैं ; हमारे पास बड़ी संख्या में कोमसोमोल और पायोनियर कार्यकर्ता हैं, जो स्कूल की मदद करते हैं ; स्कूलों को प्रतिष्ठानों के साथ जोड़ा जाने लगा है। स्कूली शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाने के काम को पार्टी विशेष महत्व प्रदान करती है।

ये सब वे पूर्वाधार हैं, जिनसे पोलीटेक्निकल स्कूली शिक्षा का प्रचलन आसान होता है। शिक्षा की गुणवत्ता के लिए संघर्ष भी, जो आजकल बड़े पैमाने पर चल रहा है, इस काम को आसान करता है। लेकिन हमारे स्कूलों में अभी लेनिन के निर्देशों पर पूरी तरह अमल

नहीं हुआ है, स्कूली शिक्षा के कार्य में लेनिन के निर्देशों के पालन के लिए आगे भी संघर्ष की ज़रूरत है। हम जो रास्ता तय कर चुके हैं, उससे हमें बहुत-सी ग़लतियों से बचने में मदद मिलेगी। हम जानते हैं कि जिस स्वयंसेवा से पोलीटेक्निकल स्कूल का गठन शुरू हुआ था, उससे कितना कम हाथ लगता है; लेकिन हम जानते हैं कि सभ्यतापूर्ण रहन-सहन के लिए, रहन-सहन को उच्च स्तर पर उठाने के लिए संघर्ष चल रहा है, और स्कूल इस काम से दरकिनार नहीं रह सकता, उसे बच्चों को वह ज्ञान और कौशल सिखाना चाहिए, जिसकी उन्हें रहन-सहन को विवेकसंगत बनाने के लिए आवश्यकता है; हम जानते हैं कि हमारी पोलीटेक्निकल शिक्षा को शिल्पों की शिक्षा बनकर नहीं रह जाना चाहिए, लेकिन हम यह भी जानते हैं कि कुछ बुनियादी शिल्प-कार्य करने आने चाहिए, ताकि आधुनिक मशीनों का गहराई से अध्ययन किया जा सके; हम बहुशिल्पी शिक्षा के भी विरुद्ध हैं, जो पोलीटेक्निकल शिक्षा के स्थान पर लागू की जाती रही है। हम बच्चों के उत्पादक श्रम का समर्थन करते हैं, लेकिन इस बात के विरुद्ध हैं कि उत्पादक श्रम शिक्षा का स्थान ले और शिक्षा की ओर न्यूनतम ध्यान दिया जाये।... इस विकृति के विरुद्ध पिछले सारे साल संघर्ष चलता रहा है। लेकिन हम उत्पादक श्रम के स्थान पर स्कूल में मात्र शैक्षिक श्रम कराने के भी विरुद्ध हैं। हम जानते हैं कि शिक्षा और उत्पादक श्रम का पास-पास विद्यमान होना ही काफ़ी नहीं है – इनके बीच घनिष्ठतम संबंध होना चाहिए, लेकिन यह संबंध यंत्रवत नहीं होना चाहिए, वह बहुत सोच-समझकर बनाया गया होना चाहिए। लेनिन इस बात के ख़िलाफ़ थे कि लड़के-लड़कियां केवल स्कूल की चहारदीवारी में ही शिक्षा पायें, वह इस बात का समर्थन करते थे कि किशोर बड़ों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करें; लेकिन हम जानते हैं कि प्रतिष्ठानों में छात्रों का श्रम शैक्षिक दृष्टि से संगठित होना चाहिए, उसपर पोलीटेक्निकल शिक्षा के दृष्टिकोण से विचार किया गया होना चाहिए और इस श्रम के ध्येय शैक्षिक व चरित्र-निर्माणात्मक होने चाहिए।

पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति के गठन का जो मार्ग हमने तय किया है, उससे हम बहुत कुछ सीख पाये हैं। सच्चे अर्थों में पोलीटेक्निकल

स्कूल बना पाने के लिए हमें और बहुत कुछ सीखना है, हम इसका ज़ोरों से निर्माण कर रहे हैं और इसे वैसा बनाकर रहेंगे, जैसा लेनिन इसे देखना चाहते थे।

१९३२

उदीयमान पीढ़ी की सार्विक शिक्षा और पोलीटेक्निकल श्रम के बारे में लेनिन के विचार

('युवाजन के बारे में लेनिन के विचार' लेख से उद्धृत)

किशोरों और युवाजन के श्रम के प्रश्न को व्लादीमिर इल्यीच उनकी शिक्षा और श्रम को नये ढंग से संगठित करने के प्रश्न के साथ जोड़ते थे। १८९७ में ही 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल' नामक लेख में उन्होंने लिखा था: "... युवा पीढ़ी के शिक्षण को उत्पादक श्रम से संलग्न किये बिना भावी समाज के आदर्श की कल्पना नहीं की जा सकती: न तो उत्पादक श्रम के बिना शिक्षण और शिक्षा को, न ही समांतर शिक्षण और शिक्षा के बिना उत्पादक श्रम को उस उच्च स्तर पर पहुंचाया जा सकता है, जो प्रविधि के आधुनिक स्तर तथा वैज्ञानिक ज्ञान की आधुनिक स्थिति के लिए अपेक्षित है।" आगे इसी रचना में उन्होंने लिखा: "सार्विक उत्पादक श्रम को सार्विक शिक्षा के साथ संलग्न करने के लिए प्रत्यक्षतः सबका यह दायित्व बनाना होगा कि वे उत्पादक श्रम में भाग लें।"[1]

सो, शिक्षा पाना, स्कूल जाना भी सभी के लिए अनिवार्य होना चाहिए और सामाजिक उत्पादक श्रम भी सभी के लिए अनिवार्य होना चाहिए। पार्टी की दूसरी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम में, एक ओर, १६ वर्ष की आयु तक सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा की तथा, दूसरी ओर, १६ वर्ष तक किशोरों के श्रम की मनाही तथा १६ से १८ वर्ष तक के युवाजन के श्रम को छह घंटों तक सीमित करने की बात कही गई थी। १९१७ में जब पुराने कार्यक्रम के स्थान पर नया कार्यक्रम स्वीकृत करने की आवश्यकता का प्रश्न उठा, तो इल्यीच ने

इस प्रश्न पर आगे काम किया था।

'पार्टी कार्यक्रम पर पुनर्विचार की सामग्री' में, जो उन्होंने लिखी थी, तत्संबंधी मुद्दे इस प्रकार निरूपित किये गये: '**उद्योगपतियों पर स्कूल आयु में (१६ वर्ष तक) बच्चों के श्रम का उपयोग करने का प्रतिबंध, युवाजन (१६ से २० वर्ष) के श्रम-दिवस की अवधि चार घंटे तक सीमित करना और उन्हें रात को काम करने, स्वास्थ्य के लिए हानिकर प्रतिष्ठानों और खानों में काम की मनाही**"। "**१६ वर्ष की आयु तक सभी लड़के-लड़कियों के लिए निश्शुल्क और अनिवार्य सामान्य एवं पोलीटेक्निकल (सिद्धांत और व्यवहार में उत्पादन की सभी प्रमुख शाखाओं से परिचित कराने वाली) शिक्षा; शिक्षा का बच्चों के सामाजिक-उत्पादक श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध**"।[2] (शब्दों पर ज़ोर **लेखक** द्वारा)।

यहां अंतिम वाक्यांश पर ख़ास तौर से ध्यान देना चाहिए। इसका मर्म यह है कि स्कूल को न केवल पोलीटेक्निकल ज्ञान और कौशल प्रदान करना चाहिए, बल्कि इस ज्ञान और कौशल का किशोरों के सामाजिक उत्पादक श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध होना चाहिए, यह श्रम मशक्क़त नहीं किया जायेगा, उलटे सबके लिए अनिवार्य होगा, हां, इसका संगठन नये ढंग से होगा, इस तरह कि यह श्रम-शिक्षा के साथ, विज्ञान और प्रविधि के चहुंमुखी अध्ययन के साथ घनिष्ठ रूप से संलग्न हो।

मज़दूरों को उत्पादन का संचालन करना सीखना चाहिए – यह कार्यभार १९२० में विशेषतः स्पष्ट रूप से हमारे सामने आया, जब गृहयुद्ध पृष्ठभूमि में जा रहा था और आर्थिक कार्यभार अग्रभूमि में आ रहे थे। मार्च १९२० में जल-परिवहन के कर्मियों की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में लेनिन ने कहा था: "लेकिन वह व्यक्ति जो व्यावहारिक जीवन पर नज़र रखता है और जिसे जीवन का अनुभव है, वह जानता है कि संचालन करने के लिए इसके योग्य होना चाहिए, उत्पादन की सभी परिस्थितियां पूरी तरह से और बारीकी में मालूम होनी चाहिए, इस उत्पादन-कार्य की तकनीक का उसके आधुनिक स्तर पर ज्ञान होना चाहिए, निश्चित वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए।"[3]

श्रम के प्रश्न अग्रभूमि में आ गये। अप्रैल १९२० में लेनिन ने

एकदिवसीय समाचारपत्र 'कम्युनिस्ट सुब्बोत्निक' के लिए 'पुरानी व्यवस्था के विध्वंस से नई व्यवस्था के सृजन की ओर' विषय पर लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने यह समझाया था कि कम्युनिस्ट श्रम क्या है। पहली मई को अखिल रूसी सुब्बोत्निक होने जा रहा था, जिसके सिलसिले में लेनिन ने लिखा: "हम ... काम को मात्र कर्त्तव्य समझने और उसी काम को उचित समझने की आदत को, जिसके लिए एक ख़ास दर पर उजरत दी जाती हो, समाप्त करने की चेष्टा करेंगे। हम इस नियम को: 'समष्टि व्यक्ति के लिए तथा व्यक्ति समष्टि के लिए', और इस नियम को: 'प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार' लोगों के मन में अच्छी तरह बैठा देने, उसकी आदत बना देने तथा जनसाधारण के दैनंदिन के जीवन में उसे लागू करने की चेष्टा करेंगे। हम कम्युनिस्ट अनुशासन तथा कम्युनिस्ट श्रम को क्रमिक परंतु दृढ़ रूप से लागू करने की चेष्टा करेंगे।"[4]

२ अक्तूबर १६२० को रूसी कम्युनिस्ट युवा संघ की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेसं में दिया गया लेनिन का भाषण बिल्कुल विशेष महत्व रखता है। यह भाषण लेनिन ने युवाजन को दिया था, जिनसे उन्हें बहुत आशाएं थीं। यह भाषण उन्होंने बड़ी बरीकी से तैयार किया था। उन्होंने कहा था: "हम नौजवानों को क्या सिखायें और वे, यदि वास्तव में कम्युनिस्ट युवक का नाम सार्थक करना चाहते हैं, तो वे किस प्रकार सीखें और उन्हें किस तरह प्रशिक्षित किया जाए, ताकि जो काम हमने आरम्भ किया है, वे उसे पूरा करने और उत्कृष्ट बनाने के योग्य बन सकें।"[5] युवाजन को कम्युनिज़्म की शिक्षा पानी चाहिए। लेकिन यह अध्ययन कम्युनिज़्म के बारे में जो कुछ लिखा गया है, उसे आत्मसात करने तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। इस सारे ज्ञान को इस तरह जोड़ना आना चाहिए, जिससे एक समग्र सोच-समझकर तैयार की गई प्रणाली बने, जो कि दैनंदिन और चहुं-मुखी कार्य में मार्गदर्शन करे। मार्क्सवाद का, उन सब तथ्यों का अध्ययन करना चाहिए जो मानव समाज के विकास के नियमों पर प्रकाश डालते हैं, जो यह दिखाते हैं कि सामाजिक विकास किधर जा रहा है, पूंजीवादी समाज का भी और हमारे समसामयिक यथार्थ

का भी गहराई से अध्ययन करना चाहिए। पुरानी स्कूली शिक्षा, जो ज्ञान देती थी, उसमें से वह अंश चुनना चाहिए, जो कम्युनिज़्म के लिए आवश्यक है।

लेनिन इस बात की आवश्यकता पर ख़ास तौर से ज़ोर देते थे कि युवाजन ज्ञान से लैस हों, मानवजाति द्वारा संचित सारा ज्ञान पायें। युवा पीढ़ी को पूर्ववर्ती पीढ़ी से, जिसके सम्मुख सर्वप्रथम बुर्जुआ वर्ग का तख़्ता पलटने का कार्यभार था, अधिक ज्ञान पाने की आवश्यकता है। आज के युवाजन को कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करना है – इसके लिए व्यापक ज्ञान चाहिए। इल्यीच ने इस बात की चर्चा की कि युवाजन को अपनी नई कम्युनिस्ट नैतिकता बनाने के लिए किस बात की आवश्यकता है, ऐसी नैतिकता बनाने के लिए, जो निजी हितों को सामान्य हितों के अधीन रखे, जो सेनानी और निर्माता के सचेतन अनुशासन का विकास करे, कि युवाजन को संघर्ष में एकजुट होकर काम करने के लिए, अपने सामूहिक श्रम को नये ढंग से संगठित करते हुए काम करना सीखने के लिए क्या चाहिए :

"हमें ऐसी पढ़ाई, तरबियत और शिक्षा में विश्वास नहीं है, जो जीवन के बावंडरों से अलग-थलग केवल स्कूलों तक सीमित होती है। [......] हमारे स्कूलों में नौजवानों को मूलभूत ज्ञान प्राप्त होना चाहिए, कम्युनिस्ट विचार स्वयं निश्चित कर लेने की योग्यता प्राप्त होनी चाहिए, उन्हें शिक्षित बनाया जाना चाहिए। स्कूल में विद्याभ्यास के साथ-साथ उन्हें शोषकों से मुक्ति पाने के संघर्ष में भाग लेनेवाला बनना चाहिए।"[6]

"युवक संघ का सदस्य होने का अर्थ है अपने प्रयास और अपनी मेहनत को साझे ध्येय की पूर्ति में लगाना। कम्युनिस्ट तरबियत का यही मतलब है। [...]

"कम्युनिस्ट युवक संघ को चाहिए कि हर काम में सहायता देते हुए, पहलक़दमी और उपक्रम का परिचय देते हुए वह तूफ़ानी दल की तरह काम करे। [...]

"अतः कम्युनिस्ट युवक संघ को अपनी शिक्षा, अपनी पढ़ाई और अपनी तरबियत को मज़दूरों और किसानों के परिश्रम के साथ जोड़ देना चाहिए, ताकि उसके सदस्य अपने को स्कूलों और केवल कम्युनिस्ट

पुस्तक-पुस्तिकाओं को पढ़ने तक ही सीमित न रखें। मज़दूरों और किसानों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करने पर ही वे असली कम्युनिस्ट बन सकते हैं। लोगों को यह दिखा देना चाहिए कि जो लोग युवक संघ से संबंधित हैं, वे साक्षर होने के साथ-साथ मेहनत भी कर सकते हैं। [...]

"हमें सारे श्रम को, चाहे वह कितना गंदा और कष्टसाध्य क्यों न हो, इस प्रकार संगठित करना चाहिए कि हर मज़दूर और किसान कहे: मैं स्वाधीन श्रम की महान सेना का एक अंश हूं और ज़मींदारों और पूंजीपतियों के बग़ैर मैं अपने जीवन का निर्माण कर सकता हूं, मैं कम्युनिस्ट व्यवस्था क़ायम कर सकता हूं। कम्युनिस्ट युवक संघ को चाहिए कि वह हर आदमी को बचपन से ही सचेत तथा अनुशासित श्रम की तरबियत दे। तभी हमें विश्वास होगा कि हमारे सामने जो समस्याएं हैं, वे हल हो जायेंगी।"[7]

युवाजन को: "शिक्षा संबंधी अपने तमाम कार्यों के प्रति यह रवैया अपनाना चाहिए कि प्रति दिन हर गांव में तथा हर शहर में नौजवान लोग सामूहिक श्रम की किसी एक समस्या को व्यावहारिक रूप से हल करने के लिए काम करें, चाहे वह कितनी ही छोटी, कितनी ही सीधी-सादी समस्या क्यों न हो। जिस हद तक यह काम हर गांव में किया जायेगा, जिस हद तक कम्युनिस्ट प्रतियोगिता का विकास होगा, जिस हद तक नवयुवक अपने श्रम को संगठित करने की क्षमता का परिचय देंगे, उसी हद तक कम्युनिस्ट निर्माण की सफलता सुनिश्चित होती जायेगी।"[8]

दिसंबर १९२० में सोवियतों की आठवीं कांग्रेस हुई थी, जिसमें विद्युतीकरण की योजना प्रस्तुत की गयी। साथी क्रजीजानोव्स्की[9] ने इस योजना के बारे में रिपोर्ट पेश की। सुविदित है कि लेनिन ने इस अवसर पर कैसा ओजमय भाषण दिया था। उन्होंने कहा था कि विद्युतीकरण की **राजकीय** योजना हमारा दूसरा पार्टी कार्यक्रम है। हमारा राजनीतिक कार्यक्रम हमारे ध्येय-लक्ष्य गिनाता है, वर्गों और जनसमूह के बीच संबंधों की व्याख्या करता है। इसकी पूर्ति आर्थिक निर्माण के कार्यक्रम से की जानी चाहिए। "विद्युतीकरण की योजना के बिना हम वास्तविक निर्माण-कार्य का बीड़ा नहीं उठा सकते। जब हम कृषि, उद्योग और

परिवहन के पुनरुत्थान की, उनके सामंजस्यपूर्ण समन्वय की बात करते हैं, तो हम व्यापक आर्थिक योजना की चर्चा किये बिना नहीं रह सकते। यह देखना होगा कि हम एक निश्चित योजना स्वीकार करें; बेशक यह पहले क़दम के रूप में स्वीकृत योजना ही होगी। पार्टी का यह कार्यक्रम इतना अपरिवर्तनीय नहीं होगा, जितना कि हमारा वर्तमान कार्यक्रम है, जिसमें कोई परिवर्तन केवल पार्टी कांग्रेसों में ही किया जा सकता है। नहीं, इस कार्यक्रम को तो हर दिन, हर वर्कशाप में, हर तहसील में सुधारा जायेगा, इसे ठोस, ब्योरेवार रूप दिया जायेगा, इसे परिष्कृत किया जायेगा और इसका रूप बदला जायेगा। यह हमें पहले ख़ाके के तौर पर चाहिए, जो सारे रूस के सामने पेश होगा, एक महान आर्थिक योजना के तौर पर चाहिए, जो कम से कम दस साल के लिए हो और यह दिखाती हो कि किस तरह रूस को कम्युनिज़्म के लिए आवश्यक सच्चे आधार पर लाया जाये।"[10]

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस में कहे गये लेनिन के ये शब्द तो हर कोई जानता है कि "**कम्युनिज़्म का अर्थ है सोवियत सत्ता जमा सारे देश का विद्युतीकरण**",[11] लेकिन बहुत कम लोग यह जानते हैं कि उन्होंने यह भी कहा था कि जनसमूह के बिना विद्युतीकरण की योजना पर अमल नहीं किया जा सकता, कि केवल मज़दूरों को ही नहीं, अधिसंख्य किसानों को भी देश के सम्मुख प्रस्तुत कार्यभारों की समझ होनी चाहिए। लेनिन ने कहा था कि जनसाधारण का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा उठाया जाना चाहिए, ताकि हर नया बना बिजली-घर "जनता को विद्युत ज्ञान" दे। विद्युतीकरण की योजना ख़ास पाठ्यपुस्तक में समझाई जानी चाहिए और सभी स्कूलों में पढ़ाई जानी चाहिए।

विद्युतीकरण संबंधी रिपोर्ट पर सोवियतों की आठवीं कांग्रेस के निर्णय के मसविदे में, जो लेनिन ने लिखा था, कहा गया है:

"कांग्रेस आगे सरकार को यह काम सौंपती है और ट्रेड-यूनियनों के अखिल रूसी केंद्रीय संघ व अखिल रूसी ट्रेड-यूनियन कांग्रेस से अनुरोध करती है कि वे इस योजना के व्यापकतम प्रचार के लिए और नगर व देहात के व्यापकतम जनसमूह को इससे परिचित कराने के लिए सभी आवश्यक क़दम उठायें। इस योजना का अध्ययन बिना किसी

अपवाद के जनतंत्र के सभी शिक्षा-संस्थानों में किया जाना चाहिए। हर बिजलीघर और कमोबेश ढंग से काम कर रहा हर कारखाना और राजकीय फ़ार्म विद्युत से, आधुनिक उद्योग से परिचय का केंद्र और विद्युतीकरण योजना के प्रचार तथा उसके नियमित शिक्षण का केंद्र बन जाना चाहिए। सभी लोगों को, जिन्हें पर्याप्त वैज्ञानिक या व्यावहारिक अनुभव प्राप्त हो, उन्हें विद्युतीकरण योजना के प्रचार के काम में तथा इस योजना को समझने के लिए आवश्यक ज्ञान लोगों को प्रदान करने के काम में लगाया जाना चाहिए।"[12]

इस कांग्रेस के एक साल बाद 'रूस का विद्युतीकरण' नामक पुस्तक स्कूलों के लिए लिखी गई। लेनिन इस पुस्तक से बहुत संतुष्ट थे। वह चाहते थे कि हर ज़िला पुस्तकालय में इस पुस्तक की कुछ प्रतियां हों, कि हर बिजलीघर में यह पुस्तक हो, कि हर जनशिक्षक इस पुस्तक को पढ़े और हृदयंगम करे और केवल पढ़े ही नहीं, न केवल स्वयं समझे और आत्मसात करे, बल्कि अपने छात्रों को भी उसे सरल और सुबोध ढंग से समझा सके।

साल भर बाद, २८ दिसंबर १९२१ को सोवियतों की अखिल रूसी नौवीं कांग्रेस में स्वीकृत 'आर्थिक कार्य के प्रश्नों पर अनुदेशों' में लेनिन ने लिखा :

"नौवीं कांग्रेस यह मानती है कि नये काल में शिक्षा जन-कमिसारियत का कार्यभार यह है कि वह कम से कम समय में किसानों और मज़दूरों के बीच से सभी क्षेत्रों के विशेषज्ञ तैयार करे, और यह प्रस्ताव रखती है कि स्कूल में तथा स्कूल के बाहर शिक्षा-कार्य का सारे जनतंत्र के भी और अपने-अपने प्रदेश व अपने-अपने इलाक़े के भी तात्कालिक आर्थिक कार्यभारों के साथ संबंध को और भी अधिक मज़बूत बनाया जाये।"[13]

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस के साथ-साथ जनशिक्षा के प्रश्नों पर पार्टी सम्मेलन हुआ। सारे काम को नये ढंग से संगठित किया जाना था, देश के सम्मुख प्रस्तुत कार्यभारों को ध्यान में रखा जाना था। स्कूली शिक्षा-पद्धति को सच्चे अर्थों में पोलीटेक्निकल बनाना था, उत्पादन के साथ उसका घनिष्ठ संबंध जोड़ना था। पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए उदीयमान पीढ़ी

को बौद्धिक व शारीरिक श्रम के लिए समान रूप से तैयार करने के लिए बच्चों व किशोरों के श्रम को संगठित करने का काम शुरू करना था। नये पाठ्यक्रम तैयार करने थे। लेनिन इस सम्मेलन के काम से बहुत असंतुष्ट थे। वह इस बात पर असंतुष्ट थे कि पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रश्न बड़े अमूर्त ढंग से रखे गये, कि पोलीटेक्निकल शिक्षा की आवश्यकता है या नहीं, इस बात को लेकर बहसें हुईं, जबकि पार्टी इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दे चुकी है।

पोलीटेक्निकल शिक्षा एक नया काम है। "सारा काम 'व्यावहारिक अनुभव का हिसाब रखने और उसे परखने' पर, 'इस अनुभव के निर्देशों के नियमित उपयोग' पर केंद्रित होना चाहिए," 'शिक्षा जन-कमिसारियत के काम के बारे में' लेख में लेनिन ने कहा है। "पार्टी कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन में ऐसे विशेषज्ञों, शिक्षकों को सुना जाना चाहिए था, जो दसेक साल व्यावहारिक काम कर चुके हों और हम सब को यह बता सकते हों कि अमुक क्षेत्र में, उदाहरण के लिए व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में क्या किया जा चुका है और क्या किया जा रहा है और किस तरह सोवियत निकाय इस कार्यभार से निबटते हैं, कौन-कौन-सी सुंदर उपलब्धियां हैं और इनके क्या नमूने हैं (भले ही बहुत थोड़ी संख्या में, मगर ये नमूने शायद हैं ही), प्रमुख कमियों और इन्हें दूर करने की क्या ठोस हिदायतें हैं।"[14]

व्यापक सामान्य और पोलीटेक्निकल शिक्षा को युवाजन को समाजवाद के हेतु संघर्ष के लिए लैस करना चाहिए। लेनिन कभी भी समाजवाद की कल्पना ऐसी किसी चीज़ के रूप में नहीं करते थे, जिसे ऊपर से थोपा जा सकता है, बिना किसी संघर्ष के बनाया जा सकता है। उनका कहना था: "समाजवाद जीवनमय है, यह जनसमूह का सृजन-कार्य है",[15] "समाजवाद के निर्माण का मूल है संगठन"। समाजवाद एक बिल्कुल नई पद्धति है, जिसका निर्माण लंबे संघर्ष के दौरान होता है। उसका निर्माण करने के लिए बहुत ज्ञान चाहिए।

"युवाजन के प्रशिक्षण और शिक्षा को कामकाजी ढंग से आगे बढ़ाना"[16] आवश्यक है।

यह युवा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को लेनिन का वसीयतनामा है। यह बात ४ दिसंबर १९२२ को लिखी गई।

प्रशिक्षण को आगे बढ़ाना है, मगर किस ध्येय की ओर? इसका उत्तर हम रूसी युवा कम्युनिस्ट संघ की पांचवीं कांग्रेस के नाम लेनिन के अभिवादन संदेश में पायेंगे। यह कांग्रेस युवा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कांग्रेस से दो महीने पहले हुई थी। लेनिन ने लिखा था: "मुझे विश्वास है कि युवाजन अपना विकास इतनी सफलतापूर्वक कर पायेंगे कि विश्व क्रांति का अगला क्षण परिपक्व होने के समय तक अपने कार्यभार की पूर्ति के लिए पूरी तरह तैयार सिद्ध हों।"[17]

१६३२

परिच्छेद २

पोलीटेक्निकल शिक्षा

समाजवादी स्कूल के प्रश्न पर कुछ विचार

बुर्जुआ राज्य में – चाहे वह राजतंत्र हो या गणतंत्र – स्कूल जन-साधारण की आत्मिक दासता का साधन होता है।

ऐसे राज्य में स्कूल का उद्देश्य छात्रों के हितों द्वारा नहीं बल्कि प्रभुत्वशाली वर्ग यानी बुर्जुआ वर्ग के हितों द्वारा निर्धारित होता है, क्योंकि इन दोनों के हितों में प्रायः बहुत अंतर होता है।

स्कूल का उद्देश्य ही सारी स्कूली शिक्षा-पद्धति का गठन, स्कूली जीवन की सारी व्यवस्था, स्कूली शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण कार्य का सारा अंतर्य निर्धारित करता है।

यदि हम बुर्जुआ वर्ग के हितों को मानकर चलें, तो स्कूल का उद्देश्य इस बात के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा कि वह आबादी के किस स्तर के लिए है।

यदि स्कूल प्रभुत्वशाली वर्ग के बच्चों के लिए है, तो उसका उद्देश्य उन्हें ऐसा व्यक्ति बनाना होता है, जिसे जीवन का आनंद लूटना और हुक्म चलाना, संचालन करना आता हो। ऐसे स्कूलों का आदर्शक नमूना है तथाकथित "ग्राम जिम्नेज़ियम" या "नूतन विद्यालय"*, जो आजकल यूरोप के प्रायः सभी देशों में खुल गये हैं। ऐसे स्कूल प्रायः किसी संपन्न जागीर में खोले जाते हैं, इनकी साज-

* आजकल के "पब्लिक स्कूलों" के समनुरूप। – (**अनु०**)

सज्जा अत्यंत आरामदेह और विज्ञान की नवीनतम अपेक्षाओं के अनुरूप होती है। धनवान और ऊंचे ओहदोंवाले लोग यहां अपनी संतानों को शिक्षित करते हैं। इन जिम्नेज़ियमों की फ़ीस बहुत अधिक होती है। यहां बच्चों को लाड़-प्यार मिलता है – उनका बहुत ध्यान रखा जाता है। उन्हें बहुत-से मामलों में आज़ादी मिली होती है, बहुत-सा प्रबंध कार्य वे स्वयं करते हैं, अध्यापक उन पर भरोसा करते हैं। श्रेष्ठतम अध्यापक उन्हें प्रकृति का, कला का सौंदर्य देखना सिखाते हैं, उन्हें विज्ञान के मर्म में पैठना सिखाते हैं। उन्हें स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और स्फूर्तिमान बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। साथ ही बच्चों में इच्छा-बल, निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में अध्यवसाय, कर्मठता, अपना और दूसरों का संचालन करने की योग्यता, आदि गुण विकसित करने की चेष्टा की जाती है। दूसरी ओर, अध्यापक बच्चों के मस्तिष्क में बुर्जुआ विश्वदृष्टिकोण की सुदृढ़ जड़ें जमाने, इस दृष्टिकोण को इतिहास, नैतिकता और दर्शन के लिहाज़ से उचित ठहराने का भी प्रयत्न करते हैं। ऐसा करना इसलिए और भी अधिक आसान होता है कि "ग्राम जिम्नेज़ियमों" में बच्चे जीवन से, उसके दुखों-कठिनाइयों और संघर्ष से कटे होते हैं। ऐसे स्कूल में शिक्षा पा रहे बालक का साथी कोई मज़दूर का बेटा कभी नहीं हो सकता, जिसका परिवार बेरोज़गारी के कारण भूखों मर रहा हो। उसके मन में स्वामित्व के प्रति जो दृष्टिकोण बिठाया जाता है, वह उसकी उस प्यारी धाय की कहानियों से नहीं बदल सकता, जो उसकी हर इच्छा को पहचानती थी और ऐसी-ऐसी मज़ेदार कहानियां सुनाती थी कि जब गांव से थोड़ी दूर चाय से भरा वैगन पटरी से उतर गया, तो गांववाले कितने ख़ुश हुए थे, जो जितनी उठा सकता था, उठा लाया। ऐसे बालक की बचपन की छापें उसे लोगों का दुख दूर करने, कठिन क्षण में उनकी मदद करने की प्रेरणा नहीं देतीं।

यदि स्कूल टुटपुंजिया वर्ग के बच्चों के लिए होता है, तो उसका ध्येय नौकरशाही के कर्मचारी, ऐसे "बौद्धिक" कर्मचारी तैयार करना होता है, जो समाज के फल का निश्चित अंश पाने के अधिकार के बदले जनता पर शासन करने में प्रभुत्वशाली वर्ग की सहायता करेंगे। यही अधिसंख्य माध्यमिक और उच्च विद्यालयों का ध्येय है, जो हर

कोटि के और हर क़िस्म के क्लर्क, बुर्जुआ वर्ग के ये प्रशिक्षित चाकर तैयार करते हैं। इस तरह के स्कूलों में छात्रों में जतन से, क़रीने से, टिककर काम करने के गुण विकसित करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। लेकिन सोचने-विचारने, प्रेक्षण करने और निष्कर्ष निकालने की क्षमता हर तरह से दबाई जाती है। छात्रों को दी जानेवाली अधिकांश जानकारी अमूर्त और किताबी होती है। ऐसा स्कूल शारीरिक श्रम करने की आदत छुड़ाता है, आदमी को नौकरी करने के अलावा और किसी काम के लायक नहीं बनाता। ऐसा व्यक्ति नौकरियां बांटनेवाले शासक वर्ग पर पूरी तरह निर्भर होता है, उसका नमक खाता है और उसी की बात मानता है। किताबी ज्ञान जीवन से छात्रों का संपर्क तोड़ता है, माध्यमिक और उच्च विद्यालयों के छात्रों को मेहनतकशों के व्यापक संस्तरों से दूर करता है, उनमें जनसाधारण से अलगाव पैदा करता है। इन स्कूलों के छात्रों में बुर्जुआ राज्य के प्रति निष्ठा बड़े जतन से विकसित की जाती है।

जहां तक जन-विद्यालयों (जनसाधारण के लिए स्कूलों) का सवाल है, बुर्जुआ वर्ग सर्वहाराओं के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पूरी तरह अपने नियंत्रण में रखने, उदीयमान पीढ़ी पर अपना अनन्य प्रभाव बनाये रखने की कोशिश करता है। वह स्कूली शिक्षा को अनिवार्य बनाता है।

अभी हाल ही तक जन-स्कूलों में छात्रों को कुछ बुनियादी जनकारी मात्र दी जाती थी, महज़ पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था। आखिर साक्षर जनसाधारण पर शासन चलाना उन लोगों पर शासन चलाने से आसान है, जो अपने कार्य-स्थल के अनुशासन नियम या सरकारी आदेश नहीं पढ़ सकते, अपने हस्ताक्षर नहीं कर सकते, मामूली हिसाब नहीं कर सकते। कोई देश औद्योगिक दृष्टि से जितना अधिक विकसित होता है, मज़दूर और किसान के लिए ज्ञान का परिमाण भी उतना ही अधिक होता है। स्कूल यह ज्ञान देता है, लेकिन यह ट्राय के घोड़े जैसी भेंट है, यह ज्ञान इस शर्त पर दिया जाता है कि छात्र बुर्जुआ विचारधारा को आत्मसात कर लें। छात्रों के मन में यह बात बिठाई जाती है कि बुर्जुआ व्यवस्था स्वयं ईश्वर द्वारा स्थापित है, वह सर्वाधिक विवेकसंगत है, सर्वश्रेष्ठ है, सर्वाधिक न्यायपूर्ण है। शासक, अधिकारी

श्रेष्ठ व्यक्ति हैं, उनके आदेशों का पालन करना चाहिए। स्कूल में छात्र हर दिन, हर घंटे, हर पल आदेश-पालन की, बड़ों के प्रति आदर की मश्क करता है। छोटी उम्र से ही छात्रों में शक्ति, संपन्नता, बुर्जुआ शिक्षा के प्रति श्रद्धामिश्रित भय की भावना विकसित की जाती है। मातृभाषा, भूगोल, इतिहास के पाठ बच्चों में बिल्कुल बेलगाम अंधराष्ट्रवादी भावना विकसित करने का साधन होते हैं। स्कूल छात्रों में साथियों के भाईचारे की भावना का हनन करने का प्रयत्न करता है। प्रोत्साहनों, पुरस्कारों, सज़ाओं और अंकों की सारी व्यवस्था का ध्येय ही यह होता है कि छात्रों के बीच मुक़ाबला हो, स्पर्द्धा हो। संक्षेप में जनसाधारण के लिए बुर्जुआ स्कूलों का कार्यभार है छात्रों को बुर्जुआ नैतिकता में पगाना, उनमें वर्गपरक आत्मचेतना कुंठित करना, उन्हें ऐसा रेवड़ बनाना, जिस पर हुक्म चलाना आसान हो।

कहना न होगा कि देश के औद्योगिक और ऐतिहासिक विकास के स्तर के अनुसार वर्गपरक स्कूल के रूप भी बदलते हैं। अग्रणी देशों में स्कूल अधिक परिष्कृत, उनकी विधियां अधिक सूक्ष्म, पाठ्यक्रम अधिक व्यापक तथा स्कूली शिक्षा के ध्येय अधिक प्रच्छन्न होते हैं – किंतु सार वही रहता है। उदाहरण के लिए मजदूरों के बच्चों के लिए माध्यमिक शिक्षा के प्रश्न को लें। हमारे यहां, रूस में अभी कुछ साल पहले तक "बावर्चिनों की औलादों" को माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश ही नहीं मिलता था। जर्मनी में माध्यमिक विद्यालय का मार्ग सीधे-सीधे नहीं – प्रच्छन्न रूप से कठिन बनाया गया है: प्राइमरी और मिडल स्कूलों के पाठ्यक्रम इस तरह बनाये गये हैं कि प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई पूरी कर चुका छात्र कुछ विषयों के लिहाज़ से तो जिम्नेज़ियम की चौथी कक्षा में प्रवेश पा सकता है और कुछ विषयों के लिहाज़ से जिम्नेज़ियम की "तैयारी" कक्षा में ही। सो प्राइमरी स्कूल के छात्र को जिम्नेज़ियम में दाखिला पाने में २-३ साल फालतू लगाने होते हैं। इंगलैंड में प्राथमिक विद्यालय से माध्यमिक विद्यालय में जाने में कोई कठिनाइ नहीं है। इसके विपरीत, इंगलैंड में बहुत-सी छात्र-वृत्तियां दी जाती हैं, जिनसे प्राथमिक विद्यालय के आज्ञाकारी और प्रतिभाशाली छात्र माध्यमिक और उच्च विद्यालय में शिक्षा जारी रख सकते हैं। इंगलैंड का बुर्जुआ वर्ग कुछ इस तरह सोचता है: माध्यमिक

शिक्षा का ध्येय बुर्जुआ राज्य के बुद्धिमान सेवक तैयार करना है, मज़दूर वर्ग शारीरिक श्रम करनेवाले लोगों से ही बना होता है, वह अपने बच्चों को बड़ी संख्या में ऐसे स्कूलों में नहीं पढ़ा-लिखा सकता, जो शारीरिक श्रम की आदत छुड़ाते हैं; कुछेक गिने-चुने छात्र ही माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश पा सकते हैं और इस तरह वे अपने वर्ग से निकलकर सरकारी कर्मचारियों के अधिकारसंपन्न वर्ग में स्थान पाते हैं। यदि सर्वाधिक होनहार, प्रतिभासंपन्न लोग मज़दूर वर्ग से चले जाते हैं, तो यह बुर्जुआ राज्य के लिए ही अधिक लाभप्रद है, मज़दूर वर्ग अपने अगुआओं से वंचित होता है, निश्शक्त होता है, जबकि राज्य के सेवकों की कतारें बढ़ती हैं। इस तरह माध्यमिक शिक्षा तक पहुंच का सवाल हल किया जाता है। प्रश्न का समाधान अलग-अलग है, किंतु सार सर्वत्र एक ही है: माध्यमिक शिक्षा जनसाधारण की पहुंच के बाहर है और ज्ञान वर्गीय विशेषाधिकार ही बना हुआ है।

हमारे यहां रूस में बुर्जुआ वर्ग सार्विक शिक्षा की, स्कूली शिक्षा पद्धति में सुधार की बहुत बातें करता रहा है और ऐसे सुधार लाने के लिए इसने काम भी किया है।[1] उसने ऐसा इसलिए किया है, क्योंकि भली-भांति समझता है कि बुर्जुआ स्कूली शिक्षा जितनी अधिक परिष्कृत होगी, वह जनसाधारण को वशीभूत करने का उतना ही परिष्कृत साधन होगी। जब तक हम माध्यमिक और उच्च शिक्षा के ध्येय नहीं बदलते, इस शिक्षा का जीवन से पृथक, मात्र बौद्धिक स्वरूप ख़त्म नहीं करते, इस शिक्षा को उत्पादक श्रम से संलग्न नहीं करते, तब तक हम शिक्षा का वर्गीय स्वरूप भी नहीं बदल सकते।

जनसाधारण के हितों की रक्षा कर रहे मज़दूर-किसान राज्य को शिक्षा का वर्गीय स्वरूप ख़त्म करना चाहिए, शिक्षा के सभी चरणों को जनता के सभी संस्तरों की पहुंच में लाना चाहिए, और ऐसा केवल कथनी में नहीं, बल्कि करनी में होना चाहिए। जब तक स्कूल के ध्येय नहीं बदलते तब तक शिक्षा बुर्जुआ वर्ग का विशेषाधिकार रहेगी। आबादी की रुचि इस बात में है कि प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च विद्यालय का ध्येय एक ही हो: ऐसे चहुंमुखी विकसित लोग शिक्षित करना, जिनकी सामाजिक वृत्ति सचेतन और सुसंगठित हो, जिनका एक समग्र, सोचा-समझा विश्वदृष्टिकोण हो, जो अपने इर्द-

गिर्द प्रकृति और सामाजिक जीवन में होनेवाली घटनाओं को स्पष्टतः समझते हों, ऐसे लोग, जो हर तरह के, शारीरिक भी और मानसिक भी श्रम के लिए सिद्धांत और व्यवहार में तैयार हों, जिन्हें विवेकसंगत, सारगर्भित, सुंदर और हर्षमय सामाजिक जीवन का निर्माण करना आता हो। समाजवादी समाज को ऐसे लोगों की आवश्यकता है, उनके बिना समाजवाद की पूर्ण सिद्धि नहीं हो सकती।

ऐसे लोगों को विकसित कर पाने में सक्षम होने के लिए स्कूल कैसा होना चाहिए?

सर्वप्रथम, स्कूल को इस बात का भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि उदीयमान पीढ़ी का स्वास्थ्य सुदृढ़ हो, वह बलशाली बने: उसे बच्चों को पौष्टिक आहार, आरामदेह और गरम वस्त्र दिलाने चाहिए, इस बात की चिंता करनी चाहिए कि बच्चे अच्छी नींद सोयें, उन्हें अपने शरीर की देख-रेख करने की आदत पड़े, वे ताज़ी, साफ़ हवा में काफ़ी समय रहें, पर्याप्त गतिशील हों। प्रभुत्वशाली वर्ग अपने बच्चों को यह सब प्रदान करते हैं, लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि यह सब सभी बच्चों को उनके माता-पिता की आर्थिक स्थिति कैसी भी क्यों न हो, उपलब्ध हो। गर्मियों में स्कूलों को देहात में स्थानांतरित करना चाहिए। स्कूल में बिल्कुल छोटी उम्र से ही बच्चों की बाह्य इंद्रियां – दृष्टि, श्रवण और स्पर्श शक्ति, आदि – विकसित करनी चाहिए, क्योंकि इन इंद्रियों की मदद से ही मनुष्य बाह्य जगत का ज्ञान पाता है। इन इंद्रियों की संवेदनशीलता और विकास पर ही बोध की शक्ति और विविधता निर्भर होती है। शिक्षाशास्त्री, विशेषतः फ़्रेबेल,[2] बहुत पहले से यह इंगित करते आये हैं कि छोटी उम्र से ही बच्चों को श्रव्य, दृश्य, स्पर्शगत, आदि छापें पाने का, उन्हें सुव्यवस्थित करने का अवसर देना चाहिए, बच्चे को अपनी बाह्य इंद्रियों से काम लेना सिखाना चाहिए। बच्चा बिल्कुल छोटी उम्र में ही प्रेक्षण करने की चेष्टा करता है। उसे ऐसा करना सिखाना चाहिए। मांटसरी[3] के खिलौनों की पद्धति इसी बात की ओर लक्षित है कि शब्दों में नहीं, खिलौनों से नन्हे-मुन्ने बच्चों को प्रेक्षण करना और अपनी बाह्य इंद्रियों से काम लेना सिखाया जाये। बहुत छोटी उम्र में ही बच्चा प्राप्त छापों को भांति-भांति से – अपनी गतियों, शब्दों और भाव-भंगिमा

से – व्यक्त करने की भी कोशिश करने लगता है। बच्चे को उसके मस्तिष्क में बननेवाले बिंबों की अभिव्यक्ति का क्षेत्र व्यापक बनाने के भी अवसर प्रदान करने चाहिए। उसे भांति-भांति की सामग्री देनी चाहिए : चिकनी मिट्टी, काग़ज़-पेंसिल, निर्माण की सामग्री, आदि, इस सामग्री से काम लेना उसे सिखाना चाहिए। मस्तिष्क में बने बिंबों की भौतिक अभिव्यक्ति उन्हें परखने और समृद्ध करने का अनुपम साधन है। बाल-सृजन, चाहे वह किसी भी रूप में व्यक्त हो, हर तरह से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कला और भाषा लोगों के एक दूसरे के निकट आने, स्वयं अपने को और दूसरों को भी समझने का सशक्त साधन है।

हमारी आबादी के बड़े भाग का घरेलू वातावरण ऐसा नहीं है कि वह बच्चों की बाह्य इंद्रियों और बाल-सृजन के विकास में सहायक हो सके। इसलिए इतनी बड़ी संख्या में शिशु विहार (किंडरगार्टन) खोलने की आवश्यकता है कि उनमें सभी बच्चे स्थान पा सकें। ये शिशु विहार इस तरह बने होने चाहिए कि हर बच्चे का व्यक्तित्व पनपे, इन्हें नन्हे-मुन्नों की "फ़ौजी बैरक" नहीं होना चाहिए, जहां बच्चों को घंटी के साथ कवायद करनी पड़े, अध्यापिका के आदेशों पर हाथ-पांव चलाने पड़ें। बुर्जुआ समाज में मज़दूरों के बच्चों के लिए शिशु विहार प्रायः ऐसी "फ़ौजी बैरकें" बनकर रह जाते हैं, लेकिन समाजवादी व्यवस्था में इनके लिए कोई स्थान नहीं है।

जब बच्चा अपने विचार और भावनाएं व्यक्त करना सीख लेता है, तो वह दूसरों के विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति में रुचि लेने लगता है। विकास के इस काल में (प्रायः ७ से १२ वर्ष तक की आयु, हालांकि कुछ मामलों में यह अवधि कम या अधिक हो सकती है) बच्चे के लिए अध्ययन की सबसे रोचक वस्तु दूसरा व्यक्ति होता है। विकास के इस काल में बच्चे दूसरों की नकल, दूसरों का अनुकरण बहुत अधिक करते हैं – जो कि सृजन का ही एक विशिष्ट रूप है – दूसरों के विचारों और भावनाओं का जामा पहनना। यह वह काल है, जब बच्चे में सामाजिक सहजवृत्तियां बड़ी तेज़ी से विकसित होने लगती हैं और मानव जीवन व मानव संबंध उसके ध्यान का केंद्र बिंदु बन जाते हैं। स्कूल को चाहिए कि वह बच्चे की जाग उठी सामाजिक

वृत्तियों को सुदृढ़ और गहन करे, उसे यह दिखाये कि मानव समाज का आधार श्रम है, उसे सृजनशील उत्पादक श्रम मे खुशी पाना सिखाये, उसे यह अनुभव कराये कि वह भी इस समाज का अंश है, उसका उपयोगी सदस्य है। अनुकरण की प्रबल प्रवृत्ति के फलस्वरूप श्रम संबंधी विभिन्न दक्षताएं पाना आसान होता है, बच्चे को ये दक्षताएं देनी चाहिए, उसे काम करना सिखाना चाहिए। यह बात नितांत महत्वपूर्ण है कि काम का स्वरूप सामूहिक हो, क्योंकि इस तरह बच्चे मिल-जुलकर काम करना और जीना सीखते हैं। काम मे ही अपनी शक्ति, अपनी क्षमता का सही मूल्यांकन करना आता है, आदमी उसे न बढ़ा-चढ़ाकर और न ही घटाकर देखना सीखता है। हमउम्रों के साथ संयुक्त कार्य और संयुक्त खेलों से, बड़ों के श्रम एवं जीवन में विभिन्न रूपों में भाग लेने से बच्चे को सामाजिक आचार-व्यवहार के नियम सिखाने के लिए प्रचुर सामग्री मिलती है।

बच्चे के विकास के इस काल में स्कूल को शिशु विहार का काम जारी रखते हुए बच्चे की सृजन-प्रेरणा को उत्पादक, दूसरों के लिए आवश्यक श्रम का रूप ग्रहण करने में मदद करनी चाहिए। स्कूल में बच्चों को श्रम संबंधी कुछ सामान्य आदतें सिखाई जानी चाहिए, उन्हें सामाजिक संबंधों का प्रेक्षण करने का अवसर देना चाहिए, एक दूसरे की मदद करते हुए और अनेक छापों की सह-अनुभूति पाते हुए दूसरों के साथ रहना सीखने का अवसर देना चाहिए। ७ से १२ वर्ष की आयु वह आयु है, जब बच्चे प्राथमिक विद्यालय में जाते हैं। प्राथमिक विद्यालय, निस्संदेह, सबके लिए एक-सा होना चाहिए। यह मुख्यतः व्यावहारिक होना चाहिए, इसमें श्रम-सिद्धांत का व्यापक उपयोग होना चाहिए और सामाजिक वृत्तियां सुदृढ़ की जानी चाहिए।

स्कूल का दूसरा चरण उस आयु से संबद्ध है, जिसमें आत्म-विश्लेषण, प्राप्त छापों का संसाधन और व्यवस्थापन होता है। यह अध्ययन का काल है, किशोर-किशोरियां स्वयं अपना, समाज का, ज्ञान-शाखाओं और विभिन्न कौशलों का अध्ययन करते हैं। यहां आलोचनात्मक चिंतन विशेषतः सक्रिय होता है। इस काल में व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि इस समय तक छात्र के पास मन पर पड़ी छापों और तथ्यों का काफ़ी बड़ा भंडार हो। इन तथ्यों

को वह निश्चित परिप्रेक्ष्य में व्यवस्थित करता है, उसे इन पर चारों ओर से प्रकाश डालने की आवश्यकता अनुभव होती है, यह विश्व-दृष्टिकोण के निरूपण का काल है। यह वह काल है, जिसमें छात्र को एक विधि, प्राप्त ज्ञान को व्यवस्थित करने का सूत्र दिया जाना विशेषत: महत्वपूर्ण है। ये वे वर्ष हैं, जब छात्रों का इच्छाबल कुछ हद तक क्षीण पड़ता है, निर्माणाधीन व्यक्तित्व अपने आप में सिमटता है, उसका बाह्य जीवन किसी निश्चित क्रमानुसार चलता है। यह बात नितांत महत्वपूर्ण है कि इस समय तक किशोर-किशोरियों को श्रम की और सामाजिक जीवन की पक्की आदत पड़ चुकी हो। इस काल में ही, जबकि अपने **अहं** की सृजनात्मक अभिव्यक्ति कुछ क्षीण पड़ती है, विभिन्न उत्पादन शाखाओं में कार्य-विधि सिखाई जानी चाहिए।

उच्च विद्यालय विशेषीकृत शिक्षा प्रदान करता है, अत: वह मारत: सभी के लिए नहीं हो सकता। हम यहां इसकी चर्चा नहीं करेंगे।

सो, शिशु विहार, प्राथमिक विद्यालय और माध्यमिक विद्यालय – ये सब सामान्य विकास की परस्पर संबद्ध कड़ियां हैं। समाजवादी शिक्षा-पद्धति अब तक की सारी शिक्षा पद्धति से मुख्यत: इस बात में भिन्न होनी चाहिए कि इसका एकमात्र ध्येय है छात्र का यथासंभव पूर्ण चहुंमुखी विकास, इस शिक्षा-पद्धति को छात्र के व्यक्तित्व को दबाना नहीं चाहिए, बल्कि उसके निरूपण में सहायता मात्र करनी चाहिए समाजवादी स्कूल स्वतंत्र स्कूल है, जिसमें कवायद, रट्टेबाज़ी का कोई स्थान नहीं है।

लेकिन व्यक्तित्व के निरूपण में सहायता प्रदान करते हुए स्कूल को छात्र को इस बात के लिए भी तैयार करना चाहिए कि वह अपना व्यक्तित्व समाजोपयोगी श्रम में प्रकट कर सके। अत: समाजवादी शिक्षा-पद्धति की दूसरी विशिष्टता यह होनी चाहिए कि यह बच्चों के उत्पादक श्रम का व्यापक विकास करे। आजकल श्रम-विधि[4] की बहुत चर्चा हो रही है, लेकिन समाजवादी स्कूल में केवल श्रम-विधि ही नहीं प्रयुक्त होनी चाहिए, बल्कि बच्चों द्वारा उत्पादक श्रम किये जाने का भी प्रबंध होना चाहिए। समाजवादी बाल-श्रम के शोषण का विरोध करते हैं, लेकिन वे बच्चों द्वारा यथाशक्ति चहुंमुखी, विकास-

कारी श्रम किये जाने के समर्थक हैं। उत्पादक श्रम बच्चों को न केवल भविष्य में समाज का उपयोगी सदस्य बनाता है, बल्कि वर्तमान में ही उन्हें ऐसा सदस्य बनाता है। इस बात की चेतना का बच्चों पर अपार शैक्षिक, चरित्र निर्माणकारी प्रभाव पड़ता है। बुर्जुआ स्कूल ने इस बात के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं कि बाल-श्रम को किस प्रकार संगठित किया जा सकता है। श्रम और बाग़बानी मंडलियां, सांख्यिकी के आंकड़े जमा करने में सहायता, पत्रों की छंटाई और वितरण में मदद, सैनिकों के लिए गरम कपड़े सीना और बुनना, अमरीकी स्कूल छात्रों द्वारा सड़कों की सफ़ाई, खाना बनाना, हिसाब रखना, खाद्य पदार्थों में मिलावट का पता लगाना, इश्तहार चिपकाना, अख़बार, पर्चे, किताबें बांटना, इत्यादि – उत्पादक श्रम के संगठन करने के इन सभी अनुभवों को एकत्रित, वर्गीकृत, अनुपूर्त और विकसित करना चाहिए, जहां तक हो सके इनका स्वरूप चहुंमुखी बनाया जाना चाहिए। इस काम में ट्रेडयूनियनों, सहकारी समितियों, किसानों के ग्रामीण संगठनों को शिक्षकों की मदद को आना चाहिए। यह काम महत्वपूर्ण है, इसे पूरा करना पूर्णतः सम्भव है और इसे तुरंत ही हाथ में लेना चाहिए। कहना न होगा कि वह स्कूल, जो बच्चों के उत्पादक श्रम का संगठन करेगा, वह ... जीवन के साथ, वास्तविकता के साथ हज़ारों-हज़ार सूत्रों से जुड़ा होगा। शिक्षा के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित उत्पादक श्रम स्कूल में स्थान पा लेगा, तो शिक्षा भी सौ गुनी अधिक गहन और जीवनमय हो जायेगी। और ऐसे स्कूल में जो लोग प्रशिक्षित होंगे, वे श्रम के लिए हर दृष्टि से तैयार होंगे, कोई भी काम हाथ में लेने की योग्यता उनमें होगी, किसी भी मशीन, उत्पादन की किन्हीं भी परिस्थितियों के अनुकूल वे अपने को बना सकेंगे। ये लोग वह मानसिक श्रम करने में भी सक्षम होंगे, जो अभी तक एक विशेषाधिकारसंपन्न संस्तर की पहुंच में था और जिसे करना सारी आबादी को आना चाहिए, ताकि वह नौकरशाही पर निर्भरता से छुटकारा पा सके और स्वयं अपने जीवन की कर्ता-धर्ता बन सके।

समाजवादी स्कूल की कल्पना केवल निश्चित सामाजिक परिस्थितियों में ही की जा सकती है, क्योंकि वह समाजवादी इसलिए नहीं होता कि उसका संचालन समाजवादियों के हाथ में होता है, बल्कि इसलिए

कि उसके उद्देश्य समाजवादी समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। पूंजीवादी समाज में भी कुछ मामलों में ऐसे स्कूल बन सकते थे, जिनका ध्येय चहुंमुखी विकसित लोगों, प्रखर विकसित व्यक्तित्व के, विकसित सामाजिक वृत्तिवाले लोगों को शिक्षित करना होता, जो शारीरिक और मानसिक दोनों तरह का श्रम करने में समान रूप से सक्षम होते। लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था में ऐसे स्कूल इक्के-दुक्के, अल्प जीवन-क्षमतावाले ही हो सकते थे। ऐसे स्कूल में शिक्षित तरुण स्कूल से निकलकर अपने को ऐसे वातावरण में पाता था, जो बड़ी जल्दी ही शिक्षा के सभी परिणामों को निष्फल कर देता था। लोगों के भद्र जन और निम्न जन में, "बौद्धिक" और शारीरिक श्रमवाले लोगों में विभाजन पर आधारित समाज में उसे किसी एक तरह का श्रम चुनना पड़ता था और उसकी "चहुंमुखी" श्रम की क्षमता निष्क्रिय पड़ती जाती थी। वह किस तरह का श्रम करेगा, इसका निर्णय उस पर नहीं, बल्कि उसके बटुए पर, समाज में उसके संबंधों पर निर्भर होता था। निर्धन व्यक्ति, जिसके केवल मज़दूरों के बीच ही "संबंध" होते थे, उसका जीवन चाहे जैसा रहा हो, वह शारीरिक श्रम करनेवालों की श्रेणी में ही शामिल होता था और एक बार इस श्रेणी में शामिल हो जाने पर उसे भी उन लोगों की तरह अपनी ज़िंदगी घसीटनी पड़ती थी, जो अपनी श्रम-शक्ति के क्रय से जीवन-निर्वाह करते हैं, और यहां उसका प्रखर व्यक्तित्व उसके लिए केवल बाधा ही होता था, उसके नीरस, विवशता से किये जाने वाले श्रम को और भी अधिक बोझिल, और भी अधिक असहनीय बनाता था। विकसित सामाजिक वृत्ति केवल तभी उपयोग्य होती थी, जबकि तरुण का चरित्र सेनानी का होता, अन्य सभी मामलों में वह उसके लिए यातनाओं का ही स्रोत होती थी। सेनानियों को तो पूंजीवादी समाज में समाजवादी स्कूल केवल असाधारण मामलों में ही शिक्षित कर सकता था, क्योंकि सेनानी को जीवन की कठोर शिक्षा पानी चाहिए, जबकि बुर्जुआ व्यवस्था में रोपा गया समाजवादी स्कूल एक "विचित्र पौधे", जीवन से कटी एक संस्था के अलावा और कुछ नहीं हो सकता था। और पूंजीवादी व्यवस्था में समाजवादी स्कूल एक जीवनक्षम संस्था नहीं हो सकता था, इसलिए अधिक से अधिक यह एक रोचक शैक्षिक प्रयोग हो सकता था। वह एक

निजी प्रयास हो सकता था, राजकीय नहीं, क्योंकि राजकीय स्कूल का स्वरूप तो शासक वर्ग, बुर्जुआ वर्ग ही निर्धारित करता था और वह जो ध्येय रखता था, वे पूर्णतः भिन्न थे। बुर्जुआ वर्ग स्कूली शिक्षा-पद्धति बनाते समय अपने हितों को, अपना वर्ग-प्रभुत्व बनाये रखने की आवश्यकता को ही ध्यान में रखता था, न कि व्यक्ति और समाज के हितों को।

केवल जन-सरकार ही स्कूली शिक्षा का प्रबंध करते हुए व्यक्ति और समाज के हितों को प्रस्थान बिंदु मान सकती है। लेकिन जन-सरकार किस क्षण सत्ता में आती है, इसके अनुसार व्यक्ति के हितों और समाज के हितों की समझ भिन्न-भिन्न होगी। यदि वह पूंजीवादी संबंधों के प्रभुत्व के काल में सत्ता ग्रहण करती है, तो जन-सरकार की रुचि केवल इस बात में होती है कि स्कूली शिक्षा को यथासंभव अधिक जनवादी बनाया जाये। स्कूल के जनवादीकरण से ज्ञान का जनवादीकरण होता है और वह केवल प्रभुत्वशाली वर्ग की थाती नहीं बन पाता है।

लेकिन जब जन-सरकार बढ़ती सामाजिक क्रांति के क्षण में सत्ता पाती है, तो उसे व्यक्ति और समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए पुराने वर्गाधारित स्कूल को, जो घोर अन्याय बन गया होता है, नष्ट करना चाहिए और ऐसी स्कूली पद्धति का निर्माण करना चाहिए, जो दत्त क्षण की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। उदीयमान समाजवादी व्यवस्था की आवश्यकता यह होती है कि इस व्यवस्था के काबिल लोग शिक्षित किये जायें। जहां पूंजीवादी व्यवस्था का लक्षण श्रम-शक्ति की फ़िज़ूलखर्ची, कुछ लोगों द्वारा अत्यधिक श्रम और कुछ द्वारा मजबूरन निठल्लापन था, वहीं समाजवादी व्यवस्था का विशिष्ट लक्षण सभी लोगों के बीच श्रम का विवेकसंगत, योजनाबद्ध, समुचित विभाजन होना चाहिए, इसमें श्रम विवश होकर नहीं, स्वेच्छा से किया जानेवाला हो जाना चाहिए। इसके लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो मानसिक और शारीरिक दोनों तरह का श्रम समान रूप से कर सकते हों, जो उत्पादन की निरंतर परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल सकते हों, अपने काम पर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ सकते हों। उत्पादन का स्वरूप स्वयं ही लोगों को इस भावना में शिक्षित करेगा, उन्हें इस दिशा में ढालेगा, लेकिन मजबूरन श्रम से स्वैच्छिक

श्रम की ओर, संकीर्णविशेषज्ञतावाले नीरस श्रम से चहुंमुखी श्रम की ओर संक्रमण एक लंबी प्रक्रिया है, जो आरंभ में बहुत कठिन होती है और बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों में विकसित नई पीढ़ी के होने पर ही सारे समाज का पुनर्गठन कर सकती है। इस भावी पीढ़ी को शिक्षित करना ही समाजवादी स्कूल का कार्यभार है।

१९१८

व्यावसायिक शिक्षा के कार्यभार

क्रांति ने समाज को नींव तक झकझोर डाला है, निम्नतम स्तरों को उद्वेलित किया है और साथ ही उन्हें यह दिखा दिया है कि निरंकुश ज़ारशाही ने उन्हें कैसे अथाह अंधकार में डुबोया हुआ था। जनसाधारण की स्वतोस्फूर्त, अदम्य ज्ञान-पिपासा रूसी क्रांति की सहगामिनी है। जाग उठे मज़दूरों, जाग उठे किसानों ने यह देखा है कि ज्ञान कैसी शक्ति है और वे इस शक्ति से सुसज्जित होना चाहते हैं। वे यह समझना चाहते हैं कि चारों ओर संसार में क्या हो रहा है, वे चाहते हैं कि उन सभी जटिल तथ्यों पर प्रकाश पड़े, जिन्होंने उनके सारे अस्तित्व को पलटकर रख दिया है, लेकिन साथ ही वे यह भी जानना चाहते हैं कि नये ढंग से जीवन का निर्माण कैसे करें ; वे वह ज्ञान और कौशल पाना चाहते हैं, जिनसे वे जीवन के स्वामी बन पायें। सामान्य शिक्षा की चाह के साथ-साथ आप्रयुक्त ज्ञान की, व्यावसायिक ज्ञान की भी अपार मांग है। और जनसाधारण को वह विशेष ज्ञान न देना, जिसकी उसे आवश्यकता है, वैसा ही अपराध होगा, जैसा कि उन्हें कोई भी ज्ञान न देना था।

किस तरह व्यावसायिक शिक्षा का ऐसा प्रबंध किया जाये कि उससे मज़दूरों और किसानों को वही ज्ञान मिले, जिसकी उन्हें आवश्यकता है ? यहां दो सवाल हैं : उस वयस्क आबादी को व्यावसायिक शिक्षा कैसे दी जाये, जो इसे यथाशीघ्र पाने को उत्सुक है, और स्कूल में उदीयमान

पीढ़ी को यह शिक्षा कैसे दी जाये?

आज स्कूलेतर शिक्षा का प्रश्न सबसे अधिक उग्र, सर्वाधिक तात्कालिक है, क्योंकि जनता को अभी, इसी क्षण जीवन को सुचारू ढंग से चलाने के लिए वह व्यावसायिक ज्ञान चाहिए, जो उसके पास पर्याप्त नहीं है।

व्यावसायिक ज्ञान का प्रश्न किस प्रकार उठाया जाना चाहिए?

अभी तक कारखानेदार और मिल मालिक ही व्यावसायिक शिक्षा में रुचि रखते थे। विभिन्न औद्योगिक देशों के बीच प्रतिद्वंद्विता को देखते हुए प्रत्येक देश के पूंजीपतियों को इस बात की चिंता करनी पड़ती थी कि उनके देश का उद्योग विकास के उच्चतर चरण पर हो, उच्च कोटि का माल उत्पादित करे। उधर नवीनतम मशीनों के लिए बड़ी संख्या में सुप्रशिक्षित मज़दूरों की, विशेषज्ञ मज़दूरों की ज़रूरत है। सो कारखानेदार यह कोशिश करते हैं कि ऐसे मज़दूर काफ़ी अधिक संख्या में हों, अन्यथा वे उनपर बहुत अधिक निर्भर हो जायेंगे। इंगलैंड में सुप्रशिक्षित मज़दूरों की संख्या काफ़ी कम थी और वहां वे ट्रेड-यूनियनों में संगठित हो गये – इस अनुभव से यह पता चलता है कि मिल मालिकों को जब काफ़ी बड़ी संख्या में सुप्रशिक्षित मज़दूरों की सेवाएं उपलब्ध नहीं थीं, तो उन्हें इन मज़दूरों को कैसी रियायतें देनी पड़ीं। उन सभी देशों की सरकारें, जहां शासन की बागडोर बुर्जुआ वर्ग के हाथों में है, बड़े जतन से अपने देश में व्यावसायिक शिक्षा का सही प्रबंध करने में लगी रही हैं। पिछली सदी के अंत से, जब अग्रणी औद्योगिक देशों में उद्योग का विकास तूफ़ानी गति से होने लगा, इसकी ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। सन् १६०० से जर्मनी में कारखानों में काम करनेवाले सभी किशोरों और युवकों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि वे विशेष स्कूलों में जायें, जो बहुत शीघ्र ही व्यावसायिक स्कूल बन गये। लेकिन केवल राज्य ही नहीं, स्वयं कारख़ानेदार भी अपने कारखानों के अंतर्गत व्यावसायिक स्कूलों के लिए सहर्ष धन देते थे। यहां तक कि हमारे यहां रूस में भी, जो औद्योगिक दृष्टि से एक सबसे पिछड़ा हुआ देश है, उद्योग की प्रमुख शाखाओं में (मुख्यत: धातु कारखानों में) कारखानेदार प्राय: व्यावसायिक शिक्षा के लिए धन देते थे।

लेकिन बुर्जुआ वर्ग द्वारा मज़दूरों को दी जानेवाली व्यावसायिक शिक्षा पर विशिष्ट छाप थी। कारखानेदार के लिए मज़दूर, भले ही वह सुप्रशिक्षित मज़दूर होता, "काम करनेवाले हाथ" ही बना रहता था। उद्योगपति को दक्ष हाथ चाहिए थे, लेकिन केवल "हाथ" ही। वह इन "हाथों" को प्रशिक्षित करने की चिंता करता था, क्योंकि यह उद्योग के विकास की मांग थी, लेकिन वह इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं करता था कि मज़दूर उद्योग की अपनी शाखा की आवश्यकताएं समझे, कि वह अपने उद्योग का संचालन करना सीख पाये – उत्पादन के संचालन की चिंता उद्योगपति महोदय करते थे, मज़दूरों का कर्तव्य बस इस बात का ध्यान रखना था कि वे कारखाने के लिए जो काम करते हैं – वह अच्छी तरह से किया जाये।

अब व्यावसायिक शिक्षा का स्वरूप भिन्न होना चाहिए। बदल गई परिस्थितियों ने मज़दूरों को एक साथ ही बड़े उत्पादन का स्वामी भी और कर्मी भी बना दिया है। इसलिए व्यावसायिक शिक्षा का ध्येय मज़दूर को यह सिखाना भी होना चाहिए कि वह कैसे काम करे और यह भी कि वह उत्पादन का प्रबंध कैसे करे, उस पर नियंत्रण कैसे रखे, कैसे हिसाब-किताब रखे। अब मज़दूर को संकीर्ण व्यावसायिक शिक्षा नहीं, बल्कि व्यापकतम व्यावसायिक शिक्षा चाहिए। मज़दूर को ख़राद पर काम करना ही नहीं आना चाहिए, बल्कि यह भी पता होना चाहिए कि यह ख़राद कैसे बनी हुई है, कि और कैसी-कैसी ख़रादें हैं, किस काम के लिए कौन-सी ख़राद चाहिए, कि अच्छी से अच्छी ख़रादें कहां, किस क़ीमत पर ख़रीदी जा सकती हैं, कि उनका आयात करने की ज़रूरत है या नहीं, ऐसा करना लाभदायक होगा या नहीं ... उसे सारा हिसाब लगाना, हर बात का ध्यान रखना आना चाहिए। इसके लिए उसे यांत्रिक ड्राइंग आनी चाहिए, तरह-तरह की गणनाएं करनी आनी चाहिए, यांत्रिकी और उसके इतिहास का ज्ञान होना चाहिए, वाणिज्यिक भूगोल का ज्ञान होना चाहिए। उसे संसाधित किये जानेवाले लोहे के गुणों का भी ज्ञान होना चाहिए, यह पता होना चाहिए कि यह लोहा कहां और कैसे पाया जाता है, इत्यादि। उसे यह पता होना चाहिए कि उसके अपने और दूसरे देशों में लोहे की कितनी आवश्यकता है, किस चीज़ की अधिक मांग है, उत्पादित माल कहां और कैसे बेचा

जा सकता है, उसका मूल्य कैसे निर्धारित किया जाये, इत्यादि-इत्यादि। और इस सबके साथ उन परिस्थितियों की समझ भी घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है, जिनमें मज़दूर एक साथ ही स्वामी भी हो सकता है, उसे पूंजीवादी व्यवस्था और समाजवादी व्यवस्था के सार को समझना चाहिए। यदि मज़दूर उत्पादन का स्वामी बनना चाहता है, तो उसे और भी बहुत कुछ जानना चाहिए।

हमारे यहां ऐसे मज़दूर विश्वविद्यालय[1] बन गये हैं, जहां संकीर्ण व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ मज़दूरों को वह व्यापक ज्ञान भी दिया जाता है, जो उन्हें उत्पादन का स्वामी बनाता है; यह अंतोक्त नवजीवन के निर्माण के वर्तमान चरण में विशेषतः महत्वपूर्ण है। स्कूलेतर व्यावसायिक शिक्षा ऐसी ही होनी जाहिए।

जहां तक स्कूल आयु में व्यावसायिक शिक्षा का सवाल है वह बहुत छोटी उम्र में नहीं शुरू होनी चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि बहुत अच्छे सामान्य शिक्षा विद्यालय सर्वत्र खोले जायें, लेकिन वैसे नहीं जैसे अब हैं। ऐसे विद्यालयों में बच्चों को केवल किताबी ज्ञान नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि यह भी सिखाया जाना चाहिए कि कोई भी काम कैसे सबसे अच्छी तरह शुरू किया जा सकता है, कैसे तरह-तरह के औज़ारों से काम लेना चाहिए; भांति-भांति के श्रम की सामान्य शिक्षा दी और बच्चों की दृष्टि व हाथों की गतियां विकसित की जानी चाहिए। ऐसे स्कूल में बच्चे के रुझान और क्षमताएं उभरेंगे और वह स्कूल की शिक्षा पूरी करके उस श्रम में प्रवृत्त हो सकेगा, जो उसे सबसे अधिक पसंद है, जो उसकी शक्ति और योग्यता के अनुरूप है। तब वह अपना व्यवसाय आसानी से और जल्दी ही सीख जायेगा। औद्योगिक दृष्टि से सबसे अधिक विकसित देशों – जर्मनी और अमरीका – में यह बात भली-भांति समझी जाती है और इसलिए वहां सामान्य प्रशिक्षण देनेवाले श्रम-विद्यालय के सही संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। बच्चे को आठ-नौ साल तक सामान्य शिक्षा विद्यालय में पढ़ना चाहिए ... और इसके बाद ही कोई विशेषज्ञता पानी, कोई व्यवसाय-विशेष सीखना चाहिए। दूसरे शब्दों में, व्यावसायिक विद्यालय छोटी उम्र के लिए नहीं होना चाहिए और १५-१६ वर्ष की आयु से पहले वहां बच्चों को लेना विवेकसंगत नहीं है। व्यावसायिक स्कूल

में केवल व्यावहारिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि व्यापकतम रूप से व्यवसाय से परिचित भी कराया जाना चाहिए। ऐसा करना भी छोटी उम्र में असंभव है। छोटी उम्र से ही बच्चे को किसी एक व्यवसाय की शिक्षा देने का अर्थ है उसकी सृजन श्रमता के विकसित और मुखरित होने में बाधा डालना, उसमें निहित आत्मिक क्षमताओं को रौंदना। स्वतोस्पष्ट है कि नई क़िस्म का व्यावसायिक विद्यालय जीवन से घनिष्ठतः जुड़ा होना चाहिए और आंशिक रूप से शिक्षा मिल या कारखाने में, उस वातावरण में दी जानी चाहिए, जिसमें छात्र को कुशल मज़दूर के नाते काम करना होगा। जर्मनी, इंगलैंड और अमरीका के श्रेष्ठ व्यावसायिक स्कूलों में ऐसा ही किया जाता है। हर तरह का स्कूल जीवन से संबद्ध होना चाहिए, व्यावसायिक स्कूल तो औरों से भी अधिक संबद्ध होना चाहिए।

मिलों-कारखानों के मज़दूरों को प्रशिक्षित करने हेतु तकनीकी शिक्षा के साथ-साथ शिल्प-शिक्षा का भी प्रबंध करना चाहिए। आजकल शिल्प किसी उस्ताद से सीखा जाता है, लेकिन ऐसे मामलों में तीन चौथाई शिक्षा शागिर्द को "छोकरे" की तरह इस्तेमाल करने में ही निहित होती है। विशेष व्यावसायिक शिल्प विद्यालयों में शिल्पों की शिक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह दी जा सकती है। लेकिन ऐसे विद्यालय केवल उन शाखाओं के लिए खोले जायें, जिन्हें विलुप्त होना नहीं बदा है। केवल उन्हीं शिल्पों के बने रहने की संभावना है, जिनमें किसी कला का चरित्र है, जिनमें शिल्पी के लिए अपनी सृजन-क्षमता प्रकट करना आवश्यक है। औद्योगिक-कलात्मक विद्यालयों की भी उतनी ही सख़्त ज़रूरत है, जितनी कि तकनीकी विद्यालयों की। दोनों की ही मज़दूरों को बेहद ज़रूरत है और इसी क्षण ज़रूरत है। चूंकि व्यावसायिक शिक्षा मज़दूरों का जीवंत ध्येय है, इसलिए इसका प्रबंध इस तरह होना चाहिए कि मज़दूरों का मत इसमें निर्णायक हो।

१९१८

पोलीटेक्निकल शिक्षा संबंधी प्रस्थापनाएं

१. आगामी दशक सारे उद्योग और सारी कृषि के पुनर्गठन के वर्ष होंगे, सारे उत्पादन के यौक्तिकीकरण, उसके मशीनीकरण के और विज्ञान की खोजों के ज़ोरों से उत्पादन में लागू किये जाने के वर्ष होंगे।

२. सारे उत्पादन के क्रांतिकारी पुनर्गठन के आगामी काल में बड़ी संख्या में चहुंमुखी प्रशिक्षित कर्मियों की ज़रूरत होगी, जो बदलती परिस्थितियों के अनुकूल बनने, उन्हें तेज़ी से समझने के योग्य होंगे, जिन्हें नई-नई मशीनों से काम लेना आता होगा, इत्यादि।

३. उपरोक्त बातों को देखते हुए हमारे यहां रूस में वर्तमान समय में पोलीटेक्निकल शिक्षा के विकास का असाधारण महत्व है।

४. १३-१७ वर्ष की आयु में पोलीटेक्निकल शिक्षा इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि वह किशोरों में बुनियादी रचनात्मक क्षमताएं विकसित करती है, जिनसे किसी भी विशेषज्ञता का अध्ययन सरल होता है। यह एक पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा किशोरों की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को सबसे अच्छी तरह उभारती है और इसकी बदौलत वे १६-१७ वर्ष की आयु में सचेतन रूप से अपनी विशेषज्ञता चुन पाते हैं।

५. पोलीटेक्निकल शिक्षा दूसरे चरण से संबद्ध होनी चाहिए, लेकिन यह दूसरा चरण एक ओर शिक्षा के पहले चरण से तथा, दूसरी

ओर, व्यावसायिक शिक्षा से अभिन्न रूप से जुड़ा होना चाहिए।

६. पहले चरण (७ से १२ वर्ष तक की आयु) में बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है, गणित का सामान्य ज्ञान दिया जाता है, उन्हें पुस्तक, गणित, रेखाचित्र से काम लेना, यानी इन्हें श्रम का औज़ार बनाना सिखाया जाता है; उन्हें प्रेक्षण करना, प्रेक्षणों से सामान्य निष्कर्ष निकालना और व्यवहार से उन्हें परखना सिखाया जाता है, उन्हें आत्मशिक्षा की बुनियादी विधियां सिखाई जाती हैं, विश्व (प्रकृति और समाज) का बुनियादी ज्ञान दिया जाता है। पहले चरण में ज्ञान श्रम-विधि द्वारा प्रदान किया जाता है; पहले चरण में श्रम अपनी आवश्यकताएं स्वय पूरी करने तक कतई सीमित नहीं होता; पहले चरण में श्रम सामाजिक श्रम के बुनियादी रूप में मिल-जुलकर भाग लेने के रूप में होना चाहिए और इससे बच्चों को श्रम संबंधी बुनियादी दक्षताएं पानी चाहिए।

७. पहले चरण में वह नींव बनती है, जिस पर दूसरे चरण की इमारत बन सकती है।

८. दूसरे चरण (१३ से १७ वर्ष तक की आयु) में उत्पादन का समग्र रूप से अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन सैद्धांतिक भी और व्यवहारिक भी होता है। उत्पादन की प्रमुख शाखाओं का अध्ययन किया जाता है और व्यावहारिक कार्यकलाप पर सैद्धांतिक प्रकाश डालने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके समांतर श्रम के इतिहास और उसके प्रसंग में वर्ग संघर्ष के इतिहास का तथा फिर राजनीतिक इतिहास, धर्मों के इतिहास, क्रांतियों के इतिहास, १९१७ की क्रांति, आदि का अध्ययन किया जाता है।

९. जाड़ों में व्यावहारिक कार्य औद्योगिक होना चाहिए, यह बड़ी मिलों, कारखानों, बिजलीघरों, आदि मे काम से घनिष्ठतः संबद्ध होना चाहिए, गर्मियों में राजकीय फ़ार्मों में होना चाहिए।

१०. पोलीटेक्निकल स्कूल आर्थिक जन-कमिसारियतों तथा निकायों के कार्य के साथ घनिष्ठ संपर्क में, ट्रेड-यूनियनों और कृषि व तकनीकी विद्यालयों के सहयोग से ही चल सकते हैं।

व्यावहारिक क़दम

११. तुरंत ही पहले चरण के स्कूलों और दूसरे चरण के स्कूलों के भी पाठ्यक्रम तैयार करने चाहिए। इन पाठ्यक्रमों पर एक विशेष सम्मेलन में कृषि और प्रविधि विशेषज्ञों के साथ, ट्रेड-यूनियनों के साथ विचार-विमर्श करना चाहिए, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पाठ्यक्रमों के रूपांतर भी तैयार करने चाहिए।

१२. कृषि जन-कमिसारियत के राजकीय फ़ार्म विभाग के साथ और प्रायोगिक कृषि केंद्रों के प्रधानों के साथ परामर्श करना चाहिए, ताकि यह पता लगाया जा सके कि किन फ़ार्मों में किस तरह किशोरों के श्रम का प्रबंध किया जा सकता है, कहां कितने लोगों की आवश्यकता है। इस कार्य के प्रबंध के लिए विशेष व्यक्ति भेजे जायें।

१३. कृषि विद्यालय ही प्रमुख आधार होने चाहिए। इनके छात्र दूसरे चरण के स्कूलों के छात्रों के प्रशिक्षक हो सकते हैं। इस सबके सिलसिले में कृषि विद्यालयों से सलाह-मशविरा करना चाहिए।

१४. किशोरों का कार्य आदर्श अग्रणी प्रतिष्ठानों में केंद्रित होना चाहिए; इन प्रतिष्ठानों की ट्रेड-यूनियन समिति और विशेषज्ञों के साथ मिलकर यह तय करना चाहिए कि किशोर कौन-कौन-से कार्य कर सकते हैं। ट्रेड-यूनियनों को किशोरों को निर्देश देने के लिए ख़ास लोग नियत करने चाहिए।

१५. ट्रेड-यूनियनों में पोलीटेक्निकल स्कूलों का प्रचार करना चाहिए। उदीयमान पीढ़ी के लिए पोलीटेक्निकल स्कूल संगठित करने में उनकी शिरकत विशेषतः मूल्यवान है।

१६. पोलीटेक्निकल शिक्षा का काम शिक्षकों के कंधों पर नहीं डाला जा सकता। इस काम में सभी तरह के विशेषज्ञों को लगाना चाहिए।

१७. पोलीटेक्निकल स्कूलों के ज़रिए ही मेहनतकश जनता के साथ कामकाजी आधार पर वह संबंध स्थापित होगा, जो युवा पीढ़ी का भी चरित्र निर्माण करेगा और स्वयं छात्र-प्रशिक्षकों का भी नवनिर्माण करेगा।

१९२०

उदीयमान पीढ़ी की सार्विक शिक्षा और पोलीटेक्निकल श्रम के बारे में लेनिन के विचार

('युवाजन के बारे में लेनिन के विचार' लेख से उद्धृत)

किशोरों और युवाजन के श्रम के प्रश्न को व्लादीमिर इल्यीच उनकी शिक्षा और श्रम को नये ढंग से संगठित करने के प्रश्न के साथ जोड़ते थे। १८९७ में ही 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल' नामक लेख में उन्होंने लिखा था : "... युवा पीढ़ी के शिक्षण को उत्पादक श्रम से संलग्न किये बिना भावी समाज के आदर्श की कल्पना नहीं की जा सकती : न तो उत्पादक श्रम के बिना शिक्षण और शिक्षा को, न ही समांतर शिक्षण और शिक्षा के बिना उत्पादक श्रम को उस उच्च स्तर पर पहुंचाया जा सकता है, जो प्रविधि के आधुनिक स्तर तथा वैज्ञानिक ज्ञान की आधुनिक स्थिति के लिए अपेक्षित है।" आगे इसी रचना में उन्होंने लिखा : "सार्विक उत्पादक श्रम को सार्विक शिक्षा के साथ संलग्न करने के लिए प्रत्यक्षतः सबका यह दायित्व बनाना होगा कि वे उत्पादक श्रम में भाग लें।"[1]

सो, शिक्षा पाना, स्कूल जाना भी सभी के लिए अनिवार्य होना चाहिए और सामाजिक उत्पादक श्रम भी सभी के लिए अनिवार्य होना चाहिए। पार्टी की दूसरी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम में, एक ओर, १६ वर्ष की आयु तक सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा की तथा, दूसरी ओर, १६ वर्ष तक किशोरों के श्रम की मनाही तथा १६ से १८ वर्ष तक के युवाजन के श्रम को छह घंटों तक सीमित करने की बात कही गई थी। १९१७ में जब पुराने कार्यक्रम के स्थान पर नया कार्यक्रम स्वीकृत करने की आवश्यकता का प्रश्न उठा, तो इल्यीच ने

इस प्रश्न पर आगे काम किया था।

'पार्टी कार्यक्रम पर पुनर्विचार की सामग्री' में, जो उन्होंने लिखी थी, तत्संबंधी मुद्दे इस प्रकार निरूपित किये गये: '**उद्योगपतियों पर स्कूल आयु में (१६ वर्ष तक) बच्चों के श्रम का उपयोग करने का प्रतिबंध, युवाजन (१६ से २० वर्ष) के श्रम-दिवस की अवधि चार घंटे तक सीमित करना और उन्हें रात को काम करने, स्वास्थ्य के लिए हानिकर प्रतिष्ठानों और खानों में काम की मनाही**"। "**१६ वर्ष की आयु तक सभी लड़के-लड़कियों के लिए निश्शुल्क और अनिवार्य सामान्य एवं पोलीटेक्निकल (सिद्धांत और व्यवहार में उत्पादन की सभी प्रमुख शाखाओं से परिचित कराने वाली) शिक्षा; शिक्षा का बच्चों के सामाजिक-उत्पादक श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध**"।[2] (शब्दों पर ज़ोर **लेखक** द्वारा)।

यहां अंतिम वाक्यांश पर ख़ास तौर से ध्यान देना चाहिए। इसका मर्म यह है कि स्कूल को न केवल पोलीटेक्निकल ज्ञान और कौशल प्रदान करना चाहिए, बल्कि इस ज्ञान और कौशल का किशोरों के सामाजिक उत्पादक श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध होना चाहिए, यह श्रम मशक्कत नहीं किया जायेगा, उलटे सबके लिए अनिवार्य होगा, हां, उसका संगठन नये ढंग से होगा, इस तरह कि यह श्रम-शिक्षा के साथ, विज्ञान और प्रविधि के चहुंमुखी अध्ययन के साथ घनिष्ठ रूप से संलग्न हो।

मज़दूरों को उत्पादन का संचालन करना सीखना चाहिए – यह कार्यभार १९२० में विशेषत: स्पष्ट रूप से हमारे सामने आया, जब गृहयुद्ध पृष्ठभूमि में जा रहा था और आर्थिक कार्यभार अग्रभूमि में आ रहे थे। मार्च १९२० में जल-परिवहन के कर्मियों की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में लेनिन ने कहा था: "लेकिन वह व्यक्ति जो व्यावहारिक जीवन पर नज़र रखता है और जिसे जीवन का अनुभव है, वह जानता है कि संचालन करने के लिए इसके योग्य होना चाहिए, उत्पादन की सभी परिस्थितियां पूरी तरह से और बारीकी में मालूम होनी चाहिए, इस उत्पादन-कार्य की तकनीक का उसके आधुनिक स्तर पर ज्ञान होना चाहिए, निश्चित वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए।"[3]

श्रम के प्रश्न अग्रभूमि में आ गये। अप्रैल १९२० में लेनिन ने

मज़दूर वर्ग सत्ता अपने हाथों में ले लेगा।

"फ़ैक्टरी-क़ानून के रूप में पूंजी से जो पहली और बहुत तुच्छ रियायत छीनी गई है, उसमें फ़ैक्टरी के काम के साथ-साथ केवल प्राथमिक शिक्षा देने की ही बात है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि जब मज़दूर-वर्ग सत्ता पर अधिकार कर लेगा, जो कि अनिवार्य है, तब सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ढंग की प्राविधिक शिक्षा मज़दूरों के स्कूलों में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगी।"[4]

प्रौद्योगिकी पोलिटेक्निकल शिक्षा का आधार है।

"आधुनिक उद्योग ने हर क्रिया को उसकी संघटक गतियों में बांट देने के सिद्धांत का अनुसरण किया और ऐसा करते हुए इस बात का कोई ख़याल नहीं किया कि मनुष्य का हाथ इन गतियों को कैसे सम्पन्न कर पायेगा। इस सिद्धांत ने प्रौद्योगिकी के नये आधुनिक विज्ञान को जन्म दिया। औद्योगिक प्रक्रियाओं के नाना प्रकार के प्रकटतः असंबद्ध प्रतीत होनेवाले और पथराये हुए रूप निश्चित ढंग के उपयोगी प्रभाव पैदा करने के लिए प्राकृतिक विज्ञान को सचेतन और सुनियोजित ढंग से प्रयोग करने के तरीक़ों में परिणत हो गये। प्रौद्योगिकी ने गति के उन थोड़े से मौलिक रूपों का भी पता लगाया, जिनमें से किसी रूप में ही मानव-शरीर की प्रत्येक उत्पादन कार्रवाई व्यक्त होती है, हालांकि मानव-शरीर नाना प्रकार के औज़ारों को इस्तेमाल करता है। यह इसी तरह की बात है, जैसे यांत्रिकी का विज्ञान अधिक से अधिक संश्लिष्ट मशीनों में भी सरल यांत्रिक शक्तियों की निरंतर पुनरावृत्ति के सिवा और कुछ नहीं देखता।"[5]

लेनिन बच्चों के लिए भी और वयस्कों के लिए भी पोलीटेक्निकल शिक्षा के उत्साही समर्थक थे। उत्पादन संबंधी प्रचार कार्य के बारे में अपनी प्रस्थापनाओं में उन्होंने इस बात की चर्चा की है कि किस प्रकार जनसाधारण में पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रचार किया जाये। वयस्क मज़दूरों और किसानों के बीच पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रसार को ही लेनिन उद्योग एवं कृषि के परिष्कार का, उनकी कारगरता बढ़ाने का आवश्यक पूर्वाधार मानते थे।

बड़े पैमाने पर श्रम शक्ति के प्रशिक्षण के प्रश्न पर विचार करते समय हमें यह एकदम स्पष्ट कर लेना चाहिए कि क्या हम पुराने श्रम

विभाजन का ही अनुकरण करना चाहते हैं – संकीर्ण विशेषज्ञता के, केवल अपना कार्य ही अच्छी तरह जाननेवाले, उसे करने का सुस्पष्ट अभ्यास और दक्षता रखनेवाले, लेकिन केवल उसे ही जाननेवाले और इसलिए सदा-सदा के वास्ते उसी से बंधे मज़दूर तैयार करना चाहते हैं; या कि हम मार्क्स और लेनिन की भावना में विशेषज्ञ प्रशिक्षित करना चाहते हैं। .

आज यह प्रश्न अपने पूर्ण विराट स्वरूप में उभरा है।

हमारे उद्योग में अभी भी शिल्प की, कारीगरी की भूमिका बहुत बड़ी है। लेकिन मज़दूरों को प्रशिक्षित करते समय उन्हें कारीगरी सिखाने, अपने काम का अभ्यास कराने के अलावा उनकी पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि भी विकसित करनी चाहिए, उन्हें टेक्नोलोजी, यांत्रिकी, रसायन-शास्त्र, आदि का ज्ञान देना चाहिए, जिसके बिना मज़दूर कभी भी औद्योगिक निर्माण में सचेतन भाग नहीं ले सकेगा।

आज अनेक नये कारखानों, मिलों के निर्माण के फलस्वरूप उन मज़दूरों की संख्या बहुत बढ़ गई है, जो मशीनों पर काम करते हैं, एक तरह से उनके सहायक अंग हैं। मशीनों से काम लेना उन्हें कुछ हफ़्तों या महीनों में ही सिखाया जा सकता है। लेकिन हमें इससे संतोष नहीं हो सकता। हमारे यहां मज़दूर महज़ कारकून नहीं है। आज वह कारकून है, कल अन्वेषक हो सकता है और परसों अपने उद्योग का प्रमुख संगठनकर्ता। हम क्षण भर के लिए भी यह नहीं भूल सकते कि हमारे यहां निर्माण समाजवाद के मार्ग पर होना चाहिए और व्यापक सामान्य शिक्षा, राजनीतिक व पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण प्राप्त मज़दूर के बिना ऐसा नहीं हो सकता।

१९२८

पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में

देश के औद्योगीकरण और कृषि के पुनर्गठन के प्रश्न के साथ श्रम शक्ति के प्रशिक्षण का और इसमें पोलीटेक्निकल शिक्षा की भूमिका का प्रश्न एक बार फिर पूरी उग्रता से उभरकर सामने आया है। ...

शिक्षाकर्मियों के बीच यह विवाद ठंडा पड़ता-पड़ता फिर से भड़क उठा है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा क्या है और यह कैसे दी जानी चाहिए।

हम भी इस प्रश्न पर गौर करें।

बेशक, पार्टी ने औद्योगीकरण का सवाल अकारण ही नहीं उठाया है। आबादी के अधिकाधिक व्यापक संस्तरों में यह चेतना फैलती जा रही है कि कृषि की और कृषि उत्पादों के संसाधन की पुरानी विधियों को अस्वीकार करना आवश्यक है। देश के औद्योगीकरण की आवश्यकता नितांत तात्कालिक हो गई है और हमारे द्वारा समझी जा रही मांग की ही अभिव्यक्ति है। २५ जनवरी १८९४ को ग० श्तार्कनबर्ग के नाम अपने पत्र में एंगेल्स ने लिखा था :

"यदि समाज में कोई तकनीकी आवश्यकता पैदा होती है, तो वह दसियों विश्वविद्यालयों की तुलना में विज्ञान को कहीं अधिक आगे बढ़ाती है। सारी जलस्थैतिकी (तोर्रीचेली, इत्यादि) १६वीं और १७वीं सदियों में इटली में पर्वतीय जलधाराओं को नियंत्रित करने की आवश्यकता के कारण ही प्रकट हुई थी। विद्युत ऊर्जा के बारे में हमने तभी कोई काम की बात सुनी, जब इसके तकनीकी उपयोग की संभावनाओं का पता चला है।"[1]

प्रविधि की आवश्यकता विज्ञान को आगे बढ़ाती है। प्रविधि की

आवश्यकता न केवल विज्ञान से संबंध रखनेवाले लोगों में, बल्कि जन-साधारण में भी **प्रविधि के प्रति रुचि** जगाती है। आज जनसाधारण में प्रविधि के प्रति रुचि अपार है। ज़रूरत बस इस बात की है कि इसे ठीक से घोषित किया जाये, आवश्यक दिशा प्रदान की जाये। बड़ों में प्रविधि के प्रति रुचि किशोरों और बच्चों में भी रुचि जगाती है।

अभी कुछ दिन पहले मैंने एक पांच साल के बच्चे को देखा। वह इंजीनियर का बेटा है। उसमें प्रविधि की ओर रुझान बिल्कुल स्पष्ट है। वह लकड़ी का बेलचा सीमेंट के फ़र्श पर मार रहा था। किसी ने कहा: "बेटा ऐसा नहीं करो! फ़र्श ख़राब हो जायेगा।" यह देखने लायक था कि कितनी हिकारत से उसने जवाब दिया: "हुं, बेलचा तो लकड़ी का है, इससे पक्के फ़र्श को क्या होगा?" मैंने यह भी देखा कि कैसे वह बिजली के पंखे के सामने भौचक्का खड़ा हो गया: "यह क्या है?" उसे समझाया गया। शाम को सोते-सोते अचानक उसने आंखें खोल लीं और पूछने लगा: "वो पंखा चलता कैसे हैं?"

प्रविधि में रुचि छोटी उम्र से ही जगानी चाहिए। यह रुचि तो स्वतः ही जागती है, लेकिन हम इसे हर तरह से दबाते हैं। स्कूल यदि पोलीटेक्निकल नहीं है तो वह परिवार से भी अधिक ऐसा करता है।

यदि हम पोलीटेक्निकल शिक्षा का गंभीरतापूर्वक प्रसार करना चाहते हैं, तो हमें मां-बाप – मज़दूरों और कामगारिनों के लिए एक पत्र प्रकाशित करना चाहिए कि वे बच्चों में प्रविधि में रुचि कैसे जगायें, हमें यह देखना चाहिए कि किंडरगार्टनों में बच्चों को क्या सिखाया जाता है और इस सिलसिले में प्रविधि में रुचि जगाने के लिए क्या किया जा सकता है, हमें चौथी और सातवीं कक्षाओं तक के स्कूलों के पाठ्यक्रमों को इस दृष्टिकोण से देखना चाहिए, हमें सारे स्कूलेतर कार्य का भी इस लिहाज़ से प्रबंध करना चाहिए।

हर तरह के श्रम की शिक्षा व्यावसायिक या पोलीटेक्निकल हो सकती है।

शिक्षा के एक ऐसे साधारण विषय को लें, जैसे कि सिलाई। सिलाई भांति-भांति से सिखाई जा सकती है। घंटों तक सही टांके बनाना और काज बनाना सिखाया जा सकता है। यह केवल दस्तकारी की शिक्षा होगी। लेकिन यही शिक्षा बिल्कुल दूसरे ढ़ंग की भी हो सकती है। इसका

संबंध सामग्री और औज़ार से जोड़ा जा सकता है, ताकि बच्चा यह समझ जाये कि किस प्रकार अलग-अलग तरह की सामग्री पर एक ही काम करने के लिए अलग-अलग औज़ार चाहिए: लट्ठा एक सुई से सीना चाहिए और मोटा ऊनी कपड़ा दूसरी सुई से, चमड़े को सीने के लिए सुतारी चाहिए, कागज़ सीना नहीं चिपकाना चाहिए, लकड़ी सीते नहीं, उसमें कीलें ठोंकते हैं, इत्यादि। यह सिलाई के अध्ययन का पोलीटेक्निकल रुख होगा। अकेले बच्चे को नहीं, बल्कि दो, तीन या अधिक बच्चों को मिलकर करने के लिए काम दिया जा सकता है – काम को लयबद्ध किया जा सकता है, लय धीमी या तेज़ कर सकते हैं, फिर कई दूसरी गतियां भी लयबद्ध ढंग से गीत गाते हुए की जा सकती हैं। मशीन पर कपड़े सीना भी अलग-अलग ढंग से सिखाया जा सकता है: केवल यह बता सकते हैं कि चक्का ऐसे चलाओ, फिरकी ऐसे बदलो, इत्यादि, या मशीन पर सिलाई सीखने का संबंध इस मशीन के और इसके जैसी दूसरी मशीनों के अध्ययन से जोड़ा जा सकता है। इस तरह सिलाई का काम एक शिल्प की तरह सिखाया जा सकता है या सिलाई सिखाने का संबंध सामग्री, औज़ार, मशीन, आदि के अध्ययन के साथ जोड़ा जा सकता है – यह पोलीटेक्निकल शिक्षा होगी।

स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रति रुख अध्यापक की पोलीटेक्निकल योग्यता पर, सरलतम श्रम क्रियाओं का अधिक जटिल क्रियाओं के साथ संबंध जोड़ने, श्रम प्रक्रियाओं के सभी तत्वों का विश्लेषण करने की उसकी योग्यता पर निर्भर करता है, न कि केवल साज़-सामान पर। जब केवल शिल्प थे, तब पोलीटेक्निकल शिक्षा नहीं हो सकती थी, क्योंकि शिल्पों के बीच दीवार थी, यह स्पष्ट नहीं था कि इन शिल्पों के बीच क्या समानता है, उनका विश्लेषण नहीं था। मशीन उत्पादन के विकास से ही शिल्पों की श्रम-प्रक्रियाओं को समझने, उनका विश्लेषण करने में मदद मिली, यह समझने में कि उनमें क्या समानता है। और प्रविधि का जितना आगे विकास हो रहा है, उतनी ही अधिक गहराई में हर श्रम-प्रक्रिया का सार देखा जा सकता है। लेकिन आधुनिक प्रविधि पर आधारित इस विश्लेषण का उपयोग करने के लिए यह कतई आवश्यक नहीं है कि हम नवीनतम कारखाने में जायें। बच्चों को अच्छे से अच्छा कारखाना दिखाने ले जाया जा सकता है, लेकिन यदि इससे पहले उनमें तकनीकी

रुचि जगाने का, प्रत्येक श्रम-प्रक्रिया को, प्रत्येक मशीन को सचेतन रूप से देखने-समझने का काम नहीं किया गया है, तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। दूसरी ओर, यदि छात्रों को पहले से तैयार किया गया है, तो अपेक्षाकृत पुरानी फ़ैक्टरी या कारखाने में उन्हें ले जाकर भी उनका पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण काफ़ी व्यापक किया जा सकता है। दत्त क्षण में हमारी प्रविधि की अवस्था से ही यह निर्धारित होता है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा कितनी गहरी होगी, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अधिक पिछड़े इलाक़ों में पोलीटेक्निकल शिक्षा दी ही नहीं जा सकती और हमें हाथ पर हाथ धरकर उस दिन का इन्तज़ार करना चाहिए जब देश का औद्योगीकरण हो जायेगा, और फिलहाल पोलीटेक्निकल शिक्षा कुछेक औद्योगिक नगरों में ही दी जानी चाहिए। जो लोग ऐसा सोचते हैं वे यह भूल जाते हैं कि पोलीटेक्निकल शिक्षा न केवल प्रगति का परिणाम है, बल्कि औद्योगीकरण का औज़ार भी है। पोलीटेक्निकल शिक्षा बड़े पैमाने पर, हर किसी को दी जानी चाहिए। जनसमूह की सहायता से, उनकी शिरकत से ही देश का औद्योगीकरण किया जा सकता है। लेनिन यही सोचते थे। देश के विद्युतीकरण की योजना के सिलसिले में साथी क्रजीजानोव्स्की के साथ उनके पत्र-व्यवहार में यह बात विशेषतः स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। लेनिन बारंबार कहते हैं, जनसमूह की रुचि जगानी चाहिए, उनकी सक्रियता प्रेरित करनी चाहिए।

जनवरी १९२० में लेनिन ने ग० म० क्रजीजानोव्स्की को लिखा: "...क्या तकनीकी नहीं (यह तो **बहुतों** का काम है और जल्दबाज़ी का नहीं), बल्कि राजनीतिक या राजकीय **योजना** नहीं जोड़ी जा सकती, यानी मेहनतकशों को काम नहीं सौंपा जा सकता?

"अनुमानतः १० (५) साल में २०-३० (३०-५०) बिजलीघर बनायेंगे, ताकि सारे देश में ऐसे केंद्रों का जाल बिछ जाये, प्रत्येक केंद्र ४०० (या २००, यदि इससे अधिक करने में सक्षम नहीं होंगे) वेर्स्ता के अर्धव्यासवाले दायरे का हो; दलदली कोयले, पानी, शेल, कोयले या तेल से चलनेवाले बिजलीघर होंगे (**प्रायः** सारे रूस को **मोटे तौर पर** देख लें)। आवश्यक मशीनों और मॉडलों के क्रय से शुरू करेंगे। १० (२०?) साल में सार रूस का विद्युतीकरण कर देंगे।

"मैं सोचता हूं कि ऐसी 'योजना'—एक बार फिर दोहराता हूं, तकनीकी नहीं, राजकीय योजना — योजना का मसौदा, आप दे सकते हैं।

"इसे अभी पेश करना चाहिए, यह दृष्टव्य हो, सुबोध हो, जनसमूह के लिए हो, सुस्पष्ट और ज्वलंत (अपने आधार में पूर्णत: **वैज्ञानिक**) प्ररिप्रेक्ष्य से उत्प्रेरित करे : काम में जुटें और १०-२० वर्ष में हम सारे रूस का, उद्योग का भी और कृषि का भी **विद्युतीकरण** कर लेंगे।...

"...मैं दोहराता हूं, हमें मज़दूर **जनसमूह** और सचेतन किसानों को १०-२० वर्ष के **महान** कार्यक्रम से उत्प्रेरित करना चाहिए।"[2]

लेनिन को यह विचार चैन नहीं लेने देता था कि जनसमूह को कैसे उत्प्रेरित किया जाये। और उन्होंने साथी क्रजीजानोव्स्की को लिखा :

"ग० म०! मुझे एक विचार सूझा है।

"बिजली का प्रचार करना चाहिए। कैसे? कथनी से ही नहीं करनी से भी।

"इसका अर्थ क्या है? सबसे महत्वपूर्ण है—इसे लोकप्रिय बनाना। इसके लिए अभी तुरंत ही रूस में **हर घर** में बिजली का प्रकाश लाने की योजना बनानी चाहिए।

"यह लंबी अवधि का काम है, क्योंकि न २,००,००,००० (—४,००,००,०००) बल्ब, न तार, इत्यादि हमारे पास लंबे समय तक नहीं होंगे।

"लेकिन योजना **तुरंत** चाहिए, कुछ साल के लिए ही सही।

"यह पहली बात है।

"दूसरी बात, **संक्षिप्त** योजना अविलंब तैयार करनी चाहिए और फिर, यह तीसरी बात है—और सबसे प्रमुख—लोगों को **प्रतियोगिता**, पहलकदमी और **सक्रियता** के लिए प्रेरित करनी चाहिए, ताकि वे **तुरंत** काम में जुट जायें।

"क्या इसके लिए ऐसी योजना नहीं बनाई जा सकती :

"१) सभी वोलोस्तों* (१०-१५ हज़ार) में **एक** साल के

---

* वोलोस्त—तहसील के समकक्ष प्रशासनिक इकाई।—सं०

अंदर बिजली पहुंचाई जायेगी ;

"२) सभी बस्तियों (५-१० लाख, शायद, साढ़े सात लाख से ज़्यादा नहीं) में **दो** साल में ;

"३) सर्वप्रथम – देहात के वाचनालय और ग्राम सोवियत में (२ बल्ब) ;

"४) खंभे **तुरंत** इस प्रकार बनाइये ;

"५) इंसुलेटर **तुरंत स्वयं** बनाइये (चीनी मिट्टी की फ़ैक्टरियां तो स्थानीय और छोटी हैं)। **इस तरह** बनाइये ;

"६) तारों के लिए **तांबा**? **स्वयं** ही अपने उयेज़्दों* और वोलोस्तों में **जमा कीजिये** (घंटों, आदि की ओर इशारा) ;

"७) बिजली के कामों की शिक्षा इस प्रकार दीजिये।

क्या **ऐसी** चीज़ सोच-समझकर तैयार करना और **आज्ञप्ति जारी करना** संभव नहीं है?"[3]

यह सब लेनिन ने १९२० में लिखा था।

मैंने यहां यह लंबा उद्धरण इसलिए दिया है, क्योंकि यह जनसमूह के प्रति लेनिन का रुख बहुत अच्छी तरह दर्शाता है; दूसरे, इससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि लेनिन पोलीटेक्निकल शिक्षा पर इतना ज़ोर क्यों देते थे। १९२० में अंत में लिखी उनकी 'नदेज्दा कोन्स्तान्तीनोव्ना की प्रस्थापनाओं पर टिप्पणियां' भी पोलीटेक्निकल शिक्षा को समर्पित हैं। उन्होंने लिखा:

"पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में **ऐसे** नहीं लिखा जा सकता, यह अमूर्त बात बनती है – सुदूर भविष्य के लिए; तात्कालिक, वर्तमान, दुखद यथार्थ को **ध्यान में नहीं रखा जाता**...

"...साफ़-साफ़ कहना चाहिए कि किसी भी हालत में हम इस सिद्धांत से और तुरंत ही **यथासंभव हद तक** पोलीटेक्निकल शिक्षा ही लागू करने से इन्कार नहीं कर सकते।"[4] और आगे लिखा: "...**बिला शर्त** यह कार्यभार रखा जाये कि पोलीटेक्निकल शिक्षा की ओर **अविलंब** संक्रमण ही, या सही-सही कहा जाये तो, **पोलिटेक्निकल** शिक्षा की ओर तुरंत ही **जो कदम उठाये जा सकते हैं**, उन्हें उठाया जाये।..."[5]

---

* उयेज़्द – ज़िला के समकक्ष प्रशासनिक इकाई। – सं०

इसके आगे उन्होंने अपना यह मनपसंद विचार व्यक्त किया है कि हमारे पास थोड़ा-बहुत जो कुछ है, उसका उपयोग कैसे किया जाये। उल्लेखनीय है कि इसमें उन्होंने राजकीय फ़ार्म भी गिनाये हैं, क्योंकि लेनिन पोलीटेक्निकल शिक्षा में कृषि को भी शामिल करते थे।

मैं आगे उद्धरण नहीं दूंगी – अब हर कोई इच्छा होने पर लेनिन की यह टिप्पणियां पढ़ सकता है।

ये इस बात का ज्वलंत प्रमाण हैं कि लेनिन पोलीटेक्निकल शिक्षा को कैसे समझते थे।

उन्हें "श्रम शक्ति", "श्रमिक हाथ" तैयार करने की ही चिंता नहीं थी, बल्कि उस नये तकनीकी आधार के सचेतन निर्माता तैयार करने की, जो हमारे देश को अजेय, खुशहाल, शिक्षित बना देगा। लेनिन के लिए श्रम-शक्ति का प्रशिक्षण नये तकनीकी आधार के सचेतन निर्माताओं के प्रशिक्षण से अलग नहीं था।

यही पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में वाद-विवाद का मर्म है और इसीलिए इस विषय पर विवाद इतने उग्र हैं।

लेनिन पोलीटेक्निकल शिक्षा और चरित्र-निर्माण के प्रश्न को श्रम के प्रति, अनुशासन के प्रश्नों, आदि के प्रति नये रुख़ के साथ जोड़ते थे।

उसी वर्ष, १९२० में ही लेनिन ने सुब्बोत्निकों* के बारे में, नये, सचेतन अनुशासन के बारे में लिखा था।

'पुरानी समाज-व्यवस्था के विध्वंस से एक नई समाज-व्यवस्था के सृजन की ओर' शीर्षक लेख में लेनिन **समाजवादी** श्रम के बारे में कहते हैं: "एक नये श्रम-अनुशासन के निर्माण का, मनुष्यों के बीच सामाजिक संबंधों के नये रूपों की रचना का, लोगों को श्रम के क्षेत्र में खींचकर लाने के नये रूपों तथा तरीक़ों की रचना का काम निश्चय ही अनेक वर्षों तथा दशाब्दियों में पूरा होगा।

"यह अत्यन्त श्रेयस्कर तथा उदात्त कोटि का काम है।

"यह हमारा सौभाग्य है कि बुर्जुआ वर्ग को सत्ताच्युत करके

---

* सुब्बोत्निक (यानी शनिवारीय काम) उस काम को कहते हैं, जो शहर के मज़दूर अपने लिए निर्दिष्ट काम के अतिरिक्त घंटों में मुफ़्त करते हैं और जो किसी सार्वजनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए होता है। – स०

और उसका प्रतिरोध कुचलकर हम वह ज़मीन जीत पाये हैं, जिस पर ऐसा काम करना संभव है।"[6]

इसी लेख में लेनिन ने समाजवादी श्रम के उच्चतर चरण, **कम्युनिस्ट** श्रम के बारे में लिखा है:

"शब्द के अधिक संकीर्ण तथा सही अर्थ में कम्युनिस्ट श्रम वह श्रम होता है, जो समाज के हित के लिए बिना पारिश्रमिक लिये किया जाता है, वह ऐसा श्रम होता है, जो एक निश्चित कर्त्तव्य के रूप में नहीं, कुछ चीज़ें पाने का अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं, पहले से तय किये हुए तथा क़ानून द्वारा निर्धारित कोटे के अनुसार नहीं किया जाता, बल्कि कोटे की चिन्ता किये बिना ही स्वेच्छा-पूर्वक किया गया श्रम होता है, वह ऐसा श्रम होता है, जो पारिश्रमिक की आशा लगाये बिना, पारिश्रमिक की शर्त के बिना किया जाता है, जो सबके हित के लिए काम करने की आदत के वश और सबके हित के लिए काम करने की आवश्यकता की सचेत अनुभूति के वश (जो आदत बन जाती है) किया जाता है – वह श्रम एक स्वस्थ जीवी की आवश्यकता के समान होता है।"[7]

हमारे यहां श्रम-शिक्षा की एक ही पद्धति है। लेकिन यदि हम इसे वैसा बनाना चाहते हैं, जैसा लेनिन इसे देखना चाहते थे, तो हमें न केवल यह सोचना चाहिए कि हम कैसे बच्चों को श्रम संबंधी कुछ आदतें सिखा दें, निश्चित कार्य करने सिखा दें, बल्कि यह भी कि कैसे बच्चों को समाजवादी श्रम के, कम्युनिस्ट श्रम के योग्य बनायें।

१६२६

पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के बारे में

राजकीय वैज्ञानिक परिषद के प्रथम अधिवेशन में रिपोर्ट के लिए तैयार की गई प्रस्थापनाएं[1]

१. हमारा देश अभी तक औद्योगिक दृष्टि से एक सबसे पिछड़ा देश रहा है। अब वह औद्योगीकरण के पथ पर बढ़ रहा है और श्रम के सदियों से चले आ रहे, पिछड़े तौर-तरीके लुप्त हो रहे हैं, उनका स्थान बड़े पैमाने का आधुनिक उद्योग ले रहा है, जिसका निर्माण विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों के अनुसार हो रहा है। सारी अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन हो रहा है।

२. लेकिन हमारे पिछड़ेपन से स्वतंत्र रूप से भी बड़े पैमाने का आधुनिक उद्योग, जिसका निर्माण हमारा देश कर रहा हो, कोई स्थायी चीज़ नहीं है। जैसा कि मार्क्स ने ही अपने समय में इंगित किया था, इसका लक्षण है उत्पादन के तकनीकी आधार में निरंतर परिवर्तन, यों कहें कि उत्पादन का अनवरत पुनर्गठन। इसलिए आधुनिक मज़दूर से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उत्पादन की निरंतर बदलती परिस्थितियों के अनुकूल बन सकता हो, नई उत्पादन विधियां सीख सकता हो। हमारे देश में, जहां शीघ्रातिशीघ्र समाजवादी समाज के निर्माण का उत्पादन आधार तैयार करना आवश्यक है, जहां पुनर्गठन में जनता की सूत्रबद्धता इतनी विशाल भूमिका अदा कर रही है, जहां, जैसा कि लेनिन सदा ज़ोर देते रहे हैं, स्वयं जनसमूह की शिरकत के बिना देश की सारी अर्थव्यवस्था में निर्णायक मोड़ नहीं लाया जा सकता, जनसमूह की पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि अपार महत्व रखती है।

सारी अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन जनसमूह में, बालगण में भी, प्रविधि के प्रति रुचि जगा रहा है और इससे पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने के लिए, जो इस रुचि को गहन बनाती है और उसे वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है, अनुकूल पूर्वाधार बनते हैं।

४. आवश्यकता इस बात की है कि हमारे किंडरगार्टनों से शुरू करके हमारे सभी शिक्षा प्रतिष्ठान इस रुचि को कुंठित न करें, बल्कि तत्संबंधी तथ्यों से अवगत कराते हुए, समुचित पुस्तकें बनाकर इनकी वैज्ञानिक समझ प्रदान करते हुए, कारखानों-मिलों में बच्चों को ले जाकर, प्रेक्षणों के ज़रिए, श्रम प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए, इत्यादि रास्तों से इस रुचि को हर तरह से प्रोत्साहित करें। छात्रों में आधुनिक प्रविधि के प्रति आकर्षण जगाना चाहिए।

५. आधुनिक प्रविधि से व्यावहारिक परिचय कराने के लिए हर बिजलीघर, हर रेलवे वर्कशाप, हर ट्रैक्टर, हर सिलाई मशीन, हर मरम्मतघर, हर फ़ैक्टरी, मिल कारखाने का इस्तेमाल करना चाहिए।

६. पोलीटेक्निकल शिक्षा का अंतर्य क्या है? यह सोचना गलत होगा कि यह शिक्षा निश्चित दक्षताएं पाने में ही निहित है या बहुशिल्पीय शिक्षा में, या प्रविधि के केवल आधुनिक, सो भी उच्चतम रूपों के अध्ययन में। पोलीटेक्निकल शिक्षा एक पूरी पद्धति है, जिसका आधार है प्रविधि का उसके विभिन्न रूपों में, उसके विकास में और सभी ठोस स्वरूपों में अध्ययन। इसमें सजीव प्रकृति का और सामग्रियों की टेक्नोलोजी का, उत्पादन के औज़ारों और उनकी कार्यविधि का तथा ऊर्जा प्रणाली का अध्ययन भी शामिल है। इसमें आर्थिक संबंधों के भौगोलिक आधार का अध्ययन और इस बात का अध्ययन भी आता है कि सामग्रियां पाने और संसाधित करने के तरीकों का श्रम के सामाजिक रूपों पर क्या प्रभाव पड़ता है और ये अंतोक्त सारी समाज-व्यवस्था को कैसे प्रभावित करते हैं।

७. पोलीटेक्निकल शिक्षा किन्हीं विशेष विषयों की शिक्षा नहीं है। यह एक रुख़ है, जो सभी विषयों में व्याप्त होना चाहिए, भौतिकी, रसायन, प्रकृतिविज्ञान और समाजविज्ञान, सभी विषयों की सामग्री चुनने में प्रतिबिंबित होना चाहिए। ये विषय एक दूसरे से जुड़े होने चाहिए, इन्हें व्यावहारिक कार्य से और विशेषतः श्रम-शिक्षा से जुड़ा होना

चाहिए। ऐसा संबंध होने पर ही श्रम शिक्षा पोलीटेक्निकल होगी।

८. स्वाभाविक ही है कि पोलीटेक्निकल पाठ्यक्रम अन्य किसी भी पाठ्यक्रम की तुलना में छात्रों से इस बात की अधिक अपेक्षा करता है कि उन्हें प्रेक्षण करना, प्रयोगों, व्यवहार, विशेषत: श्रम व्यवहार के ज़रिए इन प्रेक्षणों को गहरा बनाना और परखना, अपने प्रेक्षणों को व्यवस्थित करना और उनसे निष्कर्ष निकालना आता हो।

९. पोलीटेक्निकल स्कूल में श्रम-शिक्षा से छात्रों को एक ओर सामान्य श्रम-दक्षताएं प्राप्त होनी चाहिए (जैसे कि: अपने श्रम का ध्येय निश्चित करना, अपने काम की योजना बनाना, गणना करना, ख़ाका तैयार करना, आपस में काम युक्तियुक्त ढंग से बांटना, मिल-जुलकर काम करना, सामग्री का किफ़ायत से उपयोग करना, औज़ारों से काम लेना, तत्संबंधी आयु में जितनी संभव हो, उतनी बारीकी से काम करना, इत्यादि); दूसरी ओर, श्रम प्रक्रियाओं को प्रविधि के, श्रम-संगठन के और उनके सामाजिक महत्व के दृष्टिकोण से समझना (बेशक, यह भी छात्रों की आयु और जीवन अनुभव के अनुरूप होना चाहिए)।

१०. छात्रों को श्रम-दक्षताओं से सुसज्जित करने से स्कूल में समाजोपयोगी कार्य में अधिक गहराई लाने में मदद मिलती है। यह कार्य सामूहिक श्रम की आदत डालने और छात्रों में अपने श्रम के प्रति सामाजिक रुख विकसित करने के लिए अपार महत्व रखता है।

११. ड्राइंग और ख़ाकानवीसी की कक्षाएं, प्रयोगशालाएं, वर्कशापों और कृषि प्रयोगों के लिए ज़मीन – यह सब स्कूल का आवश्यक "साज़-सामान" है। लेकिन स्कूल को उत्पादन-स्थलियों पर भी छात्रों के काम का प्रबंध करने की चेष्टा करनी चाहिए।

१२. स्वाभाविक ही है कि पोलीटेक्निकल स्कूल के विभिन्न चरणों में इसका स्वरूप विभिन्न होता है। पहले चरण में श्रम-शिक्षा अनिवार्यत: सामान्य होती है। लेकिन सातवीं तक के स्कूल में उत्पादन की किसी निश्चित शाखा को प्रस्थान बिंदु माना जाता है (जैसा कि हम किसान-युवाजन स्कूल[2] और फ़ैक्टरी-कारखाना सातवर्षीय स्कूल[3] में पाते हैं)। लेकिन सातवीं कक्षा तक के स्कूलों में विशेषीकरण नहीं होता। यहां पोलीटेक्निकल शिक्षा का ध्येय यह है कि छात्र उत्पादन के बुनियादी

नियम समझ लें, उत्पादन की तत्संबंधी शाखा के कतिपय दूसरी शाखाओं के साथ तकनीकी और आर्थिक परस्पर संबंध देख पायें, सिद्धांत का व्यवहार से संबंध स्थापित करना सीख पायें। दूसरे चरण में निश्चित विशेषीकरण होता है, लेकिन इस तरह का कि इससे निश्चित व्यवसाय सिखाने के साथ-साथ छात्रों का पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण व्यापक हो।

१३. पोलीटेक्निकल स्कूल व्यावसायिक स्कूल से इस बात में भिन्न है कि इसमें श्रम-प्रक्रियाओं को समझने, सिद्धांत और व्यवहार को एक सूत्र में जोड़ने की योग्यता के विकास, निश्चित परिघटनाओं का अन्योन्य आश्रय समझने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जबकि व्यावसायिक स्कूल में छात्रों को श्रम-दक्षताएं सिखाना ही प्रमुख होता है।

१४. लेकिन बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग की प्रकृति ऐसी है कि उसके लिए उन विशेषज्ञों की ज़रूरत होती है, जो उत्पादन की बदलती परिस्थितियों के अनुकूल बनने की क्षमता रखते हों, इसीलिए व्यावसायिक स्कूलों में भी प्रशिक्षण का आधार अधिकाधिक हद तक पोलीटेक्निकल हो रहा है (कम से कम बड़े पैमाने की उत्पादन शाखाओं में)।

१५. सही ढंग से आयोजित पोलीटेक्निकल शिक्षा ऐसा चहुंमुखी विकसित कर्मी तैयार करती है, जो पूंजीपति को नहीं चाहिए। यही कारण है कि पूंजीवादी समाज में पोलीटेक्निकल शिक्षा पूरी तरह विकसित नहीं हो सकती।

१६. हमारे सोवियत देश में बड़े उद्योग का मंद विकास पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति के विकास में बाधक है। लेकिन वर्ष प्रति वर्ष यह बाधा क्षीण पड़ती जायेगी और सोवियत शिक्षा पद्धति अधिकाधिक पोलीटेक्निकल हो जायेगी।

१६२६

अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और पोलीटेक्निकल स्कूल

अखिल रूसी पोलीटेक्निकल शिक्षा कांग्रेस में रिपोर्ट के लिए तैयार की गई प्रस्थापनाएं[1]

१. हमारे देश में आजकल अर्थव्यवस्था का जो पुनर्गठन हो रहा है उसका स्वरूप स्पष्टतः समाजवादी है। वह एकीकृत योजना के अनुसार सारे देश के हित में, व्यापकतम जनसमूह के हित में और स्वयं जनसमूह के हाथों हो रहा है।

सोवियत सत्ता की संरचना और स्वरूप जनसमूह को इन प्रश्नों के गिर्द संगठित करने में सहायक हैं। आर्थिक प्रश्नों पर केंद्रीय कार्यकारिणी से लेकर नगर और ग्राम सोवियतों तक – सभी सोवियतों में विचार किया जाता है। इन्हीं प्रश्नों पर ट्रेड-यूनियन संगठनों में भी विचार होता है। प्रतिष्ठानों में श्रम का संगठन, कारखाना समितियां, उत्पादन सभाएं और समाजवादी प्रतियोगिता – यह सब जनसमूह में आर्थिक प्रश्नों के प्रति रुचि जगाता है। राजकीय और सामूहिक फ़ार्मों के जनसमूह भी इन्हीं प्रश्नों पर अधिकाधिक ग़ौर करने लगे हैं। पार्टी और कोमसोमोल समाजवाद के निर्माण की दृष्टि से इन प्रश्नों पर विचार करते हैं और विचार-विमर्श की गति को प्रभावित करते हैं।

इससे पूरी स्पष्टता के साथ यह निष्कर्ष निकलता है कि उदीयमान पीढ़ी को पोलीटेक्निकल शिक्षा देना आवश्यक है, क्योंकि हमें इस पीढ़ी को सारे उद्योग के वैज्ञानिक आधार की समझ से, आधुनिक श्रम-विधियों से सुसज्जित करना है, उसे उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच, विभिन्न तकनीकी प्रक्रियाओं के बीच संबंध की समझ सिखाना

है। हमें सभी बच्चों को, सभी किशोरों को, सारे युवाजन को हमारी सोवियत पोलीटेक्निकल शिक्षा देनी है।

अर्थव्यवस्था की एकीकृत योजना इस कार्यभार को अत्यंत सरल बनाती है, क्योंकि योजना निकायों की सामग्री से हम सारी आवश्यक सामग्री पा सकते हैं।

२. एकीकृत आर्थिक योजना देश की सारी अर्थव्यवस्था के परिष्कार का परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है। इसके लिए यह अपेक्षित है कि विभिन्न प्रदेशों (सभी प्रदेश "उत्पादक" होने चाहिए), विभिन्न ज़िलों, ज़िलों में शामिल फ़ार्मों के बीच उत्पादन का विवेकसंगत विभाजन हो, उत्पादन की विभिन्न शाखाओं, प्रतिष्ठानों, खातों के बीच विवेकसंगत श्रम-विभाजन हो। हर फ़ार्म, हर कारखाना समाजवादी आर्थिक मशीन का कल-पुर्ज़ा बन रहा है।

पेलीटेक्निकल शिक्षा से उदीयमान पीढ़ी में देश के समाजवादी आर्थिक निर्माण-कार्य के प्रति गहरा अनुराग जागना चाहिए और युवाजन को यह अवसर मिलना चाहिए कि वे अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार महान समाजवादी निर्माण-कार्य में रत होकर व्यवहार में अर्थव्यवस्था की नाना शाखाओं का अध्ययन कर सकें।

३. हमारे देश की अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन नगर और देहात के सारे उत्पादन के औद्योगीकरण की दिशा में हो रहा है। नवीनतम मशीनों से सुसज्जित मिलें, कारखाने उत्पादन की नई-नई शाखाओं में खुल रहे हैं, अधिकाधिक बड़े पैमाने पर हो रहे सामूहिकीकरण और मशीनीकरण के आधार पर सारी कृषि का पुनर्गठन हो रहा है। इस पुनर्गठन से सारे उत्पादन का स्वरूप, श्रम का सारा स्वरूप बदल रहा है, साथ ही समाज में पुराने श्रम-विभाजन का आधार मिट रहा है, समाज के वर्गों में विभाजन की आर्थिक बुनियाद टूट रही है।

४. कृषि में हो रहा पुनर्गठन खेती के काम को औद्योगिक प्रतिष्ठान में काम के समीप ला रहा है, मज़दूर और किसान के श्रम को समीप ला रहा है और इस तरह नगर व देहात के बीच श्रम के सामाजिक विभाजन के आर्थिक आधार को नष्ट कर रहा है। नगर और देहात को समीप लाने में प्रत्यक्ष सफलता प्राप्त हो रही है। लेकिन, एंगेल्स के मत में, यह काम वही पीढ़ी पूरा कर पायेगी, जिसने पूर्ण

पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण पाया है।

यहां यह कहा जाना चाहिए कि पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए नगर और देहात दोनों के श्रम का अध्ययन अपेक्षित है, जैसा कि लेनिन ज़ोर दिया करते थे।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारे किसान-युवाजन विद्यालयों को प्रविधि की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए, जबकि फ़ैक्टरी-कारखाना शिक्षालयों और औद्योगिक विद्यालयों के छात्रों को पढ़ाई के दौरान व्यावहारिक कार्य के लिए गांवों में भेजा जाना चाहिए।

५. आधुनिक प्रविधि श्रम को आसान बनाती है। वे काम, जो पहले हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति – लौहार, कुली – ही कर सकते थे, अब मशीनें करती हैं, इसके फलस्वरूप स्त्रियों को बड़ी संख्या में काम पर लगाना संभव होता है। युद्ध ने सभी देशों में पुरुषों और स्त्रियों के बीच श्रम का परंपरागत विभाजन बहुत हद तक मिटा दिया है, लेकिन घरेलू काम (खाना बनाना, कपड़े धोना, सीना) मशीनों से होने लगने पर और स्त्रियों का शिक्षा स्तर ऊंचा उठने, उन्हें आर्थिक कार्यों में प्रवृत्त करने पर ही – सोवियत सत्ता इसी दिशा में काम कर रही है और इसी दिशा में आर्थिक पुनर्गठन हो रहा है – पुरुष और स्त्री के श्रम के बीच कृत्रिम सीमा मिट पायेगी।

सार्विक पोलीटेक्निकल शिक्षा से उत्पादन कार्यों में लगी स्त्रियों का अनुपात बढ़ेगा।

६. सोवियत परिस्थितियों में आधुनिक प्रविधि कुशल और अकुशल श्रम के बीच भेद मिटाती है। कुशल श्रम का स्वरूप आमूल बदलता है : कुशल मज़दूर को कहीं कम अभ्यास की, केवल हाथों से काम लेने के कहीं कम अभ्यास की ज़रूरत होती है, लेकिन श्रम-प्रक्रियाओं के सार की अधिक गहरी समझ ज़रूरी होती है। सबके लिए तैयारी के दूसरे स्वरूप की ज़रूरत होती है, सामान्य शिक्षात्मक और पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण की प्रधानता होती है। पोलीटेक्निकल शिक्षा प्राप्त मज़दूर अपेक्षाकृत अल्प समय में आवश्यक कौशल पा लेता है। दूसरी ओर उत्पादन कार्य में आवश्यक अकुशल मज़दूरों की संख्या शारीरिक श्रम का स्थान मशीनों द्वारा लिये जाने के साथ-साथ घटती है; उधर शिक्षित मज़दूरों की मांग बढ़ती है, जो कुछ सप्ताह में ही किसी भी

काम में कौशल पा लेते हैं – उनसे सामान्य श्रम विधियों के ज्ञान की अपेक्षा की जाती है। पूंजीवाद मज़दूरों की ऐसी तरक़्क़ी की कम परवाह करता है। व्यापक पोलीटेक्निकल शिक्षा से इन मज़दूरों के लिए शीघ्र तरक़्क़ी के द्वार खुलते हैं। पोलीटेक्निकल शिक्षा बेरोज़गारी से बचाती है और कुशल मज़दूरों की कतारों में स्थान दिलाती है। बच्चों और किशोरों के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू किये जाने से, जिसका स्वरूप पोलीटेक्निकल होना चाहिए, इस कार्य को उचित दिशा मिली है।

७. अंततः, आधुनिक प्रविधि श्रम की नई-नई शाखाओं में व्याप्त होते हुए विभिन्न उत्पादन-कार्यों के बीच दीवारें तोड़ती है, जिसकी चर्चा मार्क्स ने 'पूंजी' में ही की थी। उन्होंने यह इंगित किया था कि उत्पादक कार्य को उसके संघटकों में विभाजित करने से, जैसा कि मैनुफ़ेक्चर चरण में हुआ, वैज्ञानिक टेक्नोलोजी का प्रादुर्भाव संभव हुआ। वैज्ञानिक टेक्नोलोजी उत्पादन की सभी प्रक्रियाओं के लिए विज्ञान की जानकारी प्रयुक्त करती है और इन प्रक्रियाओं में एकता लाती है।

प्रविधि एक स्थान पर रुकी नहीं रहती, इसका रूप-परिवर्तन निरंतर होता रहता है, मशीनों और रासायनिक प्रक्रियाओं की मदद से यह उत्पादन को मूल में ही बदलती है, श्रम-शक्ति की मांग को भी बदलती है। "इसलिए आधुनिक उद्योग ख़ुद अपने स्वरूप के कारण ... श्रम के निरंतर परिवर्तन, काम के रूप में लगातार तबदीली और मज़दूरों में सार्वत्रिक गतिशीलता को ज़रूरी बना देता है।"[2] हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन की तीव्र गति से श्रम-शक्तियों का पुनर्व्यूहन, उनके कार्यों के स्वरूप में परिवर्तन और भी अधिक बड़े पैमाने पर, और भी अधिक गहन होता है। हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन की यह अनम्य मांग है कि आमूल बदलते प्रकार्यों के अनुकूल बनने की योग्यता हो, जो सही ढंग से आयोजित पोलीटेक्निकल शिक्षा ही दे सकती है। व्यापकतम जनसमूह को इसकी आवश्यकता है। यही कारण है कि न केवल हमारे उच्च शिक्षा संस्थानों और तकनीकी विद्यालयों को पोलीटेक्निकल शिक्षा देनी चाहिए, जिसकी पृष्ठभूमि में ही संकीर्ण विशेषज्ञता स्वीकार्य है, बल्कि स्कूल का स्वरूप भी पोलीटेक्निकल होना चाहिए। श्रमिक शिक्षा का स्वरूप भी ऐसा ही होना चाहिए। पोलीटेक्निकल रुख बहुत हद तक पुनर्गठन की तीव्र गति से संबंधित कठिनाइयों को कम कर सकता

है। इस काम में विलंब नहीं होना चाहिए।

८. आधुनिक प्रविधि हमारी परिस्थितियों में यदि कुशल और अकुशल श्रमिकों के बीच वह दरार पाटती है, जिसे बढ़ाने की चेष्टा पूंजीपति सदा करते हैं, तो दूसरी ओर मानसिक और शारीरिक श्रम को एक दूसरे के निकट लाने की आधुनिक प्रविधि की प्रवृत्ति सोवियत परिस्थितियों में अत्यंत अनुकूल आधार पाती है। फ़िलहाल स्वतोस्फूर्त ढंग से फैल रही श्रमिक और किसान शिक्षा का विकास, सांस्कृतिक क्रांति की उठती लहर, सारी शिक्षा को व्यावहारिक जीवन-स्वरूप प्रदान किया जाना और उत्पादन व्यवहार का व्यापक उपयोग – यह सब मानसिक और शारीरिक श्रम को एक दूसरे के निकट लाने में सहायक होगा। इसमें हमारी शिक्षा पद्धति को पोलीटेक्निकल बनाया जाना बहुत बड़ी भूमिका अदा करेगा।

९. अंततः, उत्पादन सभाओं, विभिन्न उत्पादन आयोगों, फ़ैक्टरी-कारखाना समितियों में मज़दूरों की शिरकत और उनकी समाजवादी प्रतियोगिता ही मज़दूर जनसमूह में संगठनकर्ताओं को विकसित करती हैं। इसी की बदौलत मिलों-कारखानों से मज़दूरों को राज्य-तंत्र में लाने का इतना आवश्यक कार्य करना संभव हो पाया है। पोलीटेक्निकल शिक्षा इस कार्य को कहीं अधिक कारगर बनायेगी।

१०. हम यह देख रहे हैं कि किस प्रकार हमारी सोवियत परिस्थितियां आधुनिक प्रविधि की प्रवृत्तियों को अधिकाधिक व्यापक पैमाने पर मूर्तित करने में सहायक हो रही हैं और इस प्रकार वर्ग-समाज के अवशेष नष्ट करने के पूर्वाधार बना रही हैं। उदीयमान पीढ़ी के प्रत्येक व्यक्ति को पोलीटेक्निकल शिक्षा प्रदान करना इस मूर्तिकरण का एक सक्रिय कारक होना चाहिए। मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने पोलीटेक्निकल शिक्षा के महत्व पर बारंबार ज़ोर दिया है। आज हमारी अर्थव्यवस्था के समाजवादी पुनर्गठन की बदौलत यह महत्व कहीं अधिक दृष्टिगोचर हो रहा है। पोलीटेक्निकल शिक्षा केवल शिक्षा जन-कमिसारियत और उसके विभागों का ही कार्य नहीं है, बल्कि ऐसा कार्य, ऐसा ध्येय है, जिसमें सारा देश रुचि रखता है, सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था की सर्वोच्च परिषद, भूमि जन-कमिसारियत, ट्रेड-यूनियनें और स्वयं उदीयमान पीढ़ी।

११. सारा देश इंजीनियर, कृषिविशेषज्ञ, विज्ञान-कर्मी तैयार करने की तीव्र आवश्यकता अनुभव कर रहा है। इस दिशा में भगीरथ प्रयत्न किये जा रहे हैं। कर्मियों के प्रशिक्षण के कार्य के लिए जैसे ही सार्विक अनिवार्य पोलीटेक्निकल शिक्षा का आधार बना लिया जायेगा, उसी क्षण यह सुचारु ढंग से होने लगेगा। इसमें भी कोई विलंब नहीं होने दिया जा सकता।

१२. यह समस्त कार्य विराट पैमाने पर होना चाहिए। आर्थिक, ट्रेड-यूनियन, सामूहिक फ़ार्म और शिक्षा निकायों के बीच कतिपय आम समझौते होने चाहिए। यहां भी काम की एकीकृत योजना और उसकी तीव्र गति आवश्यक है।

१६३०

अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और पोलीटेक्निकल शिक्षा

पोलीटेक्निकल शिक्षा के विषय पर पहली अखिल रूसी कांग्रेस में दिये गये भाषण और रिपोर्ट

उद्घाटन भाषण

साथियो, पोलीटेक्निकल शिक्षा पर पहली कांग्रेस का अभिवादन करने की अनुमति दें। बेशक, बहुतों को यह लग सकता है कि कांग्रेस बड़े अनुपयुक्त समय पर बुलाई गई है। आजकल छुट्टियों के दिन हैं, फ़सल की कटाई हो रही है, सो जब हम इस प्रश्न पर विचार कर रहे थे तो बहुतों ने यह मत व्यक्त किया था कि कांग्रेस स्थगित कर देना बेहतर होगा। लेकिन बात यह है कि पोलीटेक्निकल स्कूल का, पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न अत्यंत तात्कालिक प्रश्न है, यह ऐसा प्रश्न है, जिसे कदापि टाला नहीं जा सकता, क्योंकि शैक्षिक वर्ष आरंभ होने से पहले ही हमें विशाल कार्य शुरू कर देना है। यही कारण है कि समय बहुत उपयुक्त न होने के बावजूद कांग्रेस इन दिनों ही आयोजित करने का निश्चय किया गया।

पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न कोई नया प्रश्न नहीं है। आप सब भली-भांति जानते हैं कि मार्क्स और एंगेल्स ने अपने समय में यह सवाल उठाया था। मार्क्स ने यह प्रमाणित किया था कि विशाल उद्योग चहुं-मुखी विकसित लोगों की बिल्कुल नई श्रम-शिक्षा की संभावना प्रस्तुत करता है। मैं इस प्रश्न की गहराई में नहीं जाऊंगी – हमारे साहित्य में इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। केवल इतना इंगित करूंगी कि एंगेल्स ने 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' में विशेषतः ज़ोर देकर कहा था कि यह प्रश्न समाजवाद के निर्माण के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ

है। दूसरी ओर, एंगेल्स ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि नगर और देहात के बीच जो अंतर्विरोध है, वह केवल तभी पूरी तरह से मिटाया जा सकेगा, जब चहुंमुखी विकसित, पोलीटेक्निकल दृष्टि से प्रशिक्षित लोगों की नई पीढ़ी बनेगी। तो इस प्रकार मार्क्स-एंगेल्स की शिक्षा में यह प्रश्न निरूपित है।

पिछली सदी के अंतिम दशक में, जब हमारे यहां रूस में उद्योग के विकास से मज़दूर आंदोलन के लिए ज़मीन बनी, जब इसकी बदौलत मार्क्स की शिक्षा ने ठोस आधार पाया, जब मार्क्सवादी मंडलियां बनने लगीं, तभी हमारे यहां रूस में पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न उठा। साथी लेनिन ने अपने लेख 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल' में इस बात पर ज़ोर दिया था कि मार्क्सवादी पोलीटेक्निकल शिक्षा के, शिक्षा को उत्पादक श्रम से जोड़ने के दृष्टिकोण को स्वीकारते हैं। इसके साथ ही लेनिन इस प्रश्न को सार्विक शिक्षा और सबके लिए अनिवार्य श्रम के प्रश्न से संबंधित मानते थे। शिक्षा के उत्पादक श्रम के साथ संबंध से ही चहुंमुखी विकसित लोग बनते हैं। पहले जब भी यह लेख पढ़ा तो इस पहलू की ओर सार्विक शिक्षा के साथ पोलीटेक्निकल शिक्षा के संबंध की ओर कम ध्यान गया, लेकिन अब इस क्षण, जबकि पार्टी की १६ वीं कांग्रेस ने अनिवार्य सार्विक शिक्षा लागू करने का निर्णय स्वीकार कर लिया है – अब, स्वाभाविकतः, इस बात की ओर विशेषतः ध्यान जाता है कि हम सार्विक शिक्षा के प्रश्न का पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के प्रश्न के साथ घनिष्ठतम संबंध जोड़ते हैं।

साथियो, यह पहला चरण था, जब हमारे यहां रूस में पिछली सदी के अंतिम दशक में मार्क्सवादियों ने पोलीटेक्निकल शिक्षा की चर्चा की। फिर काफ़ी लंबा अरसा बीता और जब विश्व युद्ध के कारण कई देशों में श्रम-शक्ति का संकट पैदा हुआ, जब विश्वयुद्ध गृहयुद्ध में बदल गया, जब मज़दूर वर्ग विजयी हुआ, तभी पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रश्न ने नई सामयिकता पाई। १६१५–१६१६ में ही जर्मनी, इंगलैंड और दूसरे देशों में शैक्षिक साहित्य पर नज़र रखते हुए यह देखा जा सकता था कि किस प्रकार वहां श्रम-शक्ति के संकट के कारण इस शक्ति को तैयार करने का प्रश्न नये ढंग से उठाया जा रहा है। लेकिन साथ ही यह भी देखा जा सकता था कि किस प्रकार पूंजीवादी समाज-

व्यवस्था यह प्रश्न सही ढंग से नहीं उठाने देती है, उसे समाजवाद के निर्माण के प्रश्न से अलग करती है। उन दिनों ही स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने के इतिहास का विस्तार से अध्ययन करना पड़ा और जब अक्तूबर क्रांति हुई तो हमारे पास यह नीति तैयार थी कि सार्विक अनिवार्य शिक्षा लागू करनी चाहिए और साथ ही शिक्षा पोलीटेक्निकल होनी चाहिए। पार्टी की आठवीं कांग्रेस में स्वीकृत कार्यक्रम में यह कहा गया था कि सोवियत स्कूल पोलीटेक्निकल स्कूल होना चाहिए।

गृहयुद्ध की समाप्ति पर, १९२० के अंत और १९२१ के शुरू में जब अर्थव्यवस्था पुनरुत्थान करना था, तब पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न पूरी उग्रता से सामने आया। उन दिनों पार्टी में उत्पादन संबंधी प्रचार के, वयस्क मज़दूरों की पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि व्यापक बनाने के प्रश्न पर ज़ोरदार बहस चली। उन दिनों ट्रेड-यूनियनों के बारे में जो वाद-विवाद चल रहा था, उसके दौरान लेनिन ने उत्पादन संबंधी प्रचार के सारे महत्व पर विशेषतः ज़ोर दिया, लेकिन वह चाहते थे कि यह प्रचार पोलीटेक्निकल दृष्टि से हो कि इससे मज़दूरों की पोली-टेक्निकल दृष्टि-परिधि व्यापक बने। लेनिन मज़दूर वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत विराट कार्यभार, नये, समाजवादी आधार पर सारी अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन के कार्यभार देख रहे थे और इसलिए वह इस निर्माण कार्य में जनसमूह को प्रवृत्त करने की आवश्यकता पर ज़ोर देते थे। साथी क्रजीजानोव्स्की को अपने पत्रों में लेनिन ने इस बात पर ज़ोर दिया कि विद्युतीकरण की योजना में जनसाधारण की रुचि जगानी चाहिए, विद्युतीकरण का प्रचार व्यावहारिक होना चाहिए। १९२०–१९२१ में पोलीटेक्निकल शिक्षा प्रश्न सर्वप्रथम वयस्कों के बीच काम के प्रसंग में ही देखा जाता था।

इसके साथ ही उन दिनों हुए पार्टी सम्मेलन में स्कूलों के संदर्भ में भी यह सवाल उठाया गया। लेनिन ने तब पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के बारे में टिप्पणियां लिखीं और 'शिक्षा जन-कमिसारियत के काम के बारे में' शीर्षक लेख में पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में अपने विचार व्यक्त किये, यह कहा कि इसके स्थान पर कोई "मोनोटेक्निज़्म" यानी एकांगी तकनीकी शिक्षा लागू करना, व्यवसायोन्मुख सामान्य शिक्षा देना ग़लत है।

कहना न होगा कि गृहयुद्ध के वर्षों में पोलीटेक्निकल शिक्षा का आवश्यक प्रसार नहीं हो सकता था, क्योंकि तब आम तबाहहाली, अर्थव्यवस्था के आम विध्वंस के कारण ऐसे हालात पैदा हो गये थे, जिनमें पोलीटेक्निकल शिक्षा देना अत्यंत कठिन था, और वे कुछेक प्रायोगिक स्कूल, जो ऐसा करने के प्रयास कर रहे थे तथा इस दिशा में उठाये जा रहे कुछेक सफल क़दम – ये सब अंततः "प्रायोगिक" ही थे ; आम स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा ने स्थान नहीं पाया था।

नई आर्थिक नीति[1] के, पुनरुत्थान के वर्षों में हम देखते हैं कि हमारे आम स्कूलों में पोलीटेक्निकल स्कूल के कुछ विचार स्थान पाने लगे, लेकिन जितना होना चाहिए था उससे कहीं कम हद तक। हमारे यहां केवल दो तरह के स्कूल थे, जो कमोबेश पोलीटेक्निकल स्कूल के समीप थे। एक तो फ़ैक्टरी-कारखाना शिक्षालय। यह स्कूल वह बड़े पैमाने का स्कूल था, जिसने यह दिखाया कि किस प्रकार शिक्षा को उत्पादन-स्थल पर व्यावहारिक कार्य के साथ जोड़ना चाहिए। यह पोलीटेक्निकल स्कूल का रूप था।

...फ़ैक्टरी-कारखाना शिक्षालय के मूल में पोलीटेक्नकल शिक्षा का, शिक्षा को उत्पादन-कार्य से जोड़ने का विचार ही निहित था।

इसके बाद दूसरा स्कूल जो पोलीटेक्निकल शिक्षा की दिशा में बढ़ा है, वह है किसान युवाजन स्कूल। वहां भी शिक्षा का उत्पादन से घनिष्ठ संबंध है, लेकिन हमारे यहां कृषि पिछड़ी हुई थी। इसका स्कूल पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। आज, जबकि कृषि का सामूहिकीकरण और मशीनीकरण हो रहा है, किसान युवाजन स्कूल के सम्मुख नये क्षितिज खुल रहे हैं और इसे सच्चे अर्थों में पोलीटेक्निकल स्कूल बनने का अवसर मिल रहा है।

लेकिन यदि हम आम तौर पर स्कूलों को लें, तो यही कहना होगा कि केवल कुछ प्रयोग, कुछ प्रयास ही हुए हैं, जबकि अधिसंख्या में न पहले और न दूसरे चरण के स्कूल पोलीटेक्निकल स्कूल रहे हैं। यदि हम कभी-कभी अपनी वर्कशापों को पोलीटेक्निकल वर्कशाप कहते थे, तो ऐसा अपने मन की संतुष्टि के लिए ही करते थे। लेकिन अब, इस क्षण, पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए परिस्थितियां बिल्कुल दूसरी बन गई हैं।

पार्टी की १६ वीं कांग्रेस ने 'अनेक नितांत महत्वपूर्ण प्रश्न विशेष स्पष्टता के साथ निरूपित किये हैं। कांग्रेस में देश के आर्थिक जीवन में आ रहे सभी आमूल परिवर्तन इंगित किये गये हैं और देश में हो रहे निर्माण का समाजवादी सार उघाड़ा गया है।

ट्रेड-यूनियनें उत्पादन की ओर उन्मुख हुई हैं, आर्थिक जीवन के अनेक प्रश्न नये ढंग से प्रस्तुत किये जा रहे हैं, इस सब को देखते हुए पोलीटेक्निकल स्कूल का प्रश्न नये धरातल पर आता है, एक अत्यंत तात्कालिक, सर्वाधिक सामयिक प्रश्न बनता है और साथ ही इसके समाधान की नई संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त होता है।

यह सच है कि अभी पुराने ढर्रे की जकड़ काफ़ी मज़बूत है और कुछ प्रबंधकर्मी, कुछ विशेषज्ञ, कुछ शिक्षाकर्मी, कुछ मज़दूर प्रायः इन प्रश्नों को गंभीरता से नहीं लेते हैं। बहुतों को यह लगता है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न एक विभागीय प्रश्न है, केवल शिक्षा जन-कमिसारियत का प्रश्न है, किंतु जीवन अपना दबाव डाल रहा है और सिखा रहा है। यहां जो कांग्रेस जमा हुई है, यह कांग्रेस ठीक समय पर हो रही है, क्योंकि इस समय ही पोलीटेक्निकल शिक्षा के अनेक प्रश्न पूरी गंभीरता से उठाये जाने चाहिए। वह समय बीत चुका है जब पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रचार ही चल रहा था। अब प्रश्न यह है कि हमारी सारी शिक्षा-पद्धति – पहले चरण से शुरू करके उच्च शिक्षा तक पोलीटेक्निकल हो। यह सारे जीवन की, सारे उत्पादन-कार्य की मांग है। हमें सारी शिक्षा-पद्धति का विराट पुनर्गठन करना है।

स्वाभाविक ही है कि अकेला शिक्षा जन-कमिसारियत यह काम नहीं कर सकता, यहां केवल पार्टी की ही मदद नहीं चाहिए, जो सदा पोलीटेक्निकल शिक्षा का स्वागत करती आई है, केवल कोमसोमोल का ही समर्थन नहीं चाहिए, जो इसमें प्रत्यक्षतः रुचि रखता है – यहां ट्रेड-यूनियनों की ओर से, आर्थिक प्रबंधकों की ओर से भारी मदद चाहिए, क्योंकि सामान्य प्रयासों से ही उस शिक्षा पद्धति का निर्माण किया जा सकता है, जिसका अस्तित्व ही समाजवाद के पथ पर वामन पग होगा।

साथियो, इसके साथ मैं अपना भाषण समाप्त करने की अनुमति चाहती हूं और यह कामना करती हूं कि कांग्रेस का कार्य अधिक से

अधिक फलप्रद हो और वह सभी प्रश्नों का यथासंभव अधिक व्यावहारिक निरूपण करे। दस साल पहले १९२० में जब उत्पादन संबंधी प्रचार पर वाद-विवाद चल रहा था, तो लेनिन ने कहा था कि अब सिद्धांत से व्यवहार पर आना चाहिए। आज इस बात की सभी संभावनाएं मौजूद हैं कि पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न व्यावहारिक धरातल पर रखा जाये।

रिपोर्ट

मेरी रिपोर्ट का विषय है 'अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और पोलीटेक्निकल शिक्षा'।

साथियो, आज हम अर्थव्यवस्था के जिस पुनर्गठन के साक्षी हैं, उसका स्वरूप स्पष्टतः समाजवादी है। यही इसकी विशिष्टता है, यही इसका विशेष लक्षण है – यह पुनर्गठन पूर्णतः समाजवादी है।

बात केवल यह नहीं है कि उत्पादन साधनों का समाजीकरण बढ़ रहा है, बात यह है कि सारा संगठन नये ढंग से हो रहा है, कि अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन का ध्येय मेहनतकश जनसमूह का हित ही है।

बेशक, यह हमारे यहां अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन और पूंजीवादी देशों में हो रहे पुनर्गठन का मूलभूत अंतर है। वहां पुनर्गठन का ध्येय मुट्ठी भर पूंजीपतियों का मुनाफ़ा है।

तदुपरांत हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन की प्रमुख विशेषता यह है कि यह कार्य स्वयं जनसमूह के हाथों हो रहा है, कि यदि व्यापक जनसमूह इसमें सक्रिय, सचेतन भाग न लेते, तो यह असंभव होता।

लेनिन ने अपनी पुस्तिका 'एक शानदार शुरूआत' में अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन के क्षेत्र में प्रस्तुत कार्यभारों की चर्चा की थी। यह पुस्तिका १९१९ में सुब्बोत्निकों के सिलसिले में लिखी गई थी, जो उन दिनों स्वतोस्फूर्त ढंग से होने लगे थे। उन्होंने कहा था कि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में हमारे समाजवादी निर्माण की विशेषता है एक भिन्न सामाजिक संबंध। पूंजीवादी देशों में कैसा सामाजिक संबंध है? यह पूंजीपति और मज़दूर का, ज़मींदार और उसके लिए काम कर रहे किसान का संबंध है। वहां ज़मींदारों और पूंजीपतियों की सत्ता है। वहां सारा

सामाजिक रिश्ता इसी से निर्धारित होता है। हमारे यहां सोवियतों की सत्ता है और यह भिन्न सामाजिक नाता, यह सोवियतों की सत्ता जनसमूह के कार्य के लिए, उनकी पहलक़दमी के लिए, उनके स्वतोंस्फूर्त क्रियाकलाप के विकास के लिए ऐसी परिस्थितियां बनाती है, जो पूंजीवादी देशों में न हैं, न हो सकती हैं, और इस सामाजिक संबंध में ही जनसमूह की वह सृजन शक्ति बनती है, जो अभूतपूर्व गति की संभावना सुनिश्चित करती है। जब हम यह कहते हैं कि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में हमारा कार्यभार है – पूंजीवादी देशों के स्तर तक पहुंचना और उनसे आगे बढ़ना, तो यह महज़ प्रचार नारा नहीं है, यह इस बात की गहन चेतना है कि हमारी परिस्थितियों में, सोवियत देश की परिस्थितियों में एक नई विराट शक्ति बन रही है – संगठित सचेतन जनसमूह की शक्ति, जो पूंजीवादी देशों में नहीं है। और यह शक्ति ही हमारे इस नारे को एक यथार्थ नारा बनाती है। यह कोई प्रचार की चाल नहीं है, यह उस तथ्य की स्वीकृति है, जिसके साक्षी हम-आप हैं।

इस नये संबंध की ही चर्चा लेनिन ने की थी, जब उन्होंने अपनी पुस्तिका 'एक शानदार शुरूआत' में सुब्बोत्निकों में प्रकट हो रहे सचेतन श्रम-अनुशासन के बारे में लिखा। लेकिन हम देख रहे हैं कि अब नई परिस्थितियों में यह सचेतन अनुशासन कैसे विकसित हो रहा है। हम इस बात के साक्षी हैं कि कैसे हमारे देखते-देखते मिलों-कारखानों में यह सचेतन अनुशासन बन रहा है, पूंजीवादी अनुशासन नहीं, वह अनुशासन नहीं, जो पूंजीवादी राज्य के वातावरण से बनता है, बल्कि वह अनुशासन, जो स्वयं आंतरिक चेतना से बनता है।

फिर श्रम का नया संगठन आता है। यदि हम आज फ़ैक्टरी या कारखाने में जायें, एक दूसरे से समाजवादी प्रतियोगिता कर रही टोलियां देखें, काम की रफ़्तार देखें, तो हम पल भर भी हिचकिचाये बिना कहेंगे कि हम सचमुच श्रम का नया संगठन देख रहे हैं। यदि हम आज सामूहिक फ़ार्मों में हो रहा निर्माण देखें, तो पायेंगे कि वहां सारा उत्पादन कार्य नये ढंग से संगठित हो रहा है। यह उस संगठन जैसा नहीं है जो पहले था, यह सामूहिकतावादी संगठन है, जो काम के दौरान बनता है और विराट सृजनात्मक शक्ति है।

और अंतिम बात, जिस पर लेनिन ने इस सिलसिले में ज़ोर दिया, वह है विज्ञान और पूंजीवादी प्रविधि की नवीनतम उपलब्धियों को बड़े पैमाने का समाजवादी उत्पादन कार्य कर रहे वर्ग-चेतन मज़दूरों के जन संगठन के साथ मिलाने की आवश्यकता।

अनेक बार अलग-अलग मौक़ों पर लेनिन ने यह कहा था कि हमें पश्चिम से, अमरीका से, पूंजीवादी देशों से प्रविधि की उपलब्धियां लेनी चाहिए, यह सब लेना चाहिए, लेकिन इसे लेकर हमारी नई परिस्थितियों में इसका नये ढंग से उपयोग करना चाहिए।

१६१८ में सोवियतों की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में लेनिन ने कहा था: "अब तकनीक के सभी चमत्कार, संस्कृति की सभी उपलब्धियां सारी जनता की संपदा होंगी, और अब कभी मानव बुद्धि और मेधा हिंसा के साधनों में, शोषण के साधनों में परिवर्तित नहीं होंगी,"[2] आगे उन्होंने यह कहा था कि किस प्रकार तकनीक की उपलब्धियां जनसमूह को अभूतपूर्व, अश्रुतपूर्व स्तर पर उठायेंगी।

ये सब विचार, जो लेनिन ने अपने समय में प्रस्तुत किये थे, वे अब व्यवहार में मूर्तित हो रहे हैं।

आजकल समाजवादी प्रतियोगिता हो रही है। उसका परिमाण वैसा नहीं, जैसा पुराने सुब्बोत्निकों के समय था। समाजवादी प्रतियोगिता सभी बड़े प्रतिष्ठानों में फैल रही है, वह अधिक गहन हो रही है, नये-नये रूप ग्रहण कर रही है। हर रोज़ अख़बारों में हम इन नये रूपों के बारे में पढ़ते हैं – कहीं अग्रणी टोलियां पिछड़ी टोलियों को आगे बढ़ाने का दायित्व ले रही हैं, कहीं अनेक क्रमिक कार्य करनेवालों की एक टोली बन रही है, कहीं कोई और नये रूप खोजे जा रहे हैं। हम टोली कम्यूनों के बारे में पढ़ते हैं, जिनमें नये ढंग से संगठित होकर मज़दूर अपने काम में एक दूसरे की सहायता करते हैं। इस सबके फलस्वरूप हम अपने निर्माण को नई दृष्टि से देख पाते हैं।

उदाहरण के लिए आजकल फ़िज़ूलखर्ची से संघर्ष का सवाल उठाया गया है। 'योजना मोर्चे पर' पत्रिका के अंक ६-१० में रुदाकोव का बड़ा रोचक लेख है। उन्होंने लिखा है कि हिसाब लगाने पर यह पाया गया है कि हमारे यहां हर साल ४ अरब रूबल का अपव्यय होता है। जब फ़िज़ूलखर्ची से संघर्ष का यह कार्यभार मज़दूर वर्ग सामने रखा

गया तो मज़दूर इस काम में जुट गये। अब यह हिसाब लगाया गया है कि अनुमान से चुने गये दस कारखानों में अल्प समय में ही ऐसा पुनर्गठन किया गया है, जिससे तुरंत ३० लाख रूबल की बचत हुई है, और इसके अलावा भी कई सुझाव पेश किये गये – मज़दूरों ने कुल २२ हज़ार प्रस्ताव रखे। १० कारखानों में २२ हज़ार प्रस्ताव – इस संख्या से यह पता चलता है कि उत्पादन का प्रबंध, उत्पादन का पुनर्गठन कैसे सर्वश्रेष्ठ ढंग से हो सकता है। इससे यह पता चलता है कि मज़दूर वर्ग अर्थव्यवस्था के नये ढंग से पुनर्गठन में पूरे तन-मन से भाग ले रहा है। इसी से वह शक्ति बनती है, जिसकी बदौलत तेज़ी गति से आगे बढ़ना संभव है। किंतु यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि मज़दूर जनसमूह की सक्रियता का, मज़दूरों के सृजन का परिणाम उतना ही अच्छा होगा, कारगरता उतनी ही अधिक होगी, जितने अधिक वे तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित होंगे, जितनी अच्छी तरह वे उत्पादन की सभी प्रक्रियाओं को, उनके परस्पर संबंध को समझते होंगे, जितनी अधिक उनकी पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि व्यापक होगी।

बेशक, यह नहीं कहा जा सकता कि मज़दूरों द्वारा रखा गया हर प्रस्ताव अमल में लाना चाहिए। अक्सर ये प्रस्ताव मज़दूर के अल्प तकनीकी ज्ञान, गणनाएं करने की अक्षमता, आदि के कारण क्रियान्वयन के योग्य नहीं होते। यदि मज़दूरों को अधिक अच्छी तकनीकी शिक्षा मिली होती तो उनके प्रस्तावों का बिल्कुल दूसरा ही महत्व हो सकता था। सो स्पष्ट है कि जनसाधारण की सृजन शक्ति उतनी ही अधिक कारगर होगी जितना ऊंचा पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण उन्हें प्राप्त होगा। इसीलिए लेनिन ने 'उत्पादन-प्रचार संबंधी प्रस्थापनाओं' में और पोली-टेक्निकल शिक्षा के संगठन के प्रश्न पर अपनी टिप्पणियों में लिखा था कि हमें आज मिस्त्री और बढ़ई चाहिए, लेकिन ऐसे जिनकी दृष्टि-परिधि पोलीटेक्निकल हो। लेनिन ने सर्वत्र कार्य के इस पहलू – पोली-टेक्निकल शिक्षा – की ओर ज़ोर दिया।

हम देखते हैं कि हमारे यहां स्वतोस्फूर्त ढंग से काफ़ी बड़े पैमाने पर मज़दूरों का पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण होने लगा है। उत्पादन के प्रावेशिक पाठ्यक्रमों को लें। केवल उक्राइना में ही १९२९ में ३६ हज़ार मज़दूरों को इन पाठ्यक्रमों में भेजने का फ़ैसला किया गया है।

किसी कारखाने में जाने पर अक्सर बताया जाता है : "हमारे यहां उत्पादन का प्रावेशिक पाठ्यक्रम है," लेकिन यह नहीं बताया जाता कि यह कैसा पाठ्यक्रम है, उसमें पढ़ाई कैसे होती है, इस काम का अभी कोई अध्ययन नहीं होता है। यह कहना होगा कि यह काम काफ़ी अव्यवस्थित ढंग से हो रहा है।

...उदाहरण के लिए, यदि आप मास्को के किसी कारखाने में जायेंगे, तो आपको बताया जायेगा : "हमारे यहां लगभग आधे मज़दूर शिक्षा पा रहे हैं।" लेकिन कहां शिक्षा पा रहे हैं? आम तौर पर वे मज़दूर फ़ैकल्टियों के तैयारी पाठ्यक्रों में, मज़दूर फ़ैकल्टियों[3] में, तकनीकी विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों के विभिन्न तैयारी पाठ्यक्रमों में शिक्षा पाते हैं। जबकि यह कहना होगा कि ये सभी पाठ्यक्रम अभी उत्पादन के साथ पर्याप्त रूप से संलग्न नहीं हैं, इनमें रूढ़िगत शिक्षा का तत्व अधिक है। किंतु पुराने ढंग की शिक्षा के साथ-साथ नये रूप भी बन रहे हैं, उदाहरण के लिए कारखाना-स्कूल, जहां हर खाते में, हर प्रक्रिया से संबंधित कई विशेष पाठ्यक्रम होते हैं, जो तत्संबंधी प्रक्रिया के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। सारी शिक्षा कारखाने के गिर्द होती है। व्यवहार के, जीवन के आधार पर पाठ्यक्रम नये ढंग से बनाये जा रहे हैं। बेशक, यह असाधारण पथ है, ऐसे कारखाना-स्कूलों के अनुभव का अध्ययन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। और फिर शिक्षा के दूसरे रूप भी हैं – उत्पादन से संबंधित प्रदर्शनियां, व्याख्यान, इत्यादि। इस सबसे मज़दूरों की दृष्टि-परिधि बहुत व्यापक होती है। उत्पादन की आवश्यकताओं के कारण मज़दूरों को एक कारखाने से दूसरे में भेजने के व्यवहार से भी मज़दूरों की दृष्टि-परिधि व्यापक होती है, उनकी पोलीटेक्निकल चेतना निस्संदेह बढ़ती है।

'उत्पादन-प्रचार संबंधी प्रस्थापनाओं' में लेनिन ने यह इंगित किया है कि उत्पादन-प्रचार कितने व्यापक पैमाने पर होना चाहिए। उदाहरणतः, उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि निरक्षरता उन्मूलन केंद्र उत्पादन-प्रचार से, पोलीटेक्निकल प्रचार से संबद्ध होने चाहिए। निस्संदेह, यह बात बहुत मानी रखती है। हमारे यहां आजकल निरक्षरता उन्मूलन का काम जिस पैमाने पर हो रहा है उसे देखते हुए, यदि इस काम को उत्पादन-प्रचार के तत्वों के साथ जोड़ा जाये तो यह आगे

बढ़ाया हुआ एक विराट क़दम होगा, क्योंकि मज़दूरों के सबसे अधिक पिछड़े संस्तर ऊपर उठेंगे और उत्पादन-कार्य के प्रति सचेतन रुख़ अपनायेंगे।

एक और पहलू भी है, जो मज़दूरों की व्यापक पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि को आवश्यक बनाता है – बात यह है कि हमारे यहां अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण अत्यंत क्षीण आधार पर हो रहा है। यदि हम विभिन्न जातीय क्षेत्रों को, अलग-अलग इलाक़ों को लें, तो हम देखेंगे कि वहां निर्माण-कार्य एकदम नये सिरे से शुरू करना पड़ रहा है। लेनिन ने समाज की आर्थिक पद्धतियों की चर्चा की थी। हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि हमें अत्यंत जटिल परिस्थितियों में मज़दूरों के पूर्णतः विभिन्न प्रशिक्षण-स्तर को, सारी स्थिति को ध्यान में रखना है और इस मामले में किन्हीं खाकों के अनुसार नहीं चला जा सकता, यहां तो आवश्यकता इस बात की है कि जनसमूह इस निर्माण-कार्य में भाग लें। जनसमूह की शिरकत के बिना हमारा पुनर्निर्माण कार्य उस गहराई से और उतने बड़े पैमाने पर नहीं हो पायेगा, जिसकी जीवन हमसे अपेक्षा करता है।

अभी तक मैंने वयस्कों द्वारा पोलीटेक्निकल शिक्षा पाने और अपनी दृष्टि-परिधि व्यापक बनाने की ही चर्चा की है। लेकिन स्कूल के प्रसंग में स्थिति क्या है? बात यह है कि प्रौढ़-शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाने का कार्य स्कूल में पोलीटेक्निकल शिक्षा के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। आप जानते हैं कि पार्टी के कार्यक्रम में जनशिक्षा परिषदों की चर्चा की गई है; लेनिन ने इनके महत्व पर ज़ोर दिया था। ये 'स्कूल सहायता परिषदें'[4] नहीं हैं, ये तो कुछ और ही हैं, ये परिषदें तो स्कूली शिक्षा-पद्धति के निर्माण में जनसमूह की शिरकत के लिए हैं, और स्वाभाविक है कि यदि जनसमूह की दृष्टि-परिधि व्यापक होती है, तो यह जनसमूह स्कूली शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाने के काम में सक्रियतम भाग ले सकेगा।

साथियो, हम किसी भ्रम में नहीं हैं, हम जानते हैं कि हमारे स्कूल कितने साधनहीन हैं, कि स्कूलों में वर्कशापों को कितना कम स्थान मिलता है। अभी पीछे किसी ने हिसाब लगाया है कि अक्तूबर क्रांति के बाद बनाये गये स्कूलों में कुल स्थान का केवल २% वर्कशापों के लिए

होता है, जबकि ओवरकोट वगैरह उतारने का स्थान ५% क्षेत्रफल घेरता है। इससे यह पता चलता है कि हमारे आम स्कूलों में वर्कशापों का स्थान कितना नगण्य है और हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि हम एकबारगी ही यह स्थिति बदल लेंगे। हमें दूसरी बात ध्यान में रखनी चाहिए, हमें वह बात ध्यान में रखनी चाहिए, जिसकी चर्चा लेनिन ने की थी कि हमारे पास जो थोड़ा-बहुत है, उसी का हमें उपयोग करना चाहिए। विद्युतीकरण के बारे में स्तेपानोव की पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा कि हमें हर बिजलीघर को एक तरह का तकनीकी प्रचार केंद्र बना देना चाहिए, उसे देश के विद्युतीकरण के बारे में ज्ञान के प्रसार का केंद्र बना देना चाहिए। करने को तो यह काम अभी हमने नहीं किया है, लेकिन हर ट्रैक्टर, हर कारखाने का – उस सब का जो हमारे जीवन में है, जो प्रविधि से संबंधित है और प्रविधि के काम के बारे में, मशीनों, औज़ारों के बारे में जानकारी देता है – उस सबका उपयोग करना चाहिए।

कोई एक ज़िला लीजिए। इस ज़िले में छोटी से छोटी चीज़ तक जो कुछ भी है उसका हमें उपयोग करना चाहिए: मोटरगाड़ी है, तो उसका उपयोग पोलीटेक्निकल शिक्षा की दृष्टि से करें, ट्रैक्टर है, तो ट्रैक्टर की सारी आंतरिक संरचना समझाने के लिए, यह दिखाने के लिए कि यह चीज़ क्या है, उसका उपयोग करें। हर रेलवे स्टेशन को हमें एक तरह का स्कूल बना देना चाहिए।

मार्क्स ने चक्की और घड़ी की तथा प्रविधि के इतिहास में इनकी भूमिका की चर्चा की थी।[5] पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए भी इनका उपयोग करना चाहिए।

मिसाल के लिए, वोल्गा के बिचले मैदान में बहुत सारी चक्कियां हैं। वहां इनका उपयोग करना चाहिए। इनके गिर्द बुनियादी पोलीटेक्निकल प्रचार करना चाहिए। आजकल प्रविधि देहातों में अधिकाधिक स्थान पा रही है। कहना न होगा कि हर मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन तकनीकी ज्ञान का प्रचार केंद्र होना चाहिए। यदि हम चारों ओर जो कुछ है, उसे ध्यान में रखें, हर उस चीज़ को ध्यान में रखें, जिसका स्कूल के लिए उपयोग किया जा सकता है, तो हम देखेंगे कि आज देहात में भी ऐसी बहुत-सी सामग्री है, जो बच्चों को आधुनिक प्रविधि

से परिचित कराने और इस प्रविधिं के विकास का पथ दिखाने के काम आ सकती है। हर फ़ैक्टरी का लाभ उठाया जाना चाहिए।

इधर कुछ दिन पहले मुझे एक कारख़ाने में जाने का मौका मिला ; कारखाने के पास ही सातवीं तक का एक स्कूल है। यह बिल्कुल कुदरती बात लगती है कि कारखाने की बची-खुची चीज़ें, टीन के टुकड़े, तार, वग़ैरह स्कूल की वर्कशाप में जायें, ताकि वहां इनके आधार पर बच्चों को मोटर की रचना समझाई जाये, लेकिन कारखाना स्कूल में कोई दिलचस्पी नहीं लेता। स्कूल में अगर उसकी कोई रुचि है, तो केवल इस दृष्टि से कि स्कूल की ज़मीन कारखाना पा सकता है या नहीं, वहां अपना कोई खाता खड़ा कर सकता है या नहीं। स्कूल में क्या होता है, वहां का पाठ्यक्रम क्या है, कैसा है, कैसे कारखाना स्कूल की मदद कर सकता है – इस सबसे कारखाने को कोई वास्ता नहीं है।

हमें कुछ ऐसा करना चाहिए कि कारखाने को स्कूल से वास्ता हो और स्कूल को कारखाने से। अभी तो ऐसे मामले बहुत कम देखने में आते हैं, जबकि कारखाने में स्कूल के पाठ्यक्रम पर विचार किया जाता हो, यह देखा जाता हो कि पोलीटेक्निकल शिक्षा की दृष्टि से पाठ्यक्रम ठीक बनाया गया है या नहीं। हम देखते हैं कि हमारे प्रतिष्ठान, हमारे अग्रणी कर्मी, जो उत्पादन को आगे बढ़ा रहे हैं, स्कूल की ओर ध्यान नहीं देते हैं। हम देखते हैं कि स्कूल के प्रश्नों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। हम ऐसी बातें देखते हैं: मास्को के एक स्कूल में वर्कशाप है, वहां पहले शिल्प सिखाये जाते थे, लेकिन अब चूंकि पोलीटेक्निकल रुख का फ़ैशन है, सो इस वर्कशाप का नाम भी पोलीटेक्निकल वर्कशाप रख दिया गया है, हालांकि इसके काम में कोई भी तब्दीली नहीं आई है। जब छात्रों से पूछा जाता है कि आप लोग यहां क्या करते हैं तो वे जवाब देते हैं कि पोलीटेक्निकल वर्कशाप में उनके दो पीरियड होते हैं, यही अच्छा है कि ये पीरियड आखिरी होते हैं, क्योंकि चुपके से खिसका जा सकता है और जो कोई खिसक सकता है, वह खिसक जाता है। मैंने पूछा कि इन पीरियडों का बाक़ी पढ़ाई के साथ कोई संबंध है कि नहीं, तो छात्रों ने जवाब दिया कि वर्कशाप में काम बाक़ी पढ़ाई के साथ किसी भी तरह संबंधित नहीं है। यदि मज़दूर स्कूलों में पोली-टेक्निकल शिक्षा लागू करने के काम में भाग लेते तो बेशक ऐसा न

होता। आवश्यकता इस बात की है कि स्कूलों के पाठ्यक्रमों पर मज़दूर सभाओं में विचार-विमर्श किया जाये। जब स्कूल कारखानों को अपने काम के बारे में बतायेंगे, जब मज़दूर वे आदर्श स्कूल देखने जाया करेंगे, जहां पोलीटेक्नकल शिक्षा स्पष्टतया दी जाती है, जब मज़दूर पाठों में जाया करेंगे, तभी उनमें इस काम के प्रति रुचि जागेगी।

अभी हाल ही में मैंने एक कारखाने में पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में रिपोर्ट पेश की। मज़दूरों ने कभी इसके बारे में सुना तक न था। इस सभा में शिक्षा-दीक्षा के बारे में बहुत कुछ कहा गया, सभी लोग बड़े जोश से बोले और लोगों की रुचि स्पष्टतः देखी जा सकती थी, लेकिन मैं यकीनन कह सकती हूं कि केवल कुछेक लोग ही पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रश्न में दिलचस्पी लेने लगे। यदि यहां ऐसी प्रदर्शनी होती जिसमें यह दिखाया जाता कि शिक्षा को कपड़ा उद्योग के साथ कैसे संबंधित किया जा सकता है, शिक्षा का उत्पादन के साथ संबंध दिखाया गया होता, तो रुचि अपार होती और अनगिनत मूल्यवान प्रस्ताव मिलते। ठोस कार्य दिखाकर जनसमूह को स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने के काम में प्रवृत्त करना चाहिए।

पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रचार कार्य जीवन से संबद्ध, यथार्थपरक होना चाहिए, जीवन के उदाहरण दिये जाने चाहिए, अमूर्त बातें नहीं, ठोस प्रश्नों पर विचार होना चाहिए।

यह बात न केवल कारखानों, बल्कि सामूहिक फ़ार्मों पर भी लागू होती है। यहां मैं यह याद दिलाना चाहूंगी: हमारी पार्टी के कार्यक्रम में जनशिक्षा परिषदों की चर्चा की गई है। ये परिषदें हैं मज़दूरों के प्रतिनिधियों की, स्कूल के इर्द-गिर्द स्थित उत्पादन प्रतिष्ठानों के मज़दूरों के प्रतिनिधियों की, जो पाठ्यक्रम की गहराई में जाते हैं, और जैसा कि सामूहिक फ़ार्म के एक किसान ने कहा: "अक्खर-अक्खर और मुद्दा-मुद्दा करके" उसका विश्लेषण करते हैं। जनसमूह को स्कूल के निकट लाकर ही हम पोलीटेक्निकल स्कूल बना पायेंगे।

जनशिक्षा के विषय पर पहली अखिल रूसी कांग्रेस में लेनिन ने कहा था कि "अब से हमारा स्कूल, दासता की बेड़ियों से मुक्त हुई अपनी जनता के साथ, समाजवाद के पथ पर आगे बढ़ेगा।" "दासता की बेड़ियों से मुक्त हुई जनता के साथ" – इसका अभिप्राय क्या है?

9-1000

इसका मतलब है मज़दूर वर्ग के साथ, मेहनतकशों के व्यापकतम जनसमूह के साथ स्कूल समाजवाद के पथ पर अग्रसर होगा।

आज मज़दूरों की पोलीटेक्निकल दृष्टि व्यापक करने का अर्थ यह है कि वह जनसमूह, जो अब स्कूल के प्रश्नों में रुचि लेगा, उस जन-समूह से भिन्न होगा, जो पहले था; अब वह पोलीटेक्निकल शिक्षा की समस्याओं को समझ पायेगा। इसका अपार महत्व है।

अब दूसरा प्रश्न लें। आप जानते हैं कि हमारा समाजवादी पुनर्निर्माण पूंजीवादी देशों में हो रहे आर्थिक कार्य से इस बात में भिन्न है कि हमारा निर्माण योजनाबद्ध है, पूंजीवादी देशों में जो प्रतिस्पर्द्धा है उसके सम्मुख हमारी पंचवर्षीय योजना का अपार सैद्धांतिक महत्व है। आज हम उत्तरी अमरीका, जर्मनी तथा अन्य अनेक बड़े देशों में फैले भयानक आर्थिक संकट के साक्षी हैं। यह वह संकट है, जो योजनाबद्धता न होने के कारण ही उत्पन्न होता है। पूरी अर्थव्यवस्था के विकास की एक पंचवर्षीय योजना बनाने का प्रश्न ही अपार महत्व रखता है।

कुदरती बात है कि ऐसा कोई नहीं समझता कि यह पंचवर्षीय योजना बनाना केवल योजना आयोग का काम है। हमें यह समझना चाहिए कि योजनाबद्धता का अर्थ यह है कि यह पंचवर्षीय योजना इस तरह बननी चाहिए, ताकि प्रत्येक आर्थिक संगठन अपना काम योजनाबद्ध ढंग से करे। इधर हम यह देख रहे हैं कि हर कारखाने तक, हर मशीन तक यह योजना पहुंचाई जा रही है और इससे मज़दूर वर्ग में कैसे विराट परिवर्तन आ रहे हैं। हम देखते हैं कि औद्योगिक-वित्तीय प्रतियोजना पेश की जा रही है।

इस औद्योगिक-वित्तीय प्रतियोजना का क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है कि योजनाबद्धता का विचार योजना आयोग के कार्यालय से हर मज़दूर तक पहुंचा है और यह औद्योगिक-वित्तीय प्रतियोजना जितनी अधिक व्यापक और विकसित होगी, उतनी ही अधिक गहराई से मज़दूर यह योजनाबद्धता समझेंगे। लेकिन यह सब इस बात से जुड़ा हुआ है कि मज़दूरों के व्यापक संस्तरों को इस योजनाबद्धता के अनेक तत्वों से परिचित कराना चाहिए। अपने स्कूलों को भी हमें इस तरह संगठित करना चाहिए कि उनका कार्य योजनाबद्ध ढंग से हो, ऐसे नहीं कि स्कूल की कार्यशाला में आये, कुछ काम किया

और बात ख़त्म। योजनाबद्धता का अर्थ पाठों की समय-सारिणी बनाना मात्र नहीं समझना चाहिए। बात समय-सारिणी की नहीं है, बल्कि यह है कि बच्चे स्वयं समझें कि वे क्या कर रहे हैं, किसलिए कर रहे हैं।

हम स्कूल छात्रों का व्यावहारिक कार्य मज़दूरों की, मेहनतकश जनसमूह की मदद से इस तरह संगठित करना चाहते हैं, ताकि वे स्कूल छात्रों में योजना बनाने की योग्यता विकसित करें, ताकि योजनाबद्धता स्कूल के रोम-रोम में व्याप्त हो जाये, तभी हम उदीयमान पीढ़ी का नये ढंग से चरित्र-निर्माण कर सकेंगे।

हमारे चारों ओर के जीवन में अभी भी पुराने तौर-तरीक़ों के अवशेष और पुरानी अनियोजितता बेहद है। उदाहरण के लिए कोई वर्कशाप बनाते हैं, उसपर ४५ हज़ार रूबल ख़र्च करते हैं, मगर अगले दिन इंजीनियर अधिक कारगर परियोजना पेश करता है और नई बनी वर्कशाप ढहा दी जाती है, ४५ हज़ार रूबल पानी में बह जाते हैं। ऐसी ग़लतियों का होना अभी तो अनिवार्य है।

लेकिन हमें अपना यह कार्यभार रखना चाहिए कि हमें ऐसी पीढ़ी शिक्षित करनी है, जिसे योजनाबद्ध ढंग से काम करना आता हो। यह कार्यभार स्कूली शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाने के कार्यभार के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, क्योंकि योजनाबद्ध कार्य के लिए निश्चित दृष्टि-परिधि, उत्पादन की निश्चित समझ अपेक्षित है।

इस सिलसिले में उत्पादन कार्य की योजनाबद्धता अपार महत्व रखती है।

एंगेल्स ने यह लिखा था कि नगर और देहात के बीच अंतर्विरोध केवल तभी मिटाये जा सकते हैं, जब पोलीटेक्निकल शिक्षाप्राप्त चहुंमुखी विकसित लोगों की नई पीढ़ी बनेगी। लेनिन ने भी 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल' शीर्षक अपने लेख में नगर और देहात के बीच अंतर्विरोध दूर करने की समस्या पर, जो पूंजीवादी समाज में श्रम-विभाजन का आधार है, ग़ौर किया था।

आज हम ऐसे क्षण से गुज़र रहे हैं, जबकि सामूहिकीकरण की बदौलत नगर और देहात के बीच ये अंतर्विरोध दूर हो रहे हैं। अब हम बिल्कुल नये रास्ते देख रहे हैं, हम देखते हैं कि देहातों में भी प्रविधि

के प्रश्नों में दूसरे ढंग से रुचि ली जाने लगी है। अब नगर और देहात का सामीप्य पहले से कहीं अधिक वास्तविक हो रहा है और ऐसा सामूहिकीकरण के, कृषि उत्पादन के मशीनीकरण के आधार पर हो रहा है। पहले मज़दूर किसी प्रचार ध्येय से देहात में जाता था और यह उस बात से बिल्कुल भिन्न था, जो आजकल हो रही है।

अब मज़दूर देहातों में जाते हैं, अपना उत्पादन अनुभव लेकर, अपना आंतरिक सचेतन अनुशासन, सामूहिक श्रम की अपनी आदत लेकर, जो कारखाने के सारे वातावरण से बनती है, अपना सर्वहारा संकल्प लेकर वे गांवों में जाते हैं। यदि आप अभी-अभी बना सामूहिक फ़ार्म लें और उसमें कल तक केवल अपने लिए काम करते रहे किसानों की मानसिकता की मज़दूरों की मानसिकता से तुलना करें, तो बहुत बड़ा अंतर पायेंगे। उदाहरण के लिए, मज़दूर कहता है: "यह क्या अजीब बात है, गाड़ी बरफ़ में खड़ी है, ट्रैक्टर बरफ़ में खड़ा है और फ़ार्म के किसान इसे अनदेखा करते हैं, कोई इसकी ओर ध्यान नहीं देता, जबकि ट्रैक्टर को यहां से हटाकर सायबान तले खड़ा करना कोई मुश्किल काम नहीं।" स्पष्ट है कि मज़दूर में सामाजिक संपत्ति की रक्षा की आदत बनी हुई है। वह समझता है कि ट्रैक्टर अपार महत्व रखता है, सामूहिक किसान अभी इसका आदी नहीं हुआ है, उसे अभी सामाजिक संपत्ति की रक्षा करने की आदत नहीं पड़ी है। हम देखते हैं कि किसान में अभी वह रवैया बन ही रहा है, जो सामूहिक खेती के लिए ज़रूरी है, अब कहीं उन सामूहिक फ़ार्मों में, जहां नये ढंग से श्रम का संगठन हो रहा है, सामूहिक कर्मी की, उत्पादन के स्वामी की मानसिकता बन रही है। इस सिलसिले में मज़दूरों का देहातों को भेजा जाना नगर और देहात के बीच अंतर्विरोध दूर करने के लिए नितांत महत्वपूर्ण है। अब देहात का पार्थक्य बहुत हद तक दूर हो रहा है और निस्संदेह हमारी स्कूली शिक्षा पर इसकी छाप पड़ रही है, यह छाप पड़े बिना रह ही नहीं सकती। अभी कुछ समय पहले तक ऐसी बातें सुनने में आती थीं: "हमारे यहां शहर में पोलीटेक्निकल स्कूल है, जबकि देहात में स्कूल का कृषि-विशेषीकरण होगा।" कृषि-विशेषीकरण तो ठीक है, लेकिन यह पिछड़ी कृषि के आधार पर नहीं हो सकता। यह पोलीटेक्निकल शिक्षा के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा होना चाहिए। अब

हम अधिक स्पष्टता से यह देख रहे हैं कि पार्टी के कार्यक्रम में एक समान स्कूली शिक्षा पद्धति के बारे में जो कहा गया है, उसका वास्ता शिक्षा की सामान्य दिशा, सामान्य सिद्धांतों से ही नहीं है, बल्कि इस बात से है कि नगर में भी और देहात में भी एक ही आधार पर पोलीटेक्निकल शिक्षा होनी चाहिए। आज नगर और देहात के बीच दूरी मिटने की जो प्रक्रिया हो रही है, वह अपार महत्व रखती है।

अब अगला प्रश्न लें। हमारा देश औद्योगिक देश बन रहा है। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ है कि हमारे बड़े नगरों में विशाल पैमाने पर उद्योगों का निर्माण होगा। इसका अर्थ यह भी है कि हमारे यहां कृषि का नये ढंग से निर्माण होगा, उसमें मशीनों का उपयोग होगा, साथ ही इसका अर्थ यह भी है कि परिवहन और संचार भी सभी कड़ियों को नये ढंग से जोड़ेंगे और प्रविधि की जितनी भी उपलब्धियां हैं, उनका इस क्षेत्र में भी उपयोग होगा।

हाल ही में मुझे जर्मनी के भूतपूर्व शिक्षा मंत्री बेक्कर की एक पुस्तक पढ़ने को मिली, जिसमें लेखक ने "संस्कृति के संकट"[6] की चर्चा की है। इस प्रश्न की प्रस्तुति रोचक है। सारतः चर्चा आम तौर पर संस्कृति के संकट की नहीं, बल्कि बुर्जुआ संस्कृति के संकट की है। बेक्कर ने बड़ी स्पष्टता से यह दिखाया है कि किस प्रकार संचार के क्षेत्र में प्रविधि की उपलब्धियां जनसमूह पर बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव क्षीण करती हैं। बेक्कर कहते हैं कि पहले देहात अलग-थलग इकाई हुआ करता था, वहां धार्मिक प्रचार किया जा सकता था, वहां लोगों से जो कहा जाता थे, वे उस पर विश्वास करते थे (बेशक, बेक्कर यह सब प्रच्छन्न रूप से कहते हैं), मगर अब वे रेडियो पर वह सब सुनते हैं, जो बड़े शहरों में कहा जाता है, देहात का पार्थक्य नहीं रहा और किसान हर कही-सुनी बात का विश्वास नहीं करते। पहले व्यक्तिगत प्रचार हो सकता था, लेकिन अब किसी एक व्यक्ति को संबोधित करते हुए भी तुम वस्तुतः समुदाय को संबोधित करते हो, जिस पर प्रभाव डालना आसान नहीं, सो, बेक्कर "संस्कृति के संकट" की चर्चा करते हैं।

औद्योगीकरण से संचार के क्षेत्र में एकदम नये क्षितिज खुलते हैं। वाक् सिनेमा, रेडियो – ये सब प्रविधि की नई उपलब्धियां हैं। हम

पूंजीवादी देशों से इन्हें लेते हैं, लेकिन हम उनका उपयोग बिल्कुल विपरीत ध्येयों के लिए करते हैं। हम इनका उपयोग इसलिए करते हैं ताकि समाजवादी संस्कृति की उपलब्धियां व्यापकतम जनसमूह में फैलाई जायें। यह इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार प्रविधि की उपलब्धियों का उपयोग समाजवाद के निर्माण के लिए होता है। लेकिन स्कूल के लिए हमने अपने सिनेमा और रेडियो का उपयोग करना अभी पर्याप्त हद तक नहीं सीखा है। केवल घर बैठे शिक्षा पानेवालों के लिए हमने रेडियो का उपयोग करना सीखा है। लेकिन यह सारा काम कहीं अधिक बड़े पैमाने पर होना चाहिए और तब हमारा स्कूल देहात में ऐसा "भूला-बिसरा" नहीं होगा, जैसा कि अब प्रायः होता है। रेडियो, सिनेमा की मदद से सभी सर्वश्रेष्ठ कर्मियों को, प्रविधि के जानकारों को समाजवादी चरित्र-निर्माण और पोलीटेक्निकल शिक्षा की सेवा में लगाया जा सकता है। हमने काम के इस पहलू की ओर अभी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। यह कार्यभार आज हमारे सामने है।

लेनिन जब सामान्यतः औद्योगीकरण की चर्चा करते थे, तो वे एक और क्षेत्र के पुनर्गठन की आवश्यकता की भी चर्चा करते थे, जिसे सामान्यतः आर्थिक कार्य का क्षेत्र माना ही नहीं जाता है – यह है गृहस्थी का कार्य। ऐसे बड़े नगरों के निर्माण के सिलसिले में, जिनमें जीवन के सभी क्षेत्रों में मशीनों का व्यापक उपयोग होगा, हमारे देश के जनमत का ध्यान इन प्रश्नों पर केंद्रित हुआ है। अब यह प्रश्न प्रस्तुत है कि सार्वजनिक भोजनालय बनाये जायें, मशीनों से सुसज्जित लांड्रियां खोली जायें, घर-गृहस्थी के सारे काम में मशीनों का उपयोग हो। आज जबकि महिला कर्मियों की मांग पैदा हुई है, यह प्रश्न बहुत गंभीर हो गया है। ...

... हमें सर्वश्रेष्ठ निर्माण-स्थलियों के अनुभव से लाभ उठाना चाहिए, ताकि नगर और देहात में अपनी सारी अर्थव्यवस्था को ढर्रे पर ला सकें। देहातों में सामूहिक फ़ार्म आंदोलन से भी रहन-सहन के यौक्तिकीकरण के लिए पूर्वाधार बनते हैं। यह बात हमारी स्कूली शिक्षा के लिए बहुत मानी रखती है। पहले बच्चे घर के बहुत-से छोटे-मोटे काम करते थे, इनमें वे बहुत समय गंवाते थे, घर से बंधे रहते थे और उनमें छोटे मिल्की की मनोवृत्ति बनती थी। अब सार्विक अनिवार्य शिक्षा लागू की जा रही

है और साथ ही स्कूल के सम्मुख दूसरे परिप्रेक्ष्य, दूसरी संभावनाएं प्रशस्त हो रही है।

आधुनिक प्रविधि स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने के द्वार खोलती है। हम देखते हैं कि अग्रणी मिलों-कारखानों में जो प्रविधि प्रयुक्त हो रही है, वह प्रविधि जिसे हम पश्चिम से ले रहे हैं, उसकी निश्चित प्रकृति है – वह शिल्प-कौशल की आवश्यकता प्रायः ख़त्म कर देती है। लेकिन यदि हम अपने कारखानों का साज़-सामान देखें, तो हम पायेंगे कि अभी भी बहुत सारा काम हाथों से होता है और इसके लिए शिल्प-अभ्यास की ज़रूरत है, जो बरसों के काम से आता है। बहुत से कारखानों में उत्पादन के एक भाग का ही मशीनीकरण हुआ है, लेकिन हमारा मशीनीकरण कार्य कारखानों को नवीनतम साज़-सामान से सुसज्जित करने की दिशा में हो रहा है। साज़-सामान में यह तबदीली बहुत मानी रखती है, क्योंकि मशीनीकरण के फलस्वरूप कामगर से अपेक्षित प्रशिक्षण का स्वरूप बदलता है, सर्वप्रथम काम सीखने की अवधि बदलती है।

इसकी चर्चा मार्क्स ने भी की थी कि अब बरसों तक एक काम सीखने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि कुछ महीनों या कुछ हफ़्तों में ही श्रम की कोई एक प्रक्रिया सीखी जा सकती है।

और फिर हम यह देखते हैं कि आधुनिक प्रविधि में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में एक ही तरह की मशीनें लगाई जाती हैं। पहली नज़र में अत्यंत भिन्न लगनेवाले उत्पादन कार्यों में बहुत अधिक समानता है। उत्पादन का मशीनीकरण ऐसा आधार बनाता है, जो विभिन्न उत्पादन कार्यों को एक दूसरे के निकट लाता है; विभिन्न उत्पादन प्रक्रियाओं के निकट आने से उत्पादन कार्यों में पहले जो पार्थक्य था वह मिटता जाता है।

बेशक अब शिक्षित मज़दूरों की भूमिका विशेषतः बढ़ गई है शिक्षित मज़दूर को श्रम की, आधुनिक तकनीकी श्रम की जानकारी होनी चाहिए, उसके तौर-तरीक़े आने चाहिए। आजकल हम देखते हैं कि हमारे यहां सोवियत रूस में ऐसे शिक्षित मज़दूर तैयार करने की एक तरह की प्रणाली बन गई है।

लेकिन इस प्रणाली से शिक्षित मज़दूर अपनी संकीर्ण विशेषज्ञता में, केवल उस काम से जो यंत्रवत उसे सिखाया गया है, जुड़ा होता है,

जबकि प्रविधि की प्रगति कल इस काम को अनावश्यक बना सकती है। सो, ऐसे मज़दूर को सारत: कोई कौशल प्राप्त नहीं होता और वह अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण में हाथ बंटाने के लिए कुछ भी नहीं कर सकता। यही कारण है कि सारा देश और सर्वप्रथम आर्थिक कार्यों के प्रबंधक इस बात में रुचि रखते हैं कि व्यापकतम जनसमूह को उत्पादन कार्यों के ये तौर-तरीक़े सिखाने के साथ उन्हें विस्तृत पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि से लैस किया जाये, उन्हें अपने ज्ञान का, अपनी दक्षता का विविधतम परिस्थितियों में उपयोग करना सिखाया जाये।

उधर नई प्रविधि साथ ही कुशल मज़दूर का स्वरूप भी बदलता है। पहले कुशल मज़दूर वह हुआ करता था, जो काफ़ी लंबी शागिर्दी से, बरसों तक किसी कारीगर से काम सीखते हुए अपने काम का निश्चित कौशल, निश्चित अभ्यास पाता था। अक्सर वह अपने इस कौशल के अलावा और कुछ भी नहीं जानता था, मामूली-सा भी हिसाब-किताब नहीं कर सकता था। पुराने राजगीर को लें, वह बरसों तक अपना काम सीखता था, लेकिन ज्यामिती का उसे बुनियादी ज्ञान तक नहीं होता था, इसलिए वह अपने काम से संबंधित मामूली-सा भी हिसाब-किताब नहीं कर सकता था। अब हमें बिल्कुल दूसरी तरह का कौशल चाहिए, जिसमें उत्पादक श्रम वैज्ञानिक ज्ञान के साथ जुड़ा हुआ हो।

लेकिन अकुशल मज़दूर को तकनीकी प्रशिक्षण देते हुए, उसे पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण प्रदान करते हुए हम अकुशल मज़दूर को कुशल मज़दूर के समीप लाते हैं। बुर्जुआ वर्ग की सारी नीति ही यह रही है कि वह फूट डालकर राज करता रहा है, वह यही कोशिश करता रहा है कि कुशल मज़दूरों की संख्या कहीं कम हो। यदि हम ट्रेड-यूनियनों के इतिहास को लें, तो पायेंगे कि बुर्जुआ वर्ग किस तरह कुशल मज़दूरों के साथ लल्लो-चप्पो करता रहा है, किस तरह उन्हें पूंजीवाद के सेवक बनाने की कोशिश करता रहा है। हमारे लिए सोवियत देश के मेहनतकश श्रम-शक्ति मात्र नहीं हैं, वे उत्पादन के स्वामी है, और हमें प्रविधि की उपलब्धियों का उपयोग इसलिए करना चाहिए, ताकि हम कुशल और अकुशल श्रम के बीच भेद न्यूनतम कर दें, अकुशल मज़दूर को कुशल मज़दूर के समीप लायें।

बेशक, इससे उत्पादन के विकास के कहीं अधिक अवसर मिलेंगे, इस बात के अवसर मिलेंगे कि हर कोई अपनी योग्यता और रुझान के अनुसार उस स्थान पर काम करे, जिसके लिए वह सर्वाधिक उपयुक्त है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसे हल किये बिना समाजवाद के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती, यह वह समस्या है जो देश की अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण ने हमारे सामने रखी है और आगे बढ़ने के साथ-साथ यह दिशा और भी अधिक स्पष्ट होती जायेगी। पोलीटेक्निकल स्कूल चहुंमुखी विकसित लोगों की पीढ़ी बनाने में सहायता करेगा, इन सभी लोगों को बचपन से ही समाजवाद का निर्माता बनायेगा। हमारे यहां इस साल से सार्विक अनिवार्य शिक्षा शुरू हो रही है। समय के साथ-साथ अधिक ही अधिक आयु के लोगों पर यह लागू होगी और इस तरह हम पोलीटेक्निकल स्कूल के ज़रिए चहुंमुखी विकसित लोग बनाना चाहते हैं, जो मेहनतकशों का ऐक्यबद्ध संगठन होंगे।

आधुनिक प्रविधि की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए हर प्रबंधक को हमारी पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के निर्माण में सहयोग देने की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए।

... मेरी रिपोर्ट का प्रयोजन इस बात पर ज़ोर देना था कि मज़दूर जनसमूह, इस जनसमूह के साथ अभिन्न रूप से संबद्ध ट्रेड-यूनियनें और प्रबंधक, जो क्षण भर को भी यह नहीं भूल सकते हैं कि उनका काम सोवियत देश में हो रहा है कि यह पुनर्निर्माण का काम है, जिसका स्वरूप स्पष्टतः समाजवादी है – इन सबको सारी शिक्षा पद्धति को उसके सभी चरणों में पोलीटेक्निकल बनाने के काम में सीधे-सीधे भाग लेना चाहिए। इस काम का महत्व अपार है।

आज हम अपने तकनीकी विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों में भी उन्हें उत्पादन के निकट लाने के मार्ग पर काम कर रहे हैं। हम इनमें निरंतर उत्पादन अभ्यास लागू कर रहे हैं, लेकिन यदि हम करीब से देखें, तो हमें मानना पड़ेगा कि ये केवल पहले क़दम ही हैं। इस सारे अभ्यास को, व्यावहारिक कार्य को सिद्धांत के साथ जोड़ते हुए सर्वाधिक कारगर ढंग से आयोजित करना चाहिए। यदि यहां मज़दूर, ट्रेड-यूनियनें और प्रबंधक इस बात के लिए मिलकर काम नहीं करेंगे कि यह व्यावहारिक कार्य पोलीटेक्निकल दृष्टि से सोच-विचारकर आयोजित

किया गया हो, यदि तकनीकी विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों में भी युवाजन की शिक्षा-दीक्षा का पोलीटेक्निकल आधार नहीं बनाया जायेगा, तो हम इस मोर्चे पर बहुत देर तक गच्चे खाने के बाद ही उस रास्ते पर पहुंच पायेंगे, जो हमें समाजवादी पुनर्निर्माण पूरा करने का अवसर प्रदान करेगा।

ख़ेदवश इस कांग्रेस में प्रबंधकर्मी थोड़ी संख्या में ही हैं, जबकि शिक्षा-पद्धति को पोलीटेक्निकल बनाने का कार्य उनके लिए जीवंत हित का कार्य है। मज़दूरों में आजकल समाजवादी प्रतियोगिता के सिलसिले में जो विराट कार्य हो रहा है, उसके फलस्वरूप उनमें पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रति रुचि बढ़ी है। मेरे ख़्याल में कांग्रेस में आगे के विचार-विमर्श में हमें अधिक व्यावहारिक प्रश्नों पर ग़ौर करना चाहिए।

समापन भाषण

साथियो, पिछले अप्रैल के अंत में मास्को में जनशिक्षा पर दूसरा पार्टी सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि सांस्कृतिक मोर्चे पर अनेक संगठनों के लिए कंधे से कंधा मिलाकर काम करना आवश्यक है, कि इस काम की एकीकृत योजना होनी आवश्यक है। मैं सोचती हूं कि पोलीटेक्निकल शिक्षा के क्षेत्र में भी ठीक इसी तरह एक एकीकृत योजना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि हर ऐसा संगठन, जिसने पोलीटेक्निकल शिक्षा के महत्व को समझ लिया है, अपने सम्मुख स्पष्टया यह प्रश्न रखे कि वह पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए क्या कर सकता है, और अपनी योजना को दूसरे संगठनों की योजना के साथ जोड़े। हमारे यहां बहुत-से ऐसे स्वैच्छिक सार्वजनिक संगठन हैं, जो पोलीटेक्निकल शिक्षा के हित के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं।

यहां 'जनसमूह के लिए प्रविधि'[7] संगठन के एक साथी ने भाषण दिया। मैंने भी इस संगठन में काम किया है और मैं जानती हूं कि तब (उन दिनों यह संगठन बना ही बना था) यह स्कूलों की कोई ख़ास मदद नहीं करता था। संगठन का ध्यान मुख्यतः पाठ्यक्रम आयोजित

करने पर ही था, जो बहुत शीघ्र ही उच्च शिक्षा संस्थानों में दाख़िले की तैयारी के पाठ्यक्रम बन गये। कहना न होगा कि कोमसोमोल को इस संगठन की ओर बिल्कुल भिन्न रुख अपनाना चाहिए, इसे अधिक समर्थन देना चाहिए और तब यह संगठन अपनी व्यापक इंजीनियरी शक्ति का प्रयोग करते हुए पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए बहुत कुछ कर सकेगा। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक है कि इस संगठन का अपना सुस्पष्ट कार्यक्रम हो।

यहां 'अव्तोदोर' संगठन[8] की ओर से भी अभिवादन संदेश हमने सुना है। यह संगठन पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए क्या कर सकता है? आख़िर यह कह देना ही तो काफ़ी नहीं: "हां, पोलीटेक्निकल शिक्षा बहुत अच्छा काम है।" लेकिन यह संगठन क्या कर सकता है, किस तरह वह मोटरगाड़ियों पर छात्रों को लाने-ले जाने का प्रबंध कर सकता है, किस तरह वह मोटरगाड़ी की मदद से पोलीटेक्निकल शिक्षा पर चलती-फिरती प्रदर्शनी आयोजित कर सकता है, किस तरह वह हर स्कूल में हर मोटरगाड़ी की रचना समझाने का काम कर सकता है – यही बात मानी रखती है। इस सिलसिले में यह संगठन एक पूरा कार्यक्रम तैयार कर सकता है, ऐसा कार्यक्रम जिसे पूरा करना संभव हो और अपने संगठन की पूरी शक्ति इसके क्रियान्वयन में लगा सकता है। यदि हर कोई अकेले-अकेले काम करेगा, तो चाहे कितनी भी अच्छी-अच्छी बातें क्यों न कही जायें, काम कुछ नहीं होगा।

... उत्पादन-प्रचार के संबंध में लेनिन ने जो प्रस्थापनाएं लिखीं, उनमें एक मुद्दा यह है कि निरक्षरता उन्मूलन का संबंध उत्पादन-प्रचार से जोड़ना चाहिए। महीने भर बाद 'निरक्षरता उन्मूलन समाज'[9] की कांग्रेस होने जा रही है। इस कांग्रेस में यह सवाल उठाया जाना चाहिए कि हर निरक्षरता उन्मूलन केंद्र उत्पादन-प्रचार से जुड़ा हो, और साथ ही हर केंद्र में, जहां मुख्यतः स्त्रियां ही शिक्षा पाती हैं, यह समझाया जाये कि पोलीटेक्निकल शिक्षा क्या है और हर कामगारिन, हर किसान स्त्री इसके लिए क्या कर सकती है। यदि हम 'निरक्षरता उन्मूलन समाज' के ज़रिए यह काम आयोजित करेंगे, तो निस्संदेह काफ़ी प्रगति होगी। लेकिन यह भी ज़रूरी है कि हर संगठन दूसरे संगठनों से स्वतंत्र रूप से काम न करे, बल्कि सबके लिए एक आम

योजना हो। इसका महत्व अपार है। यहां यह कहा जाना चाहिए कि पोलीटेक्निकल शिक्षा के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना शेष है, अध्यापन विधि संबंधी अनेक कार्यभार हैं, अनेक शैक्षिक कार्यभार हैं कि कैसे किसी प्रश्न को निरूपित किया जाये, और यहां मार्क्सवादी शिक्षक समाज को[10] विशाल कार्य करना चाहिए। यह आवश्यक है कि इस समाज में पोलीटेक्निकल शिक्षा का विभाग हो, जो वैज्ञानिक संस्थानों पर आधारित हो – जिनसे नई-नई विधियों के बारे में परामर्श मिला करें। इस काम में उपलब्धियों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाना चाहिए। ...

...व्यावहारिक कार्य में सदा अनगिनत कठिनाइयां सामने आती हैं, न केवल संगठनात्मक, बल्कि विधि संबंधी भी।

लेनिनग्राद में मुझे एक आदर्श स्कूल देखने का अवसर मिला, जहां शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। वहां कारखाने के एक मज़दूर को काम के लिए बुलाया गया, लेकिन किसी ने अध्यापन विधि के सिलसिले में उसकी कोई मदद नहीं की, किसी ने उसे यह नहीं बताया कि उसे करना क्या है। उसे छात्रों को शिक्षा देने के लिए बुलाया गया, सामग्री दे दी गई और बस बात ख़त्म। वह छात्रों को नट-बोल्ट बनाना सिखाने लगा, जैसे कि वह स्वयं कारखाने में बनाता था।

इस विशाल कार्य का, पोलीटेक्निकल शिक्षा से जुड़े अध्यापन विधि संबंधी प्रश्नों को पेश करने का दायित्व मार्क्सवादी शिक्षक समाज पर पड़ना चाहिए। ठीक इसी तरह हमारे यहां कई अनुसंधान संस्थान भी हैं, जो रोचक कार्य कर रहे हैं... जैसे कि स्कूली कार्य की विधियों का संस्थान।[11] इस संस्थान में स्कूलों के पाठ्यक्रमों के प्रश्नों पर, पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रश्नों पर अनेक सम्मेलन हुए हैं। लेकिन बात यही नहीं है, बात यह है कि कैसे इस अनुभव को ध्यान में रखा जाता है, इसे एक समग्र रूप में जोड़ा जाता है। यदि हम स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने की दिशा में हमारे देश में अब तक जो कुछ हुआ है उसे लें, तो हम जानते हैं कि हमारे प्रायोगिक स्कूलों में १९१८-१९१९ में और १९२० में भी रोचक कार्य किया गया था। बहुत-से स्कूलों का काम आगे चलकर पहले जितना अच्छा नहीं रह गया। बेशक, अनुभव हमारे

पास है, लेकिन यह अनुभव विकसित हो रहा है। कुछ स्कूलों को पोलीटेक्निकल शिक्षा का अनुपम अनुभव है, लेकिन इस अनुभव को ध्यान में रखना चाहिए, इसका सामान्यीकरण करना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि यह अनुभव एक स्कूल का नहीं, पूरे देश का अनुभव हो। भांति-भांति की प्रदर्शनियां, निस्संदेह, इसमें बहुत सहायक हैं।

...हाल ही में अध्यापन प्रशिक्षण के विशेष माध्यमिक विद्यालयों पर सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में कहा गया कि आवश्यकता इस बात की है कि हर ज़िले का ऐसा विद्यालय एक केंद्र हो, जो संगठनात्मक कार्य में अपने ज़िले के शिक्षकों की सहायता करे। हमारे यहां न केवल अध्यापन प्रशिक्षण के, बल्कि औद्योगिक और कृषि विद्यालय भी हैं। इन सब विशेष माध्यमिक विद्यालयों को पोलीटेक्निकल शिक्षा की सेवा में लगाया जाना चाहिए। इनका काम उस सामान्य कार्य के साथ समन्वित होना चाहिए, जो इस दिशा में किया जा रहा है।

औद्योगिक विद्यालय को लीजिये, इसका काम विद्यालय की चहारदीवारी तक सीमित नहीं हो सकता। इसके छात्रों के लिए उत्पादन कार्य का अर्थ न केवल फ़ैक्टरी-कारखाने में काम है, बल्कि व्यापकतम जनसमूह में तकनीकी ज्ञान, देश के औद्योगीकरण के बारे में ज्ञान प्रसारित करना भी। औद्योगिक विद्यालय के हर छात्र को यह आभास होना चाहिए कि वह अर्थव्यवस्था के समाजवादी पुनर्गठन का प्रचारक है, उसे यह समझना चाहिए कि वह पोलीटेक्निकल शिक्षा का कर्मी भी है।

ठीक इसी तरह कृषि विद्यालय के छात्रों के सम्मुख कृषि के सामूहिकीकरण और मशीनीकरण के प्रचार का विशाल कार्यभार है। हम देखते हैं कि स्वयं जीवन ही हमारे इन विद्यालयों को इस बात के लिए प्रेरित कर रहा है कि वे प्रविधि और कृषि के क्षेत्र में कार्य करें। यहां आवश्यकता इस बात की है कि हर विद्यालय प्रचार केंद्र हो। उच्च शिक्षा संस्थानों के बारे में तो और भी अधिक कहा जा सकता है। ...

हो सकता है पिछले दिनों इस दिशा में आगे क़दम बढ़ाया गया हो, लेकिन मेरे ख़याल में अभी भी बहुत कुछ पुराने ढंग से हो रहा है। हमारे औद्योगिक संस्थान क्या औद्योगिक विद्यालयों, फ़ैक्टरी-कारखाना स्कूलों की चिंता करते हैं? कुछ साल पहले मैं मास्को के टैक्सटाइल इंस्टीट्यूट में गई। वहां मैंने पूछा: "आपका टैक्सटाइल मिलों के स्कूलों

के साथ क्या संबंध है? मास्को में तो ऐसे कई स्कूल हैं न?" जवाब मिला: "कोई संबंध नहीं है।" जब मैंने पूछा कि टैक्सटाइल के क्षेत्र में विशेष माध्यमिक शिक्षा देनेवाले विद्यालयों के साथ क्या संबंध है, तो इसका भी वही जवाब मिला। यह स्थिति किसी काम की नहीं है। यदि हम एकीकृत योजना की बात करते हैं, तो हमें अपने प्रत्येक प्रतिष्ठान, उच्च शिक्षा संस्थान, तकनीकी विद्यालय, क्लब, स्कूल को—उस सबको, जो संस्कृति के क्षेत्र में हमारे पास है, औद्योगीकरण की, स्कूल को पोलीटेक्निकल बनाने का कार्य की सेवा में लगा देना चाहिए, तभी हम अल्पतम अवधि में अच्छे परिणाम पा सकेंगे, वरना हम बड़ी देर तक लुढ़कते-पुढ़कते रहेंगे और व्यर्थ ही शक्ति गंवायेंगे।

...इसमें कोई संदेह नहीं है कि जनसाधारण में पुस्तकों के प्रति, तकनीकी और पोलीटेक्निकल साहित्य के प्रति गहरी रुचि जाग रही है। सो आज आवश्यकता इस बात की है कि देश के दूर-दराज़ के इलाक़ों में, सर्वप्रथम सामूहिक फ़ार्मों और देहातों में हम बड़ी संख्या में पुस्तकें पहुंचायें।

अब इस प्रश्न को लें कि पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने में क्या ख़तरा निहित है?

पहला ख़तरा यह है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा कुछ कार्यों का संकीर्ण कौशल पाने तक सीमित होकर रह जायेगी, कि हमारे यहां **व्यवहार आवश्यक रूप से सिद्धांत के साथ जुड़ा नहीं होगा**। यह बहुत बड़ा ख़तरा है। हमारे यहां अक्सर शिल्प शिक्षा तक सीमित होना देखा जाता है। इसके कई उदाहरण मिलते हैं।

किस्लोवोद्स्क शहर के पास एक अनाथालय है, इसे पोलीटेक्निकल स्कूल घोषित किया गया है। तो यहां एक कमरा है, दरवाज़े पर लिखा है: 'बुनाई कार्यशाला'। इस बुनाई कार्यशाला में छात्राएं—इस अनाथालय की बच्चियां खड़ी हैं—और सलाइयां लेकर जुराबें बुन रही हैं, कोई बुढ़िया बैठी उन्हें यह काम सिखा रही है। सारा काम इस तरह हो रहा है कि यहां प्रविधि की तकनीक की बू तक नहीं आती—बाबा आदम के ज़माने में जैसे जुराबें बुननी सिखाई जाती थीं, वैसे ही अब भी यह काम सिखाया जा रहा है। या सिलाई कार्यशाला है, तो उसमें

सिलाई मशीन तक नहीं है। जबकि सभी कार्यशालाएं "पोलीटेक्निकल" कहलाती हैं – सारतः वे शिल्प कार्यशालाएं ही हैं। शिल्प सिखाने तक ही सीमित रह जाना बहुत बड़ा ख़तरा है।

यदि कोई स्कूल, कोई कार्यशाला पोलीटेक्निकल कहलाते हैं, तो सबसे पहले यह पूछो कि किस प्रकार यहां **श्रम-शिक्षा दूसरे विषयों की शिक्षा के साथ संबद्ध है।** यह वह कसौटी है, जिस पर यह परखा जा सकता है कि यह पोलीटेक्निकल शिक्षा है अथवा शिल्प शिक्षा या फिर उससे भी गई-गुज़री बात – औज़ारों के साथ निरुद्देश्य कार्य।

दूसरा प्रमुख प्रश्न है **उत्पादक श्रम का** प्रश्न। सदा यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम केवल श्रम का अध्ययन नहीं करते हैं, कि हमारी कार्यशालाएं ऐसे स्थान मात्र न हों, जहां "श्रम-सुलेख" का अभ्यास किया जाता है, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि कार्यशालाओं में जो कुछ किया जाता है, उसका वाकई उत्पादन से कोई संबंध हो। जैसे कि कपड़ा मिल के पास कोई स्कूल है और उसमें कार्यशाला है, तो यह आवश्यक है कि इस कार्यशाला का मिल के सारे उत्पादन कार्य के साथ कोई संबंध हो। बात केवल यह नहीं होनी चाहिए कि मिल में पोलीटेक्निकल प्रचार केंद्र हो, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि यह कार्यशाला किसी तरह उत्पादन से संलग्न हो। कार्यशालाओं की योजना कैसे बनाई जाती हैं? आम तौर पर हम यह काम घिसे-पिटे ढर्रे के अनुसार करते हैं। कल-कारखाना चाहे जैसा भी हो – काग़ज़ बनानेवाला या कपड़ा बनानेवाला – बढ़ईगिरी का, ख़रादी और टर्नर का बुनियादी काम सीखो। बेशक ख़रादी और टर्नर के काम की हर मिल-कारखाने में ज़रूरत है, लेकिन इस सब का आम तौर पर उत्पादक श्रम के साथ कोई संबंध नहीं होता है, महज़ अभ्यास के लिए किया जाता है, और तब छात्रों के लिए यह बोझिल और नीरस हो जाता है। यदि काम का प्रबंध इस तरह हो कि कोई छोटा-सा, मामूली-सा ही, लेकिन प्रतिष्ठान के लिए आवश्यक काम स्कूल में किया जायेगा, तो इससे सारी बात बदल जाती है – यही पोलीटेक्निकल शिक्षा का मर्म है। मार्क्स ने श्रम-अभ्यासों को शिक्षा के साथ जोड़ने की बात नहीं कही थी। उन्होंने कहा था कि शिक्षा उत्पादक श्रम के साथ जुड़ी होनी चाहिए, सो हमें यह सोचना-विचारना चाहिए कि कार्यशालाएं किस प्रकार बनायें,

ताकि उनका उत्पादन-कार्य के साथ अभिन्न संबंध हो। उदाहरण के लिए : कच्चे माल को परखना और तैयार माल की जांच करना। हो सकता है, इसमें बहुत-सा काम स्कूल को सौंपा जा सकता हो। फिर एसेंबली वर्कशाप लें। इस सिलसिले में अमरीका से कुछ सीखना बुरा न होगा। फ़ोर्ड ने अपनी स्कूल वर्कशापों में – वे पोलीटेक्निकल हैं – एसेंबली और मॉडल खाते बनाये हैं, इनसे मशीन के बारे में समग्र जानकारी मिलती है ; और स्कूल वर्कशाप में जो कुछ भी बनाया जाता है वह कहीं तहख़ाने में नहीं डाल दिया जाता, न ही छात्र उसे ले जाते हैं, वह सब कारखाने को भेजा जाता है, वहां उसका मूल्यांकन होता है और फिर कारखाने के माल के नाम से बेचा जाता है।

कहना न होगा कि हमें फ़ोर्ड के यहां श्रम का जो संगठन है उसकी नक़ल करने की कोई ज़रूरत नहीं, वहां तो हर कोई अपनी चिंता करता है, हर छात्र अपने फ़ायदे के लिए काम करता है, सामूहिक कार्य का पूर्ण अभाव है। लेकिन स्वयं जीवन की, उत्पादन की मांग को देखते हुए फ़ोर्ड को ऐसी वर्कशापें बनवानी पड़ती हैं, जिनमें श्रम वास्तव में उत्पादक श्रम हो।

और यह एक ऐसा विशाल कार्यभार है, जिसे शिक्षा जन-कमिसारियत अकेला पूरा करने में असमर्थ है, जिसे वह केवल मज़दूरों की मदद से, ट्रेड-यूनियनों और प्रबंधकों की मदद से पूरा कर सकता है। इसी लिए जब शिक्षा जन-कमिसारियत की आलोचना की जाती है कि उसने पोलीटेक्निकल शिक्षा के पाठ्यक्रम नहीं बनाये हैं, तो इस आलोचना से मैं काफ़ी उदासीन ही रहती हूं, क्योंकि दफ़्तर के कमरे में बैठकर ऐसी कार्यशालाओं, वर्कशापों की योजना बनाना, जो अपने रोम-रोम से उत्पादन के साथ जुड़ी होनी चाहिए, निरर्थक कार्य होगा। लेकिन अब हम ऐसे क्षण पर आ रहे हैं, जबकि मज़दूर इसमें गंभीरतापूर्वक रुचि लेने लगे हैं। मैं सोचती हूं कि कल प्रबंधक भी इसमें दिलचस्पी लेने लगेंगे और शिक्षा जन-कमिसारियत को मज़दूरों और ट्रेड-यनियनों से, कारखानों और सामूहिक फ़ार्मों में कुछ सीखना होगा, ताकि वह सही पोलीटेक्निकल पाठ्यक्रम बनाने में मदद करना सीख पाये।

हमें बच्चे की शक्ति का पता होना चाहिए। अक्सर पोलीटेक्निकल स्कूल बनाने के अपने जोश में बच्चे की शक्ति को ध्यान में नहीं रखते

और मिसाल के लिए, जब सामूहिक फ़ार्मों में बच्चे आठ साल की उम्र मे ही काफ़ी कठिन कार्य में लगाये जाते हैं, हम वाह-वाही करते हैं। ... बाल-श्रम की रक्षा के प्रश्नों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है और स्कूलों में भी कभी-कभी श्रम की योजना ऐसे बनाई जाती है कि बच्चों को बस आये दिन खेत की रखवाली करनी होती है – ऐसा नीरस, अनुत्पादक कार्य, जो श्रम की आदत डालने के बजाय वितृष्णा ही पैदा करता है।

अक्सर हम किशोरों को उनकी सामर्थ्य से परे का काम सौंपकर उनकी शक्ति का ह्रास करते हैं, हम विकसित हो रहे शरीर की विशिष्ट-ताओं को ध्यान में नहीं रखते हैं। उस प्रतियोगिता में जो वयस्कों के लिए उपयुक्त है, हम पूरी तरह और उसी तरह, यह सोचे बिना कि किशोरों के लिए और कौन-से रूप उपयुक्त हो सकते हैं, किशोरों को प्रवृत्त कर देते हैं और इस तरह उन्हें अत्यधिक तंत्रिका-तंत्रीय विश्रांति होती है। ग़रीब किसानों के बच्चों को देखिये, जो बचपन से ही घोर परिश्रम करते हैं, उनका शारीरिक विकास कितना धीमा होता है। पुराने ज़माने में ऐसे मज़दूर देखने को मिलते थे, जो छोटी उम्र से ही, दसेक वर्ष की आयु से ही फ़ैक्टरी में काम कर रहे होते थे, उनका शारीरिक विकास कितना क्षीण होता था और मानसिक विकास में भी वे पिछड़े होते थे। यदि हम अपने बच्चों को छोटी उम्र से ही भारी श्रम में जोतने लगेंगे, उनकी शक्ति का ध्यान रखे बिना उन्हें श्रम-प्रतियोगिता में प्रवृत्त करेंगे, तो इससे कोई लाभ नहीं होगा, हानि ही होगी। इस मामले में बड़ी सूझ-बूझ का रुख अपनाना चाहिए, बच्चे की शक्ति की रक्षा करनी चाहिए, उसकी बाल-सामर्थ्य को ध्यान में रखना चाहिए। यह बात हम अक्सर भूल जाते हैं।

हमने कारखाने में काम की चर्चा की थी और मुझे ऐसा सुनने को मिला कि १२ साल की उम्र से ही बच्चों को कारखाने में काम करने भेजना चाहते हैं। इसका विरोध करने पर, कानून का हवाला देने पर जवाब मिलता है कि "वे कोई ४-४ घंटे थोड़े ही काम करेंगे, यही कोई हफ़्ते में एक बार", इत्यादि।

अच्छी तरह यह समझना चाहिए कि बच्चा क्या कर सकता है, क्या नहीं। कारखाना देखने जाना, वहां कोई छोटा-मोटा काम करना

10-1000

एक बात है, लेकिन आधुनिक प्रविधि जिस तनावपूर्ण काम की अपेक्षा करती है, वह आये दिन करना बिल्कुल दूसरी बात। यदि आप बच्चे को ऐसे कन्वेयर के पास खड़ा कर देंगे, जहां दम लेने की फ़ुरसत नहीं होती, तो उसकी शक्ति की जड़ खोद देंगे।

लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि हम स्कूल-पूर्व आयु तक में पोलीटेक्निकल शिक्षा के ध्येय को नज़रंदाज़ करते हैं। हमें रुचि जगानी चाहिए, बिल्कुल छोटी उम्र से ही बच्चों को काम करना, मिल-जुलकर परिश्रम करना सिखाना चाहिए। श्रम-संगठन के प्रश्न में ही बहुत हद तक सामूहिक श्रम का प्रश्न भी आता है, क्योंकि हम मात्र श्रम करना, मेहनती बनना नहीं सिखाते हैं, बल्कि सामूहिक रूप से, योजनाबद्ध और सचेतन ढंग से श्रम करना सिखाते हैं। आप देख रहे हैं कि अभी हमारे सम्मुख कैसे विराट कार्यभार हैं। मेरे विचार में आज सारा वातावरण पोलीटेक्निकल शिक्षा में जो रुचि जगा रहा है, वह इस बात का साक्षी है कि यह काम सही दिशा में बढ़ रहा है।

१६३०

पोलीटेक्निकल शिक्षा संबंधी क़ानून के संदर्भ में कुछ विचार[1]

अर्थव्यवस्था के समाजवादी पुनर्निर्माण का आधार है खेतीबारी करने और उत्पादों का संसाधन करने की पिछड़ी, आदिम विधियों के स्थान पर विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धियों पर आधारित आधुनिक विधियां लागू करना। विशाल इलाक़े में फैले, मशीनों से काम लेनेवाले बड़े-बड़े फ़ार्म इतने लाभदायक हैं कि वे छोटी-छोटी निजी खेतियों का स्थान ले लेते हैं, ठीक वैसे ही जैसे बड़ी फ़ैक्टरियां और कारखाने कारीगरों के घरेलू श्रम का स्थान लेते हैं। बड़े फ़ार्मों, फ़ैक्टरियों और कारखानों में विशाल कर्मीवृंदों को योजनानुसार संगठित करने की आवश्यकता होती है। आधुनिक कारखाने में हम ऐसे संगठन का सुस्पष्ट चित्र पाते हैं। इसमें सारी उत्पादन प्रक्रिया कतिपय उत्पादन कड़ियों (कारखाने के खातों में) बंटी होती है, जिनमें से प्रत्येक के लिए उसकी मशीनों और साज़-सामान को देखते हुए कर्मी चुनने, उन्हें विशेषतः प्रशिक्षित करने की आवश्यकता होती है। मार्क्स ने 'पूंजी' के खंड १ में लिखा है कि श्रम की उत्पादनशीलता बढ़ाने की चेष्टा में बड़े उत्पादन की प्रत्येक प्रक्रिया को उसके घटकों में विघटित करने की कोशिश की जाती है। प्रक्रिया के एक अंश की पूर्ति के लिए विशेष व्यावसायिक प्रशिक्षण की ज़रूरत नहीं रही। उत्पादन प्रक्रियाओं को उनके घटकों में विघटित करने के फलस्वरूप वैज्ञानिक टेक्नोलोजी संभव हुई। वैज्ञानिक टेक्नोलोजी उत्पादन की सभी प्रक्रियाओं के लिए विज्ञान की जानकारी प्रयुक्त करती है और इस

तरह इन प्रश्नों में एकता लाती है, इन्हें निरंतर परिवर्तित करती है। मार्क्स लिखते हैं: "आधुनिक उद्योग मशीनों, रासायनिक क्रियाओं तथा अन्य तरीकों के द्वारा न केवल उत्पादन के प्राविधिक आधार में, बल्कि मज़दूर के कार्यों और श्रम-प्रक्रिया के सामाजिक संयोजनों में भी लगातार तबदीलियां कर रहा है। साथ ही वह इस तरह समाज में पाये जानेवाले श्रम-विभाजन में भी क्रांति पैदा कर देता है और पूंजी की राशियों को तथा मज़दूरों के समूहों को उत्पादन की एक शाखा से दूसरी शाखा में निरंतर स्थानांतरित करता रहता है। लेकिन इसलिए आधुनिक उद्योग ख़ुद अपने स्वरूप के कारण श्रम के निरंतर परिवर्तन, काम के रूप में लगातर तबदीली और मज़दूरों में सार्वत्रिक गतिशीलता को ज़रूरी बना देता है।"[2] आगे वे कहते हैं: "आधुनिक उद्योग जिन विपत्तियों को ढाता है, उनके द्वारा वह सबसे यह मनवा लेता है कि काम में बराबर परिवर्तन होते रहना और इसलिए मज़दूर में विविध प्रकार के काम करने की योग्यता का होना तथा इस कारण उसकी विभिन्न प्रकार की क्षमताओं का अधिक से अधिक विकास होना उत्पादन का एक मौलिक नियम है। उत्पादन की प्रणाली को इस नियम के सामान्य कार्य के अनुकूल बनाने का सवाल समाज की ज़िंदगी और मौत का सवाल बन जाता है।"[3] थोडी आगे चलकर मार्क्स इस बात की आवश्यकता की चर्चा करते है कि इनसान को "एक पूर्णतया विकसित ऐसे व्यक्ति में बदल दे, जो अनेक प्रकार का श्रम करने की योग्यता रखता हो, जो उत्पादन में होनेवाले किसी भी परिवर्तन के लिए तैयार हो ...।"[4]

'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' में कहा गया है कि विभिन्न आयु के अनुसार कार्य अवधि का सख़्ती से नियमन करते हुए और बच्चों की रक्षा के उद्देश्य दूसरी सावधानियां बरतते हुए अल्पायु में ही शिक्षा के साथ उत्पादक श्रम को जोड़ा जाना आधुनिक समाज के कायाकल्प का एक प्रबल साधन है।

'पूंजी' में मार्क्स ने भविष्य की शिक्षा-दीक्षा की चर्चा की है, जिसमें एक निश्चित आयु के ऊपर के **सभी** बच्चों के लिए उत्पादक श्रम-शिक्षा और जिम्नास्टिक के साथ जुड़ा होगा और यह न केवल सामाजिक "उत्पादन की कार्य-क्षमता को बढ़ाने का एक तरीका है",

बल्कि "इसलिए भी कि पूरी तरह विकसित मानव के उत्पादन का यह एकमात्र तरीका है"।[5]

कृषि के पुनर्गठन के लिए, बड़े-बड़े कृषि फ़ार्म बनाने के लिए भी इसी तरह श्रम के नये संगठन, योजनाबद्ध श्रम-विभाजन और चहुंमुखी विकसित, श्रम के निरंतर परिवर्तनशील रूपों का आदी हो सकनेवाले कर्मी की अपेक्षा होती है। वे सब बातें, जो मिलों-कारखानों में श्रम पर लागू होती हैं, वे प्रति दिन अधिकाधिक हद तक कृषि पर भी लागू होती जायेंगी।

पुनर्निर्माण काल में, जिसका कार्यभार है सामाजिक उत्पादन बढ़ाना और आधुनिक समाज का कायाकल्प करना, पार्टी, सोवितत सत्ता और उसके सभी निकाय मार्क्स और लेनिन द्वारा इंगित दिशा में उदीयमान पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा एवं चरित्र-निर्माण की ओर अपार ध्यान दिये बिना नहीं रह सकते।

यहां यह उल्लेखनीय है कि मार्क्स ने पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रश्न सार्विक शिक्षा और जिम्नास्टिक व्यायाम शिक्षा के प्रश्न के साथ जोड़कर ही पेश किया।

सार्विक शिक्षा के मामले में हमने कुछ सफलता पा ली है, लेकिन हमें अनिवार्य शिक्षा लागू करनी चाहिए, हमें माता-पिताओं और रिश्तेदारों द्वारा बच्चों के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए और अनिवार्य शिक्षा वास्तव में लागू करना संभव बनाने के लिए ठोस क़दम उठाने चाहिए। दूसरी ओर, जहां तक संभव हो शीघ्रातिशीघ्र नगरों में भी और देहातों में भी सातवीं तक के स्कूल खोले जाने चाहिए।

उत्पादक श्रम को जिम्नास्टिक, यानी शारीरिक विकास के साथ जोड़ने की मांग में मार्क्स ने उदीयमान पीढ़ी के स्वास्थ्य की राज्य द्वारा हितचिंता की आवश्यकता पर बल दिया। हम बच्चों के लिए सार्वजनिक आहार की व्यवस्था के लिए कुछ क़दम उठाये बिना स्कूलों को पोलीटेक्निकल नहीं बना सकते। तबाहहाली और भुखमरी के वर्षों ने उदीयमान पीढ़ी पर अपनी छाप छोड़ी है। हमें उदीयमान पीढ़ी की शारीरिक दुर्बलता से संघर्ष के लिए सभी क़दम उठाने चाहिए। बच्चों और किशोरों की शारीरिक शिक्षा के प्रश्नों पर हमारे यहां बहुत कम काम हुआ है, जबकि ये उदीयमान पीढ़ी की शक्ति सुदृढ़ करने के लिए

बहुत महत्व रखते हैं। शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट पीढ़ी विकसित करने के ध्येय के लिए ही यह आवश्यक है कि बच्चों के सामूहिक श्रम के विचार को क्रियान्वित करते समय आयु के अनुसार श्रम की मात्रा का सख़्ती से पालन किया जाये, शारीरिक दृष्टि से दुर्बल बच्चों का विशेष ख़याल करना चाहिए, इस बात का ख़ास ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को ऐसी थकावट न होने पाये, जो उनके स्वास्थ्य और सफल कार्य के लिए हानिकर होती है।

पोलीटेक्निकल शिक्षा के मामले में अभी से दक्षिणपंथी झुकाव भी देखने में आने लगा है। यह इस बात में व्यक्त होता है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा के महत्व को कम करके आंका जाता है, इस गंभीरतम समस्या के प्रति निष्क्रिय रुख अपनाया जाता है। उधर वामपंथी झुकाव भी है, जो जनसमूह की नज़रों में पोलीटेक्निकल शिक्षा को बदनाम करता है, क्योंकि इसमें बाल श्रम-रक्षा क़ानूनों को नज़रंदाज़ किया जाता है और बाल-श्रम का शिक्षा तथा शारीरिक विकास के साथ पर्याप्त संबंध नहीं जोड़ा जाता है।

पोलीटेक्निकल शिक्षा के संदर्भ में सातवीं तक के स्कूलों के पाठ्यक्रम काफ़ी बदले जाने चाहिए। छोटी कक्षाओं से ही व्यक्तिगत और सामाजिक हाइजीन को स्कूल में उचित स्थान मिलना चाहिए, जिम्नास्टिक को स्कूल के प्रतिदिन के कार्य का अभिन्न अंग होना चाहिए। बेशक बच्चों और किशोरों के लिए जिम्नास्टिक आम व्यायाम से भिन्न होनी चाहिए, इसमें खेलकूद के, दिशान्यास और श्रम संबंधी तत्वों को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए।

चित्रकारी, रेखांकन, खिलौने, मॉडल आदि बनाने का, जिनसे बिंबात्मक चिंतन और दृश्य-स्मृति पुष्ट होती है तथा जिनका पोलीटेक्निकल शिक्षा में अपार महत्व है, स्कूल में पहले से भिन्न स्थान होना चाहिए।

सभी कक्षाओं में श्रम-संगठन के प्रश्नों की सैद्धांतिक और व्यावहारिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण में सामूहिक श्रम के संगठन का प्रश्न अद्वितीय महत्व रखता है और यह अकल्पनीय है कि हमारी सोवियत श्रम-शिक्षा पद्धति में इस प्रश्न की ओर ध्यान न दिया जाये। यह प्रश्न श्रम के नियमन,

नियोजन और संगठन के प्रश्नों के साथ घनिष्ठतम रूप से संबद्ध होना चाहिए।

इस नई ज्ञान-शाखा – श्रम-संगठन के प्रश्नों – का अध्यापन स्कूल और स्कूलेतर जीवन की सारी दिनचर्या निर्धारित करने के साथ घनिष्ठतम रूप से जुड़ा होना चाहिए और इससे बच्चों द्वारा "स्वप्रबंध" के, यानी अपने कार्यों के प्रबंध के प्रश्नों में आमूल परिवर्तन आना चाहिए।

मार्क्स ने यह लिखा था कि मज़दूर वर्ग द्वारा राजनीतिक प्रभुत्व अवश्यंभावी रूप से पाये जाने के साथ स्कूल में टेक्नोलोजी के सैद्धांतिक और व्यावहारिक अध्यापन को भी स्थान प्राप्त होगा। हमारे स्कूलों में अभी इस अध्यापन को उचित स्थान नहीं मिला है। अभी तो वैज्ञानिक टेक्नोलोजी के कुछ तत्वों का ही अध्ययन होता है, क्योंकि वे भौतिकी और रसायन में शामिल हैं। लेकिन वैज्ञानिक प्रविधि की यह अपेक्षा है कि भौतिकी और रसायन के आम पाठ्यक्रमों की अपेक्षा इनका कहीं अधिक हद तक उत्पादन के साथ घनिष्ठ और सुसंगत संबंध जोड़कर अध्ययन किया जाये। इस प्रश्न का विवेचन होना चाहिए।

मार्क्स ने कृषि-विज्ञान की अनिवार्य शिक्षा की भी चर्चा की थी। यह देखते हुए कि पुनर्निर्माण काल में नगर और देहात के उत्पादन कार्यों का एक दूसरे के निकट आना लाक्षणिक है, सभी स्कूलों में, फ़ैक्टरी-कारखाना स्कूलों में भी कृषि-विज्ञान की सैद्धांतिक और व्यावहारिक शिक्षा एकदम अनिवार्य हो जाती है।

वैज्ञानिक टेक्नोलोजी और कृषि-विज्ञान का अध्ययन लागू किया जाना पोलीटेक्निकल स्कूल में श्रम का स्वरूप निर्धारित करता है। हमें स्कूल की कार्यशालाओं का स्वरूप शिल्पीय और संकीर्ण अभ्यासात्मक नहीं होने देना चाहिए, इन्हें सामग्रियों और उनके संसाधन के रूपों के अध्ययन की श्रम-प्रयोगशालाएं बनाना चाहिए।

साथ ही स्कूल की कार्यशालाओं को स्कूल में और उसके बाहर बच्चों का उत्पादन श्रम संगठित करना चाहिए।

प्रत्येक कक्षा के बच्चों के उत्पादक श्रम का अपना स्वरूप होना चाहिए, उसमें बच्चों की आयु-विशेषताओं और जीवन-अनुभव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और उसका लेखा-जोखा आसान होना चाहिए।

मुख्य समस्या यह है कि उत्पादक श्रम को शैक्षिक श्रम के साथ, ठोस श्रम को पोलीटेक्निकल श्रम के साथ कैसे जोड़ा जाये। यह प्रश्न व्यावहारिक क़दमों की एक श्रृंखला तैयार करके हल किया जा सकता है।

जिस प्रतिष्ठान के साथ स्कूल संलग्न हो उसका स्कूल में विशेषतः अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रतिष्ठान को इसमें हर तरह की सहायता देनी चाहिए। लेकिन फ़ैक्टरी-कारखाना सातवर्षीय स्कूल में यह अध्ययन व्यावसायिक प्रशिक्षण में, इस प्रतिष्ठान के लिए कर्मी तैयार करने के काम में नहीं बदल जाना चाहिए, बल्कि यह हर तरह के उत्पादन कार्य के अधिक गहन अध्ययन के लिए प्रस्थान बिंदु होना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा में अभ्यास के जो तत्व विशाल भूमिका अदा करते हैं, उनकी भूमिका पोलीटेक्निकल शिक्षा में सहायक ही होनी चाहिए।

प्रतिष्ठान के कार्य के अध्ययन के साथ-साथ दूसरी तरह के कार्यों का अध्ययन भी आवश्यक है, जैसे कि ग्रामीण तथा मज़दूर संवाद-दाता, अध्यापक, सहकारी कर्मी, सांख्यिकी कर्मी, इत्यादि के कार्य का। पोलीटेक्निकल स्कूल के लिए मानसिक और शारीरिक श्रम का संयोजन आवश्यक है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि औद्योगिक श्रम कृषि-श्रम के किन्हीं रूपों – बाग़बानी, मुर्ग़ीपालन, सन उगाना, आदि – के साथ संयोजित हो।

ऐसे विभिन्न कार्यकलापों के संयोजन के फलस्वरूप ही सच्चे अर्थों में चहुंमुखी विकसित लोग बन पायेंगे।

व्यवसाय का सही चुनाव यह संभव बनाता है कि हरेक की शक्ति का समुचित उपयोग हो। इसलिए स्कूल को इस कार्य में सहायता का प्रबंध करना चाहिए, छात्रों के व्यवसायों के चुनाव के मामले में परामर्श देना चाहिए। ...

बच्चे की योग्यताओं को ध्यान में रखना और उनका समन्वित वि-कास करना, किन्हीं बच्चों की अभिरुचियों और विकास में एकतरफ़ापन शिक्षा द्वारा दूर करना, विशेष प्रतिभा का ध्यान रखना और इस प्रतिभा से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति करना – यही बच्चों और किशोरों

के बारे में हमारे विज्ञान का पथ है।

व्यवसाय का सही चुनाव होने पर अपने काम से अधिकतम संतोष प्राप्त होगा और काम की कारगरता बढ़ेगी।

पोलीटेक्निकल शिक्षा की समस्या हल करने में अब और देरी नहीं की जा सकती। लेकिन इसे हल भी तभी किया जा सकता है जबकि इस कार्यभार की पूर्ति में मज़दूर जनसमूह भाग लेंगे। हमें विभिन्न व्यवसायों के मज़दूरों को पोलीटेक्निकल श्रम के प्रशिक्षक बनाने के पाठ्यक्रम अविलंब खोलने चाहिए। लेकिन यह तो कार्यभार का एक अंश ही है। मज़दूरों को पोलीटेक्निकल स्कूल बनाने के काम में लगाने का सर्वोत्तम पथ यही है कि वयस्कों की आम और व्यावसायिक शिक्षा भी पोलीटेक्निकल हो। यह समस्या कम जटिल है, हालांकि पोलीटेक्निकल स्कूल की समस्या से, जिसमें आयु को ध्यान में रखना आवश्यक है, कम तात्कालिक नहीं है। वयस्कों की सारी शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाना और स्कूली शिक्षा पोलीटेक्निकल बनाना – दोनों काम अभिन्न रूप से परस्पर संबंधित हैं और इन्हें यथाशीघ्र पूरा किया जाना चाहिए।

१९३१

सिद्धांत और व्यवहार[1]

ज़ारशाही रूस के स्कूलों में नियमतः सिद्धांत व्यवहार से अलग होता था। व्यवहार संबंधी कुछ मोटे-मोटे परामर्श ही सरसरी तौर पर दिये जाते थे। व्यावहारिक पाठों का ध्येय किन्हीं सिद्धांतों पर प्रकाश डालना होता था। इसका परिणाम यह था कि शिक्षा जीवन से कटी हुई थी, अमूर्त थी। सोवियत स्कूलों ने अपने अस्तित्व के पहले दिनों से ही सिद्धांत को व्यावहारिक कार्य संबंधी निर्देशों का रूप देने की कोशिश की है। लेकिन बहुत थोड़ी हद तक ही, जहां तक कि स्कूल में श्रम-शिक्षा और समाजोपयोगी श्रम, आदि को स्थान दिया जा सका, वहां तक ही इस काम में सफलता मिली है। केवल कुछ स्कूलों में ही सिद्धांत का व्यवहार से संयोजन किया गया है। यह संयोजन बड़ी कठिनाई से हुआ। गृहयुद्ध और आर्थिक तबाहहाली हमारी श्रमाधारित पद्धति के विकास में बाधक थे। यह स्पष्ट था कि हमें पुराने तरीकों को बदलना है, अध्यापन को अधिक सारगर्भित बनाना है। स्कूल के कार्यों के तरीक़ों और अंतर्य के बारे में बहुत कुछ कहा गया, लेकिन आम स्कूलों के काम में फिर भी भारी कमियां बनी रहीं। उधर जीवन की यह मांग थी कि स्कूल में छात्रों को काफ़ी अधिक ज्ञान दिया जाये। हमारे पाठ्यक्रम बढ़ते ही जा रहे थे। यह पता चलता कि इसके बिना भी काम नहीं चल सकता और इसके बिना भी नहीं तथा इसके बिना भी नहीं। छात्रों के मस्तिष्क में व्यापक जानकारी ठूंसी जाने लगी। लेकिन जीवन से, व्यवहार से अलग-थलग यह ज्ञान शीघ्र ही विस्मृति में समा जाता था। इसलिए बहुत-से शिक्षक कुछ ठोस काम सिखाने, दक्षताएं, अभ्यास देने पर ज़ोर देते थे। लेकिन केवल अभ्यास की ख़ातिर

अभ्यास से सारी शिक्षा निस्सार होती थी।

अब तेज़ गति से हो रहे औद्योगीकरण और कृषि के मशीनीकरण ने पोलीटेक्निकल शिक्षा को क्रियान्वित करने के अवसर प्रदान किये हैं। स्कूलों को किन्हीं प्रतिष्ठानों के साथ संलग्न करने के फलस्वरूप विराट परिवर्तन आये हैं। व्यवहार स्कूली जीवन का अंग बनने लगा है। इस बात को देखते हुए ही सिद्धांत और व्यवहार के संयोजन का प्रश्न अपने पूरे विराट स्वरूप में हमारे सामने उठ खड़ा हुआ है। पुराने ज़माने के, क्रांतिपूर्व के स्कूल में, जहां व्यवहार की भूमिका निकृष्ट थी, सिद्धांत का "चित्रण" करना मात्र ही उसका ध्येय था, वहीं आज हमारे सामने दूसरा ख़तरा है कि सिद्धांत के प्रति हमारा रुख अत्यधिक उपयोगितावादी हो जायेगा। सिद्धांत से केवल वही कुछ लिया जायेगा, जिसकी आज के व्यवहार के लिए, आज के पैमाने के लिए आवश्यकता होगी। अमरीकी स्कूल इस दिशा में बढ़ रहे हैं। वहां अधिसंख्य स्कूलों में सिद्धांत व्यवहार पर प्रकाश नहीं डालता, अपितु उसका आनुषंगिक है, इसलिए शिक्षा से अधिकांश मामलों में छात्रों का क्षितिज व्यापक नहीं होता, वे परिप्रेक्ष्य नहीं देख पाते, उनका ध्यान चालू कामों पर ही लगा रहता है। एक ज़माने में रूसी बुद्धिजीवियों के सम्मुख भी यह प्रश्न उपस्थित था और हमारे कथा-साहित्य में इसे स्थान मिला था। तुर्गेनेव[2] ने रूदिन के रूप में ऐसे बौद्धिक जीव का बिंब प्रस्तुत किया, जो यह नहीं देख पाता कि इस क्षण क्या करना चाहिए, वह छोटे-छोटे कामों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, नेक्रासोव[3] के शब्दों में वह "महान कार्य खोजता है", लेकिन "जो सामने है उसे नहीं देखता, उसे अनजाने ही बिगाड़ता है"। रूदिन का उलट है सोलोमिन। तुर्गेनेव का यह पात्र एकदम व्यावहारिक दृष्टिकोणवाला है, पूरी तरह "छोटे-छोटे कामों" में ही लीन है।

यदि हम पार्टी के कार्य पर नज़र डालें तो हम देखेंगे कि उसने आरंभ से ही सिद्धांत और व्यवहार के परस्पर संबंध के प्रश्न को हल कर लिया था। पार्टी निरंतर क्रांतिकारी सिद्धांत के निरूपण पर कार्य करती रही थी, क्रमशः उसे गहन बनाती और जीवन अनुभव से समृद्ध करती रही थी। साथ ही उसने आरंभ से ही क्रांतिकारी व्यवहार के विकास का ध्येय रखा है। पार्टी के लिए कभी भी कोई भी कार्य "तुच्छ"

नहीं रहा। वह मज़दूरों को उद्वेलित करनेवाले हर प्रश्न पर ध्यान देती थी, उस पर क्रांतिकारी मार्क्सवादी सिद्धांत का प्रकाश डालती थी, जिससे कार्यनीति निर्धारित होती थी, आवश्यक परिप्रेक्ष्य और कार्रवाई का सही परिमाण पता चलता था। उदाहरणतः मज़दूरों ने यह प्रश्न उठाया कि प्रबंधक सारा दिन उन्हें चाय के लिए गरम पानी नहीं देते। पार्टी ने इस प्रश्न को मज़दूरों के शोषण के प्रश्न के साथ, वर्ग-संघर्ष के साथ, निरंकुश शासन के विरुद्ध संघर्ष के साथ जोड़ा। हर छोटी से छोटी बात पर सैद्धांतिक प्रकाश डाला। सिद्धांत और व्यवहार की एक गांठ बांधने की योग्यता से पार्टी को असाधारण बल मिला।

स्कूली शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाना उदीयमान पीढ़ी को आधुनिक प्रविधि से सुसज्जित करने का रास्ता है। पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए छात्रों को तत्संबंधी सिद्धांत से लैस करना ज़रूरी है, जो उनके व्यावहारिक कार्य पर प्रकाश डाले। आज पोलीटेक्निकल शिक्षा दोराहे पर खड़ी है... एक ओर, उसका स्थान मात्र श्रम-अभ्यास ले सकता है, दूसरी ओर, वह आम वाक्यों तक सीमित हो सकती है, जीवन-व्यवहार से उसका संबंध टूट सकता है। हमें सही मार्गदिशा निर्धारित करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करने चाहिए।

उल्लेखनीय है कि ये सारे प्रश्न पोलीटेक्निकल शिक्षा के सम्मुख ही नहीं, सामान्यतः सारे विज्ञान के सम्मुख उपस्थित हैं। ...

पोलीटेक्निकल स्कूल का पाठ्यक्रम, इस स्कूल का सारा कार्य उत्पादन की ओर उन्मुख होना चाहिए, इसे अधिक ऊंचे वैज्ञानिक स्तर पर उठाना चाहिए। स्कूल के पाठ्यक्रम और उसके व्यवहार को उनके घनिष्ठतम संयोजन की दृष्टि से परिष्कृत करना चाहिए।

सोवियत देश की परिस्थितियां पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए अत्यंत अनुकूल हैं, निजी संपत्ति, आदि की बाधाएं हमारे रास्ते में नहीं हैं।

पूंजीवादी देशों के सारे अनुभव को ध्यान में रखते हुए हम उसे संसाधित करेंगे और अपने रास्ते पर, पोलीटेक्निकल स्कूल के, मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन के विचारों के अनुसार शिक्षा पद्धति के निर्माण के रास्ते पर बढ़ेंगे।

१९३१

पोलीटेक्निकल शिक्षा और पायोनियर संगठन[1]

हम श्रम-गणतंत्र बना रहे हैं। दासता, भूदासता और पूंजीवाद के युग में श्रम पापों का दंड माना जाता था। भगवान ने आदम को शाप दिया और उसके भाग्य में कठोर परिश्रम लिखा। "और तू अपने माथे के पसीने की रोटी खाया करेगा," उसने आदम से कहा। यह बाइबिल की कथा है। अक्तूबर क्रांति के बाद भी पहले कुछ वर्षों में लोगों के मन में श्रम की यही धारणा ज़ोर पकड़े रही कि यह एक अभिशाप है। उन दिनों हमारे स्कूली बच्चे लिखते थे: "समाजवाद में कोई भी काम नहीं करेगा।" लेकिन देश में श्रम-उत्साह वर्ष प्रति वर्ष अधिक फैल रहा है; समाजवादी प्रतियोगिता और अग्रणी कार्य से लोगों में श्रम के प्रति सचेतन रुख बन रहा है। ... हमारा पोलीटेक्निकल स्कूल अब एक रोचक "प्रयोग" नहीं रह गया है, सभी स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा का प्रसार हो रहा है। हमारे यहां चौथी कक्षा तक अनिवार्य शिक्षा लागू कर दी गई है। निकट भविष्य में सभी बच्चे सातवीं तक के पोलीटेक्निकल स्कूल में शिक्षा पाने लगेंगे। शिक्षा की सार्विकता को देखते हुए ही पोलीटेक्निकल स्कूल का महत्व विशेषत: बढ़ गया है। पिछली सदी के अंतिम दशक में ही लेनिन ने 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल' शीर्षक लेख में लिखा था: "... युवा पीढ़ी के शिक्षण को उत्पादक श्रम से संलग्न किये बिना भावी समाज के आदर्श की कल्पना नहीं की जा सकती: न तो उत्पादक श्रम के बिना शिक्षण

और शिक्षा को, न ही समांतर शिक्षण और शिक्षा के बिना उत्पादक श्रम को उस उच्च स्तर पर पहुंचाया जा सकता है, जो प्रविधि के आधुनिक स्तर तथा वैज्ञानिक ज्ञान की आधुनिक स्थिति के लिए अपेक्षित है।'' आगे इसी रचना में उन्होंने लिखा: ''सार्विक उत्पादक श्रम को सार्विक शिक्षा के साथ संलग्न करने के लिए प्रत्यक्षत: **सबका** यह दायित्व बनाना होगा कि वे उत्पादक श्रम में भाग लें। लगता है कि यह तो स्वतोस्पष्ट है? लेकिन नहीं। हमारे 'नरोदवादी' इस प्रश्न को इस प्रकार हल करते हैं कि शारीरिक श्रम का दायित्व वास्तव में एक सामान्य सिद्धांत के रूप में स्थापित होना चाहिए, **लेकिन सभी के लिए नहीं, बल्कि केवल संपत्तिहीनों के लिए।**''[2]

मात्रा गुण में परिवर्तित होती है। पोलीटेक्निकल शिक्षा की सार्विकता इसे मानसिक और शारीरिक श्रम करनेवालों में समाज के विभाजन को नष्ट करने का उपकरण बना देती है, क्योंकि वह समाज के हर सदस्य को काम करने की योग्यता से सुसज्जित करती है और इस तरह वर्गहीन समाज का मार्ग प्रशस्त करती है।

लेकिन पोलीटेक्निकल शिक्षा की समझ भी अलग-अलग हो सकती है। अक्सर इसका मतलब छात्रों को कुछ शिल्प-कार्य करना सिखा देना ही समझा जाता है। बच्चों को जिल्द बांधना, स्टूल बनाना, तालों की मरम्मत करना सिखाते हैं और समझते हैं बस काम हो गया। पोलीटेक्निकल शिक्षा के विचार की ऐसी विकृति हम क़दम-क़दम पर देखते हैं। इसके विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए। हमें ऐसा नहीं होने देना चाहिए कि पोलीटेक्निकल शिक्षा बढ़ईगिरी और लौहारगिरी तक सीमित होकर ही रह जाये।

इस काम का ऐसा प्रबंध करना आवश्यक है, जिसमें कि **कार्यशालाओं में काम कारखानों के काम के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हो, काम निश्चित योजना के अनुसार हो, कि यह श्रम उस प्रतिष्ठान के लिए जिससे स्कूल संलग्न है, आवश्यक हो, कि यह वास्तव में उत्पादक श्रम हो।** दूसरी ओर, यह भी आवश्यक है कि स्कूल की कार्यशालाओं में काम करते हुए बच्चे **श्रम के निश्चित तौर-तरीक़े सीखें** और ये दस्तकारी के नहीं, बल्कि **विज्ञान और प्रविधि के समसामयिक स्तर के अनुरूप आधुनिक तौर-तरीक़े हों।** ,स्कूलों की कार्याशालाओं में काम

के साथ-साथ **तत्संबंधी उत्पादन शाखा के, उसके इतिहास के अध्ययन की पृष्ठभूमि में कारखाने का अध्ययन होना चाहिए।**

आजकल कारखानों का इतिहास लिखने का काम हो रहा है। यह इतिहास स्कूलों में पढ़ाया जाना चाहिए, जहां इतिहास अभी नहीं लिखा जा रहा है, वहां बड़ी (आठवीं, नवीं) कक्षाओं के छात्रों को इसमें भाग लेना चाहिए।

हमारे यहां कभी-कभी कारखाने के अध्ययन को सतही ढंग से समझा जाता है। इसका अर्थ मशीनों का अध्ययन ही लगाया जाता है। लेकिन **कारखाने में काम कर रही श्रम शक्ति का, विभिन्न पेशों का,** न केवल अधिकारियों, बल्कि सभी कर्मियों के **विशेषीकरण का अध्ययन भी कम मानी नहीं रखता है।** यह अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे व्यवसायों की निश्चित समझ पैदा होती है, जो कि किशोरों के लिए ख़ास तौर से महत्वपूर्ण है। मनुष्य उसी काम में सबसे अधिक उद्यम दिखाता है, जो उसकी शक्ति और पसंद के सबसे अधिक अनुकूल होता है। इस काम में वह उत्पादन के लिए भी अधिकतम प्रयास करता है। व्यवसाय का सही चुनाव बहुत मानी रखता है। अंततः **प्रतिष्ठान में श्रम-संगठन का** भी अध्ययन किया जाना चाहिए। श्रम-संगठन के प्रश्न समाजवाद के निर्माण की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। और **हमारे सोवियत स्कूलों के**, जिन्हें वर्गहीन समाजवादी समाज के सचेत और सक्रिय निर्माता तैयार करने हैं, **छात्रों को समाजवादी श्रम-संगठन के मूलभूत सिद्धांतों के ज्ञान को आत्मसात करना चाहिए।**

आठवीं-नौवीं के पाठ्यक्रमों पर विचार करते हुए राजकीय वैज्ञानिक परिषद के स्कूल प्रभाग ने यह निर्णय किया: इनमें एक नया विषय शामिल किया जाये – 'समाजवाद के निर्माण के मूलभूत सिद्धांत'। लेनिन का कहना था कि पाठ्यक्रम ऐसे होने चाहिए ताकि वे प्रत्येक ज्ञान शाखा का निश्चित परिधि में ज्ञान दें, लेकिन पुराने स्कूल के समर्थक ही ऐसी बातें कर सकते हैं कि यह ज्ञान-परिधि वही होनी चाहिए जो पुराने स्कूलों में थी। ऐसा कहना लेनिन पर लांछन लगाना ही होगा। पोलीटेक्निकल स्कूल के पाठ्यक्रमों में ज्ञान-परिधि स्पष्टतः निर्धारित होनी चाहिए, लकिन यह भूदासतावादी या पूंजीवादी नहीं,

बल्कि कम्युनिस्ट दृष्टि से निर्धारित ज्ञान-परिधि होनी चाहिए। लेनिन सदा इस आवश्यकता पर बल देते थे कि सिद्धांत और व्यवहार का घनिष्ठतम संयोजन होना चाहिए, कि "पुराने पूंजीवादी समाज से हमें एक सबसे बड़ी बुराई और मुसीबत जो धरोहर में मिली है, वह यह है कि पुस्तक का यथार्थ जीवन के साथ कोई नाता नहीं है। ..."[3] सो, अब जबकि पूरे ज़ोरों से समाजवाद का निर्माण हो रहा है, क्या यह सही होगा कि स्कूल महज़ इसलिए इस निर्माण पर चुप्पी साधे रहे और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात – संगठन के प्रश्नों – के बारे में एक शब्द भी न कहे, क्योंकि इसके लिए दूसरे विषयों के घंटों की संख्या कुछ कम हो जायेगी और उनमें से कुछ गौण जानकारी हटानी होगी, उनके अध्यापन को बहुत युक्तिसंगत बनाना होगा। राजकीय विज्ञान परिषद का स्कूल प्रभाग यह मानता है कि 'समाजवाद के निर्माण के आधारभूत सिद्धांतों' में निम्न प्रकरण शामिल होने चाहिए: व्यक्तिगत मानसिक और शारीरिक श्रम का युक्तिसंगत संगठन, व्यक्तिगत कार्य का नियोजन, अपने काम का लेखा-जोखा रखना; छोटे-से समुदाय – टोली के कार्य का विवेकसंगत नियोजन, टोली में श्रम-विभाजन, परस्पर सहायता, परस्पर नियंत्रण, काम का लेखा-जोखा; प्रतिष्ठान में श्रम-संगठन, वैज्ञानिक श्रम-संगठन, नियोजन, श्रम विभाजन, उत्पादन के दौरान नियंत्रण, उत्पादन सभाएं, कारखाना प्रबंधक – ट्रेड-यूनियन – पार्टी समिति के "तिकोन" में शामिल संगठनों के कार्य का अंतर्य; उत्पादन की शाखाओं के नियोजन के मूलभूत सिद्धांत; किसान की निजी खेती, ज़मींदार की खेती और पूंजीवादी खेती में श्रम-संगठन, आधुनिक राजकीय फ़ार्मों में श्रम-संगठन; सामूहिक फ़ार्मों में श्रम-संगठन के मूलभूत सिद्धांत; फिर ज़िले की उत्पादक शक्तियों का, उसकी अर्थव्यवस्था का, आबादी के श्रम-संगठन, उसकी श्रम प्रवृत्तियों और सक्रियता के इतिहास का, ज़िले के चारों ओर के इलाक़े का और उसके संबंधों का, ज़िले के पैमाने पर नियोजन का और अंततः सारे देश के आर्थिक जीवन के नियोजन का अध्ययन किया जाना चाहिए। इसमें श्रम संबंधी आवश्यक तौर-तरीक़ों पर विचार, आबादी के सांस्कृतिक स्तर पर, उसे समाजवाद के निर्माण में, देश के राजनीतिक जीवन में, सोवियतों के कार्य में प्रवृत्त करने के तरीक़ों पर ग़ौर भी शामिल

होगा। इसमें राज्य व्यवस्था के रूपों का अध्ययन, सोवियत सत्ता के मार का स्पष्टीकरण भी शामिल होगा। इस पाठ्यक्रम में अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति और दैनंदिन जीवन का संबंध दिखाया जा सकता है, जीवन में पुराने अवशेषों और नूतन के अंकुरों के बीच भेद करना, छात्रों को अपना सामाजिक कार्य समझना और उसे युक्तिसंगत बनाना सिखाया जा सकता है।

यह प्रश्न नया है। इस पर व्यापक विचार-विमर्श होना चाहिए। हम इसे मार्क्सवादी शिक्षक समाज में विचारार्थ रखेंगे और यह आवश्यक है कि कोमसोमोल इस प्रश्न के विवेचन में सक्रिय भाग ले।

२३ मई को पायोनियर संगठन की स्थापना के दस वर्ष पूरे हो रहे हैं। इस संगठन ने उदीयमान पीढ़ी को बहुत कुछ दिया है। इसने सामूहिक कार्य करने की शिक्षा दी है, आत्मानुशासन विकसित किया है, कम्युनिस्ट उत्साह जगाया है। इस कार्य के महत्व का अवमूल्यांकन नहीं किया जा सकता। आज दसियों लाख किशोर-किशोरियां इस संगठन के सदस्य हैं।

अब कोमसोमोल के सम्मुख यह कार्यभार है कि वह आगामी पांच वर्षों के लिए पायोनियर संगठन का कार्य नियोजित करे।

अब सारे देश के सम्मुख आधुनिक प्रविधि की सारी उपलब्धियों का, आधुनिक विज्ञान की सारी उपलब्धियों का उपयोग करने का कार्यभार है। युवाजन को इस काम में जुट जाना चाहिए, ज्ञान के लिए इस संघर्ष में पायोनियरों को प्रवृत्त करना नितांत आवश्यक है। केंद्रीय समिति के निर्णयों[4] में यह बात कही गई है। पोलीटेक्निकल स्कूल ज्ञान पर अधिकार पाने का पथ है। वर्तमान चरण में सच्ची पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए संघर्ष ज्ञान पर, प्रविधि पर अधिकार पाने का संघर्ष है। फ़ैक्टरी-कारखाना शिक्षण के लिए, किसान युवाजन स्कूल के लिए संघर्ष करते हुए कोमसोमोल शिक्षा को उत्पादक श्रम के साथ जोड़ने के लिए संघर्ष कर रहा था। अब समग्र पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति के लिए संघर्ष करना है। इस शिक्षा-पद्धति में ही कोमसोमोल सदस्यों की नई पीढ़ी शिक्षित हो रही है। कोमसोमोल सच्ची पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रसार के लिए बहुत कुछ कर सकता है। कोमसोमोल को पायोनियरों को इस शिक्षा के लिए संघर्ष करना

11-1000

सिखाना चाहिए। हर स्कूल में, हर कक्षा में पायोनियरों को एक ऐक्यबद्ध संगठन बनना चाहिए, ज्ञान के लिए सघर्ष में हरावल दस्ता होना चाहिए, उन्हें शेष सारे बाल-समूह का नेतृत्व करना चाहिए। पायोनियरों को स्कूल में ज्ञान पाने के लिए मिलकर काम करना चाहिए। हर पायोनियर को यह आभास होना चाहिए कि वह ज्ञान के लिए, सचेतन अनुशासन के लिए संघर्षरत इस संगठन का सदस्य है, उसे इस संघर्ष में सक्रिय भाग लेना चाहिए। लेकिन पायोनियरों को ज्ञान के लिए संघर्ष केवल स्कूल में ही नहीं करना चाहिए। सारे पायोनियर संगठन को इन प्रश्नों की ओर इस अर्थ में नहीं ध्यान देना चाहिए कि हर पायोनियर ख़ाली समय में भी किताब लेकर बैठा रहे, बल्कि इस अर्थ में कि उसे बच्चों के स्कूलेतर जीवन को इस तरह आयोजित करना चाहिए कि बच्चे विश्राम करते हुए भी अपने जीवन को अधिक रोचक, सारगर्भित बनाना सीखें, जीवन की गहराई में जाना सीखें, जीवन से, बड़ों से यह सीखें कि कैसे अपने ज्ञान का जीवन में उपयोग करने के हर अवसर का लाभ उठाया जाये, ताकि जीवन को सुधारा जा सके। पायोनियर ज्ञान पाने के लिए सक्रिय कार्य करता है, वह इस ज्ञान का जीवन में उपयोग करने के लिए भी सक्रिय कार्य करता है। वह मात्र एक "अच्छा छात्र" नहीं है, जो कक्षा में हिलते-डुलते भी डरता है और अपने पाठ अच्छी तरह सीखता है। पायोनियर ऐसा छात्र है जो उसे सिखाई जानेवाली बातों पर मनन करता है, शिक्षा में रुचि लेता है, इस बात का ख़याल रखता है कि कक्षा में सभी के लिए शिक्षा पाने का अच्छा वातावरण हो; यह वह छात्र है जो स्कूल में भी और स्कूल के बाहर भी संयम रखना जानता है।

ऐसे कार्यभारों के साथ हमारा पायोनियर संगठन आगामी पंचवर्षीय चरण में पदार्पण कर रहा है। उसे अपने उदाहरण से बच्चों को वशीभूत करना है। हमारी उदीयमान पीढ़ी शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के कार्य करना सीखेगी, मज़दूरों के, लेनिन के ध्येय की पूर्ति के लिए सदा तत्पर रहेगी।

सभी पायोनियरों का हार्दिक अभिवादन!

१९३२

बीते चरण पर दृष्टिपात

लेनिन ने सदा लघु किसान फ़ार्म में, बड़े पैमाने की पूंजीवादी कृषि में, घरेलू उद्योग में, शिल्पों में, छोटी-मोटी वर्कशापों में, फ़ैक्टरियों और कारखानों में बाल-श्रम का बड़े ध्यान से अध्ययन किया। १८९९ में उन्होंने पार्टी के कार्यक्रम का जो मसौदा तैयार किया था उसमें उन्होंने १४ साल तक के बच्चों और किशोरों के श्रम पर प्रतिबंध लगाने की मांग करनेवाला मुद्दा भी रखा था। पार्टी की दूसरी कांग्रेस में स्वीकृत कार्यक्रम में १६ वर्ष की आयु तक यह प्रतिबंध लगाने की मांग की गई थी, क्योंकि बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा की आवश्यकता के अलावा बच्चों की शिक्षा के मार्ग में प्रमुख बाधा – घरेलू और उजरती श्रम – दूर करना भी आवश्यक था। बेशक इसका अर्थ यह नहीं था कि १४ से १६ बर्ष के बच्चों को काम नहीं करना चाहिए।

मार्क्स का अध्ययन करते हुए लेनिन ने उस बात की ओर विशेष ध्यान दिया, जो मार्क्स ने 'पूंजी' के पहले खंड में बच्चों और किशोरों की शिक्षा को उनके उत्पादक श्रम के साथ जोड़ने के बारे में कही है। १८९७ में लिखे 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल' में लेनिन ने मार्क्स के तत्संबंधी शब्द उद्धृत किये और यह इंगित किया कि **श्रम सभी किशोरों के लिए अनिवार्य होना चाहिए** और उसका शिक्षा के साथ घनिष्ठ संबंध होना चाहिए। लेकिन इसी लेख में समसामयिक स्कूल का वर्गाधारित स्वरूप इंगित करते हुए लेनिन ने यह भी कहा कि सामान्यतः पूंजीवादी

समाज में और विशेषत: ज़ारशाही के अंतर्गत इस मांग को पूरा करना असंभव है। मार्क्स की ही भांति वह भी यही मानते थे कि सभी किशोरों के लिए अनिवार्य उत्पादक श्रम समाज के वर्गों में विभाजन का आधार मिटा देगा। उनका मत था कि यह अत्यंत गंभीर कार्य है।

१९१४ में जब लेनिन ने ग्रनात के विश्वकोश के लिए मार्क्स की शिक्षा पर लेख लिखा, तो 'समाजवाद' अनुच्छेद में उन्होंने फिर से इस प्रश्न की ओर ध्यान दिया और 'पूंजी' का एक और उद्धरण पेश किया, जिसमें मार्क्स ने किशोरों के वयस्क स्त्री-पुरुषों के साथ संयुक्त श्रम के महत्व पर ज़ोर दिया है।

जब समाजवादी क्रांति आसन्न हो गयी, तभी इस प्रश्न ने व्यावहारिक रूप धारण किया। १९१४ – १९१५ में मैं पोलीटेक्निकल श्रम के प्रश्न का अध्ययन करने में जुट गई। लेनिन इन दिनों पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रश्नों में बहुत रुचि लेने लगे थे। मई १९१७ में पार्टी-कार्यक्रम में आवश्यक परिवर्तनों का मसौदा तैयार करते हुए लेनिन ने बाल श्रम-रक्षा और शिक्षा संबंधी मुद्दे इस प्रकार निरूपित किये:

"... **५. उद्योगपतियों को स्कूली आयु (१६ वर्ष तक) के बच्चों से काम लेने की मनाही हो, युवाजन (१६-२० वर्ष की आयु) के लिए कार्य-अवधि चार घंटे तक हो और उन्हें रात में, स्वास्थ्य के लिए ख़तरनाक उद्यमों और खानों में काम करने की मनाही हो।**"[1]

"**१४. १६ वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निश्शुल्क और अनिवार्य सामान्य एवं पोलीटेक्निकल (सिद्धांत और व्यवहार में उत्पादन की सभी प्रमुख शाखाओं से परिचित करानेवाली) शिक्षा का प्रबंध हो; शिक्षा का बच्चों के सामाजिक-उत्पादक श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध हो**" (शब्दों पर ज़ोर मेरा – **न० क्रू०**)।[2]

वह समय समीप आ रहा था जब शिक्षा का सामाजिक-उत्पादक श्रम के साथ संयोजन जीवन में उतारा जाना था।

विदेश से लौटने के दो हफ़्ते बाद अप्रैल १९१७ में मैंने 'प्राव्दा' के लिए एक लेख[3] लिखा, जिसमें १६ वर्ष तक की आयु के बच्चों के **उजरती** श्रम पर प्रतिबंध लगाने, लेकिन १२ से १६ वर्ष तक के किशोर-किशोरियों के लिए श्रम अनिवार्य बनाने, एक ओर, सामाजिक श्रम की आवश्यकताओं को तथा, दूसरी ओर, उदीयमान पीढ़ी के स्वास्थ्य

और विकास को ध्यान में रखते हुए इस श्रम का प्रबंध करने की चर्चा की थी, साथ ही मैंने इस आयु के बच्चों के आहार का प्रबंध करने की आवश्यकता भी इंगित की थी।

इसके एक महीने बाद लिखे लेख 'म्युनिसिपल स्कूल कार्यक्रम' में मैंने सीधे-सीधे यह कहा था कि स्कूल के माध्यम से उत्पादक श्रम का प्रबंध किया जाना चाहिए। मैं यह मानती थी कि इस कार्य में स्कूल के स्वप्रबंध की, ट्रेड-यूनियन और फ़ैक्टरी इंस्पेक्टरों की बहुत बड़ी भूमिका होनी चाहिए, मैंने 'ज़िला निगरानी समितियां' संगठित करने की आवश्यकता के बारे में भी लिखा था, स्थानीय लोगों के प्रतिनिधियों से बनी इन समितियों का काम होता बच्चों और किशोरों के श्रम संबंधी क़ानून के पालन पर नज़र रखना।

लेनिन इन प्रस्थापनाओं को सही मानते थे।

सोवियत सत्ता की स्थापना होते ही अनेक क़दम निर्धारित किये गये, जिनके बारे में मैंने ३० नवंबर १९१७ को श्रम जन-कमिसारियत को लिखा।

बाल-श्रम की रक्षा करने, किशोरों के लिए स्कूल खोलने, स्कूलों में शिक्षा को उत्पादक श्रम के साथ जोड़ने की दिशा में पेत्रोग्राद के ज़िलों में कुछ काम किया गया था, जिसे स्थायी रूप देने की आवश्यकता थी। लेकिन आरंभ में यह काम जैसा लगता था वास्तव में उससे कहीं अधिक कठिन निकला। सैनिक मोर्चे से लौटकर मिलों-कारख़ानों में अपने स्थानों पर वापस आ रहे थे, उनके लिए स्थान ख़ाली करने की ज़रूरत थी। श्रम जन-कमिसारियत ने सबसे आसान रास्ता अपनाया। १६ वर्ष तक के बच्चों, किशोरों के श्रम की मनाही का क़ानून बना दिया गया, जबकि ऐसे स्कूल नहीं थे, जो बच्चों के लिए भोजन और वस्त्रों की व्यवस्था करते और साथ ही बाल-श्रम संगठित करते। बच्चों की दशा बड़ी ख़राब हो गई। बेघर बच्चों की संख्या बढ़ने लगी। अनाथालयों की गिनती बढ़ रही थी, जहां शिक्षा को उत्पादक श्रम से जोड़ने की कोशिश की जाती थी, लेकिन वहां अक्सर न श्रम होता था, न शिक्षा। उधर गृहयुद्ध फैल रहा था। श्वेतगार्डी युद्ध से त्रस्त देश में लूटपाट कर रहे थे। श्वेतगार्डी स्कूल जला रहे थे, छात्रों-अध्यापकों को तितर-बितर कर रहे थे। अनाथ, बेघर हो गये

बच्चों की गिनती बढ़ रही थी। कहना न होगा कि ऐसे हालात में बड़े पैमाने पर स्कूलों को पोलटेक्निकल बनाने का काम नहीं हो सकता था। बस कुछ उत्साही अध्यापक ही इसके प्रयोग कर रहे थे। कुछ प्रायोगिक स्कूलों में अपार सफलता पाई गई। ... इन स्कूलों में बहुत-सी दिलचस्प बातें देखी जा सकती थीं, लेकिन ये नूतन के कुछेक अंकुर ही थे, जिन्हें प्रायः उचित प्रोत्साहन नहीं मिलता था। जहां तक आम स्कूलों का सवाल है, वहां स्थिति काफ़ी विकट थी। काम की एक योजना नहीं थी, पाठ्य-पुस्तकें नहीं थीं, काग़ज़ नहीं था, पाठ्यक्रम नहीं थे, किसी तरह का कोई नियंत्रण और निरीक्षण नहीं था। शिक्षक यह समझते थे कि अब पुराने ढंग से शिक्षा नहीं दी जा सकती, लेकिन नये ढंग से कैसे दें, यह वे जानते नहीं थे। ज़्यादातर मामलों में स्कूल श्रम बच्चों द्वारा मामूली "स्वयंसेवा" तक ही सीमित होता था और उसका शिक्षा के साथ कोई संबंध नहीं होता था। युद्धकालीन कम्युनिज़्म[4] के वर्षों में ज्ञान-पिपासा बहुत प्रबल थी, लोगों में उत्साह और पहलक़दमी की कोई कमी न थी, लेकिन संगठनबद्धता न होने के कारण और उद्योग एवं कृषि की आम तबाही के कारण स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाना असंभव था।

नई आर्थिक नीति[5] की ओर संक्रमण के साथ स्कूल के जीवन में बहुत-से नये परिवर्तन आये।

गृहयुद्ध समाप्त हो रहा था, पुनरुत्थान कार्य आरंभ हो रहा था।

लेनिन जनशिक्षा की स्थिति पर बड़े ध्यान से नज़र रख रहे थे। कोमसोमोल की तीसरी कांग्रेस में अपने भाषण में उन्होंने स्कूल और सामाजिक कार्य के बारे में, सिद्धांत को व्यवहार से जोड़ने की, स्कूल में ही जीवन का कायाकल्प करने के लिए ज्ञान का उपयोग करने की आवश्यकता के बारे में अपने विचार विस्तार से व्यक्त किये। १९२० में हुई सोवियतों की आठवीं अखिल रूसी कांग्रेस में देश के विद्युतीकरण के बारे में रिपोर्ट पेश की गई। लेनिन का मत था कि हर स्कूल में छात्रों को विद्युतीकरण योजना से परिचित कराया जाना चाहिए, कि स्कूल सांस्कृतिक केंद्र होना चाहिए, उसे सारी शिक्षा व्यावहारिक कार्यभारों की पूर्ति के साथ जोड़नी चाहिए।

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस के बाद जनशिक्षा के प्रश्नों पर सम्मेलन

होना था। आर्थिक जीवन में जो योजनाबद्धता दृष्टिगोचर होने लगी थी, उसे जनशिक्षा के क्षेत्र में लाना भी आवश्यक था। लेनिन का मत था कि पार्टी सम्मेलन में एक बार फिर पूरे ज़ोर से आम स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने का प्रश्न उठाया जाना चाहिए, कि जनशिक्षा की पद्धति अधिक सही-सही निर्धारित की जानी चाहिए, शिक्षा को व्यवहार के साथ जोड़ना चाहिए, देश के सम्मुख प्रस्तुत समाजवाद के निर्माण के कार्यभारों के साथ जोड़ना चाहिए, प्राप्त अनुभव को ध्यान में रखना और उसका सामान्यीकरण किया जाना चाहिए, प्रत्येक चरण के स्कूल में शिक्षा के विषयों की ज्ञान-परिधि नये सिरे से निर्धारित की जानी चाहिए।

पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में रिपोर्ट मुझे पेश करनी थी। इसकी प्रस्थापनाएं लिखकर मैंने लेनिन को दिखाईं। उन्होंने इन पर कुछ टिप्पणियां लिखीं।[5] वे शिक्षा जन-कमिसारियत में चल रही बहस के बारे में जानते थे, उन्हें पता था कि कुछ ऐसे साथी भी हैं, जो पोलीटेक्निकल शिक्षा के महत्व को आंक नहीं पाते, यह मानते हैं कि यह सुदूर भविष्य की बात है, जो पोलीटेक्निकल शिक्षा के सैद्धांतिक महत्व को नहीं समझते। लेनिन जानते थे कि कुछ शिक्षक पुराने ढंग के शिल्प विद्यालयों का समर्थन करते हैं, सिद्धांत और व्यवहार को एक सूत्र में बांधने की, छात्रों को पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण प्रदान करने की आवश्यकता को नहीं समझते। लेनिन को लगा कि मेरी प्रस्थापनाओं में पर्याप्त रूप से ठोस बात नहीं कही गई है, इनमें प्रश्नों को दो टूक ढंग से नहीं पेश किया गया है। व्यावसायिक स्कूलों के समर्थकों के साथ बहस इस बात को लेकर थी कि वे व्यावसायिक स्कूलों में सामान्य शिक्षा के विषय कम करना चाहते थे, शिक्षा-दीक्षा के कम्युनिस्ट कार्यभारों को ध्यान में नहीं रखते थे, जिनमें एक है छात्रों को पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण प्रदान करना। हालांकि मैंने अपनी पुस्तक 'जनशिक्षा और जनवाद' में भी तथा 'व्यावसायिक शिक्षा के कार्यभार' नामक लेख में भी इस बारे में विस्तार से लिखा था, तो भी शिक्षा जन-कमिसारियत में विशेषज्ञों के साथ, पुराने ढंग की व्यावसायिक शिक्षा के पक्षधरों के साथ होनेवाली बैठकों से यह पता चलता था कि यह प्रश्न तब हल होने से बहुत दूर है। सो, लेनिन इसकी ओर ख़ास तौर से ध्यान दिलाना चाहते थे।

पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में रिपोर्ट मैं बीमारी के कारण पेश नहीं कर सकी। लेनिन पार्टी सम्मेलन से बहुत असंतुष्ट थे। उन्हें सारे सोवियत कार्य में अक्सर सवालों को अमूर्त रूप से उठाये जाने, यथार्थ को ध्यान में रखे बिना सामान्य बात करने पर बहुत झुंझलाहट होती थी। ठोस परिस्थितियों को ध्यान में रखना अभी सीखना शेष था। जनशिक्षा के प्रश्नों पर पार्टी सम्मेलन की रिपोर्टें पढ़ते हुए भी लेनिन ने उनमें यही कमियां पाईं। लेनिन शिक्षा जन-कमिसारियत के काम पर बड़े ध्यान से नज़र रखते थे, सदा वहां से कागज़ात मंगवाते थे, मैं उन्हें अक्सर विभिन्न इलाक़ों में हो रहे शिक्षा-कार्य के बारे में बताती थी, पत्र दिखाती थी, बाहर से आनेवाले शिक्षकों के साथ अपनी बातचीत के बारे में बताती थी और यह भी कि शिक्षक उनसे की जानेवाली अपेक्षाओं की अनिश्चितता की शिकायत करते हैं, कि न केवल हर गुबेर्निया (ज़िले) में, बल्कि हर उयेज़्द (तहसील) में, यहां तक कि हर स्कूल में अपना पाठ्यक्रम तय किया जाता है। मैं उन्हें बताती थी कि ऐसे स्कूल भी हैं जहां छोटी कक्षाओं से ही राजनीतिक अर्थशास्त्र और संस्कृति का इतिहास पढ़ाने लगते हैं, दूसरी ओर, उनके बग़ल में ही ऐसे स्कूल भी हैं, जहां सब कुछ "स्वयंसेवा" पर आधारित हैं, जहां अध्यापक बच्चों के साथ बस "वार्ताएं" ही करते हे, ऐसी वार्ताएं जो कोरी बातें ही होती हैं – कभी छात्रों को पीटर महान के बारे में बताने लगते हैं, तो कभी प्राचीन रूस की वेचे (जन-सभा) के बारे में, मगर पढ़ना, लिखना नहीं सिखाते।

लेनिन ने शिक्षा जन-कमिसारियत को अधिक कामकाजी तथा व्यावहारिक कार्य का संचालन करनेवाला निकाय बनाने की दिशा में उसका पुनर्गठन करने की आवश्यकता का सवाल उठाया। ५ फ़रवरी १९२१ को 'प्राव्दा' में लेनिन के लिखे 'शिक्षा जन-कमिसारियत के कर्मी कम्युनिस्टों को केंद्रीय समिति के निर्देश' छपे। ९ फ़रवरी को 'प्राव्दा' में ही लेनिन का 'शिक्षा जन-कमिसारियत के काम के बारे में' लेख छपा। ये निर्देश और लेख एक ही भावना से ओत-प्रोत थे। इनमें मांग की गई थी कि शिक्षा जन-कमिसारियत के काम में अधिक व्यावहारिकता हो, शिक्षकों के साथ काम करने का अधिक कौशल

हो, पुराने विचारों के विशेषज्ञों से काम लेने, उन्हें अपना अनुगामी बनाने, सही रास्ते पर लाने की योग्यता हो। 'शिक्षा जन-कमिसारियत के काम के बारे में' लेख में लेनिन ने उन लोगों को आड़े हाथों लिया, जो आम स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने के कार्यभार से इंकार करने की चेष्टा कर रहे थे, जो आम स्कूलों में दी जानेवाली सामान्य और पोलीटेक्निकल शिक्षा का परिमाण कम करना चाहते थे।

दिसंबर १९२१ में सोवियतों की नौवीं अखिल रूसी कांग्रेस में लेनिन द्वारा लिखे अनुदेश स्वीकृत किये गये। इनमें "स्कूल और स्कूलेतर शैक्षिक कार्य का सारे जनतंत्र के और तत्संबंधी प्रदेश के स्थानीय तात्कालिक आर्थिक कार्यभारों के साथ संबंध अधिक घनिष्ठ बनाने"[6] की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

शिक्षा जन-कमिसारियत का पुनर्गठन किया गया। राजकीय वैज्ञानिक परिषद का वैज्ञानिक-शैक्षिक प्रभाग भी गठित किया गया।

लेनिन ने अनेक बार मुझसे यह कहा था कि इस प्रभाग का काम किस दिशा में होना चाहिए। इस प्रभाग में विशाल शैक्षिक अनुभववाले लोग, व्यावहारिक कार्य में रत कई लोग रखे गये। लेनिन का कहना था कि वैज्ञानिक-शैक्षिक प्रभाग का कार्यभार है, एक ओर, व्यावहारिक अनुभव का ध्यान रखना, उसका सामान्यीकरण करना तथा, दूसरी ओर, हर कक्षा के छात्रों को दिये जानेवाले ज्ञान की परिधि नये सिरे से निर्धारित करना; यह नितांत आवश्यक है कि पाठ्यक्रमों को जीवन के साथ, आर्थिक निर्माण कार्य के साथ यथासंभव घनिष्ठ रूप से जोड़ा जाये, उनमें से हर तरह की बेकार बातें हटाई जायें, उन्हें एक समग्रता प्रदान की जाये। आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्यक्रम कम्युनिस्ट विश्वदृष्टिकोण की नींव रखें। और हमें केवल अपने रूस के अनुभव का ही नहीं, बल्कि औद्योगिक दृष्टि से अग्रणी देशों के अनुभव का, जर्मनी के, विशेषतः उत्तरी अमरीका के अनुभव का अध्ययन करना चाहिए। पाठ्यक्रम बनाते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमें मात्र एक शिक्षा पद्धति का नहीं, पोलीटेक्नकल शिक्षा पद्धति का निर्माण करना है।

पहले कुछ वर्षों तक वैज्ञानिक-शैक्षिक प्रभाग का कार्य इसी दिशा में हुआ। पहले चरण के (प्राथमिक) स्कूलों के पाठ्यक्रम तैयार किये

गये। यहां यह बता देना चाहिए कि क्रांति से पहले प्राथमिक विद्यालयों के लिए कोई पाठ्यक्रम नहीं थे। रूसी भाषा, आंकगणित और ईश नियम के विषय में कुछ अपेक्षाएं होती थीं। भूगोल, इतिहास जैसा कोई विषय नहीं होता था। पढ़ाई (पठन-पाठन) के पाठों में शिक्षक समाजविज्ञान और प्रकृतिविज्ञान संबंधी कुछ मामूली-सी जानकारी देता था।

यही बात स्विट्ज़रलैंड के और दूसरे देशों के स्कूलों में पाई जाती थी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अधिकांश यूरोपीय देशों में जनसाधारण के लिए स्कूल सातवीं, आठवीं कक्षा तक के ही हैं। उनमें यदि कोई पाठ्यक्रम हैं, तो वे बड़ी कक्षाओं के लिए ही हैं।

प्रथम चरण के आम स्कूलों के लिए राजकीय वैज्ञानिक परिषद के पाठ्यक्रम एक नई बात थे, इनसे शिक्षकों के लिए निश्चित लक्ष्य निर्धारित होते थे। १९२५ में हुई शिक्षकों की अखिल रूसी कांग्रेस से यह पता चला कि शिक्षकों में कितना उत्साह फैला है, कि प्रथम चरण के शिक्षकों ने कितना विशाल सृजनात्मक कार्य किया है। आबादी के श्रम-कार्य और स्कूल के बीच संबंध काफ़ी व्यापक बना, विशेषतः देहात में।

जहां तक दूसरे चरण (१२ से १७ वर्ष) के स्कूलों का सवाल है, जिनके लिए सारे पाठ्यक्रम आमूल बदले जाने थे, किशोरों का उत्पादक श्रम नये ढंग से संगठित किया जाना था, सिद्धांत और व्यवहार के बीच पुल बांधना था, वहां काम अटक गया। दूसरे चरण के स्कूल की पढ़ाई पूरी करके छात्र तकनीकी विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों में दाख़िला लेते थे। इसके लिए पहले की ही भांति अनेक निरर्थक विषयों के ज्ञान की आवश्यकता होती थी। इसका पाठ्यक्रमों पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था।

लेकिन सभी छात्र उच्च शिक्षा संस्थानों और तकनीकी विद्यालयों में दाख़िला नहीं लेते थे। सो आख़िरी दो कक्षाओं – आठवीं और नौवीं – का "व्यवसायीकरण" होता था। विशेष "कोर्स" बनते थे, जो मुख्यतः बौद्धिक व्यवसायों के साधारण कर्मी तैयार करते थे। ये "कोर्स" दफ़्तर कर्मचारियों की आवश्यकता कमोबेश पूरी करते थे। पोलीटेक्निकल शिक्षा का इनमें नामोनिशान तक न था। स्कूली शिक्षा

को पोलीटेक्निकल बनाने का काम मुख्यत: फ़ैक्टरी-कारखाना विद्यालयों में होता था, जहां पहले वर्ष से ही छात्र कारखाने में काम करते थे, जहां इस काम का पारिश्रमिक (भले ही बहुत थोड़ा) मिलता था और जहां सामान्य शिक्षा संबंधी ज्ञान कारखाने में काम के साथ घनिष्ठ रूप मे जुड़ा होता था। शिक्षा जन-कमिसारियत इस क़िस्म के स्कूलों का हर तरह से समर्थन करता था, राजकीय वैज्ञानिक परिषद का वैज्ञानिक-शैक्षिक प्रभाग इन स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने की आवश्यकता पर ख़ास तौर से ज़ोर देता था, लेकिन इस परामर्श पर अमल सदा नहीं होता था।

इसके साथ ही साथ किसान युवाजन स्कूल ऐसे नई क़िस्म के स्कूल थे, जिनमें शिक्षा का उत्पादन के साथ घनिष्ठ संबंध था। वहां भी पोलीटेक्निकल शिक्षा के तत्वों का समावेश किया जाता था। इन स्कूलों की ज्वलंत विशिष्टता थी सामूहिक कार्य, संयुक्त प्रयास। इनमें पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रसार में यह बात बाधक थी कि कृषि मशीनें कम थीं। वैज्ञानिक-शैक्षिक प्रभाग इन स्कूलों को हर तरह का समर्थन देता था।

पिछले वर्षों में बड़े उद्योगों के विकास और कृषि के सामूहिकीकरण का काम जिस व्यापक पैमाने पर हो रहा है, उससे स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने के लिए बिल्कुल नया आधार बना है।

पोलीटेक्निकल शिक्षा अब एक रोचक प्रयोग नहीं रह गई है, सभी चरणों के स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने संबंधी लेनिन के अनुदेश को अमल में लाया जा रहा है।

१९३० की गर्मियों में पोलीटेक्निकल शिक्षा के विषय पर कांग्रेस हुई। यह अपार उत्साह के वातावरण में हुई, मज़दूरों और सामूहिक किसानों ने इसमें सक्रिय भाग लिया।

इसके बाद 'पोलीटेक्निकल शिक्षा संबंधी क़ानून' बनाने के सिलसिले में कई सम्मेलन हुए।

एक अत्यंत महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया कि प्रत्येक स्कूल किसी फ़ैक्टरी, कारखाने या राजकीय फ़ार्म से संलग्न हो।

एक नई हवा चली।

लेकिन फिर स्कूलों का काम छात्रों के दैनंदिन श्रम तक सीमित

होने लगा। बहुत-से सामूहिक फ़ार्म स्कूल को ऐसे स्थान के रूप में देखने लगे, जहां से उन्हें कामगर बच्चे मिल सकते हैं। श्रम शिक्षा को पृष्ठभूमि में धकेलने लगा।

पार्टी की केंद्रीय समिति ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया और फिर १९३१ – ३२ के सारे शैक्षिक वर्ष में शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाने, सामान्यशिक्षात्मक ज्ञान बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया गया। बेशक, इसका अर्थ यह कतई नहीं था कि पार्टी ने पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रश्न को कार्यसूची से हटा दिया है। शिक्षा के सामान्यशिक्षात्मक पहलू को सुधारना, अध्यापन-विधि में परिष्कार करना – यह सब इस बात का पूर्वाधार है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा के निरंतर सुधरते भौतिक आधार के सहारे सारी स्कूली शिक्षा पद्धति को समाजवादी पोलीटेक्निकल शिक्षा के स्तर पर उठाया जाये।

१९३२

अखिल संघीय कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केंद्रीय समिति को पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में नोट का मसौदा[1]

१. समाजवाद का निर्माण कर रहे देश में **पोलीटेक्निकल शिक्षा सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंश होनी चाहिए।** सोवियत देश के हर नागरिक को यह समझना चाहिए कि **नियोजित, योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था** क्या है और नियोजन क्या है। अर्थव्यवस्था का राज्य द्वारा नियोजन क्या है? अर्थव्यवस्था का राज्य द्वारा नियोजन वह मुख्य लक्षण है जो समाजवादी अर्थव्यवस्था को पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से भिन्न करता है।

राजकीय नियोजन की यह अपेक्षा है कि उत्पादन की **विभिन्न शाखाओं के परस्पर संबंधों** की स्पष्ट समझ हो, जैसे कि: भारी उद्योग की भूमिका की समझ, भारी और हल्के उद्योग के परस्पर संबंधों की समझ, भारी उद्योग और कृषि के परस्पर संबंध की समझ। इन परस्पर संबंधों के सभी सूत्रों की समझ होनी चाहिए। **आधुनिक प्रविधि, उसके वैज्ञानिक आधार और उसके विकास के स्वरूप का ज्ञान पाये बिना** यह समझ नहीं आ सकती।

हमारे सोवियत देश में कोटि-कोटि सोवियत नागरिकों के हाथों राजकीय नियोजन का क्रियान्वयन होता है, उन्हें राजकीय नियोजन के मूलभूत सिद्धांतों और उसके क्रियान्वयन के पथों का पता होना चाहिए, जोकि **सामूहिक श्रम के संगठन के मूलभूत सिद्धांतों** के ज्ञान के बिना असंभव है।

२. पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में मार्क्स और एंगेल्स के कुछ कथन, लेनिन के कुछ ठोस निर्देश मौजूद हैं, पार्टी कार्यक्रम में भी इसके बारे में कहा गया है।

३. सोवियत सत्ता की स्थापना के पहले दिनों से ही शिक्षा जन-कमिसारियत ने पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने का ध्येय अपने सामने रखा। लेकिन इस कार्यभार की पूर्ति के मार्ग में कई गंभीर कठिनाइयां आईं।

४. **मुख्य कठिनाई थी पुरानी व्यवस्था से धरोहर में प्राप्त सिद्धांत एवं जीवन-व्यवहार के बीच खाई**, जिसे कोमसोमोल की तीसरी कांग्रेस में लेनिन ने "पुराने पूंजीवाद समाज से मिली एक सबसे बड़ी बुराई और विपदा ..." कहा था।[2]

पुराने स्कूलों में कतिपय विषयों (गणित, भौतिकी, रसायन, प्रकृतिविज्ञान, भूगोल, समाजविज्ञान, इतिहास) के अध्यापन में इन विषयों के मूलभूत सिद्धांतों और जीवन-व्यवहार के बीच कोई नाता नहीं जोड़ा जाता था। इसके अलावा मूलभूत सिद्धांत "ज्ञान की अत्यधिक मात्रा, जिसमें से नौ बटा दस काम अनावश्यक होता था और शेष दसवां भाग विकृत"[3] के पीछे छिपे रह जाते थे। लेनिन का कहना था कि पाठ्यक्रमों को हल्का करने और जीवन-व्यवहार के साथ संबद्ध करने की दिशा में उनका पुनर्गठन होना चाहिए। पुराने विशेषज्ञों के प्रतिरोध के कारण यह काम कठिन हो रहा था, सो स्कूल में **श्रम का अध्यापन शिक्षा से अलग-थलग हो गया**, उस पर ज्ञान का पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला जाता था।

५. सोवियत सत्ता के पहले वर्षों में पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने का काम अत्यंत विषम परिस्थितियों में हुआ – गृहयुद्ध चल रहा था। अर्थव्यवस्था तहस-नहस हो गई थी, बड़े उद्योग काम नहीं कर रहे थे, शिल्प उद्योग का, लघु किसानी अर्थव्यवस्था का प्रभुत्व था, जनता का सांस्कृतिक स्तर नीचा था, स्कूलों की दशा दयनीय थी (स्कूलों की इमारतें सैनिकों के पड़ावों के लिए और दूसरे कामों के लिए घेर ली जाती थीं, शिक्षकों को वेतन देने के लिए साधन नहीं थे, कापियां नहीं थीं, पाठ्य-पुस्तकें छापने के लिए कागज़ नहीं था)। इस सब की स्कूल में श्रम के अध्यापन पर छाप पड़े बिना नहीं रह

सकती थी। **स्कूल में श्रम का स्वरूप पहले तो संकीर्ण शिल्पी और फिर बहुशिल्पी हो गया**, जो अधिकाधिक हद तक स्कूल की शिल्प-कार्य-शालाओं में सीमित होता जा रहा था। ये कार्यशालाएं छात्रों की पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि को व्यापक नहीं, संकीर्ण बनाती थीं।

६. पूंजीवादी समाज में बाल-श्रम छोटे उद्यमपतियों द्वारा भी और माता-पिता द्वारा भी बच्चों के शोषण का स्रोत था। **नई आर्थिक नीति के दिनों में स्कूल में बच्चों का उत्पादक श्रम स्कूल के लिए मुनाफ़े का स्रोत बना दिया गया था।** बच्चों को आलू की खुदाई करने भेजा जाता था, बच्चों द्वारा स्कूल में बनाई गई चीज़ें बेची जाती थीं। प्रतिष्ठानों के साथ अनुबंधों का ध्येय श्रम के शिक्षण का स्तर ऊंचा उठाना नहीं, बल्कि मुनाफ़ा था।

७. **श्रम-संगठन का** पाठ्यक्रम तैयार नहीं किया गया है, हालांकि इस विषय के अध्यापन पर लेनिन बहुत ज़ोर देते थे (२५. २. १९२० को स्कूलेतर शिक्षा के उपविभागों के अध्यक्षों के सम्मेलन में भाषण, जो २५. ४. १९३० को 'प्राव्दा' में छपा)। इसका **पोलीटेक्निकल शिक्षा के अध्यापन पर, विशेषतः स्कूल में श्रम-शिक्षा पर बुरा प्रभाव पड़ा।**

८. ५. ६. १९३१ और २५. ८. १९३२ के केंद्रीय समिति के निर्णयों में ये कमियां इंगित की गईं।[4]

५. ६. १९३१ के निर्णय में कहा गया कि लेनिन द्वारा १९२० में दिये गये निर्देशों का अनुसरण करना चाहिए। इन निर्देशों का विकास करते हुए इस निर्णय के 'स्कूल के प्रमुख कार्यभार' शीर्षक अनुच्छेद में कहा गया:

"यह मानते हुए कि कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा का अभिन्न अंग पोलीटेक्निकल शिक्षा है, जिससे छात्रों को 'विज्ञानों के मूलभूत नियमों' का ज्ञान मिलना चाहिए, छात्रों को 'सिद्धांत और व्यवहार में उत्पादन की सभी प्रमुख शाखाओं से' परिचित कराना चाहिए, 'शिक्षा का उत्पादक श्रम के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित होना चाहिए'—संघ जनतंत्रों के शिक्षा जन-कमिसारियतों को यह सुझाव दिया जाता है कि वे १९३१ के दौरान स्कूलों में कार्यशालाओं का व्यापक जाल बिछायें, और इस कार्य को स्कूलों को अनुबंधों के आधार पर प्रतिष्ठानों, राजकीय फ़ार्मों, मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों और सामूहिक फ़ार्मों से संलग्न करने के काम

के साथ समन्वित करें।

"शिक्षा का उत्पादक श्रम के साथ संयोजन ऐसे आधार पर किया जाना चाहिए, जिससे कि छात्रों का सारा सामाजिक-उत्पादक श्रम स्कूल के शैक्षिक और चरित्र-निर्माणात्मक ध्येयों के अनुरूप हो।

"प्रतिष्ठानों, राजकीय फ़ार्मों, मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों और सामूहिक फ़ार्मों को चाहिए कि वे स्कूलों को कार्यशालाओं और प्रयोगशालाओं के लिए आवश्यक साज़-सामान और उपकरण देकर, स्कूल के काम में भाग लेने के लिए अनुभवी कर्मी और विशेषज्ञ भेजकर, उत्पादन के अध्ययन में शिक्षकों को मदद देकर इस कार्यभार की पूर्ति में शिक्षा जन-कमिसारियतों को हर तरह की सहायता प्रदान करें।

"स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने में सहयोग प्रदान करने के ध्येय से संघ जनतंत्रों के शिक्षा जन-कमिसारियत १६३१-३२ के शैक्षिक वर्ष में छोटे-छोटे पोलीटेक्निकल संग्रहालयों का जाल बिछायें, और पहले से मौजूद इलाक़ाई संग्रहालयों में विशेष पोलीटेक्निकल विभाग खोलें, सर्वोच्च आर्थिक परिषद इस काम के लिए वित्तीय और संगठनात्मक सहायता प्रदान करे।... शिक्षा जन-कमिसारियत सिने संगठनों के साथ मिलकर स्कूलों में विशेषतः पोलीटेक्निकल शिक्षा के वास्ते सिनेमा का उपयोग करने के लिए क़दम निर्धारित करें।"

कर्मियों के बारे में अनुच्छेद में ५. ६. १६३१ के केंद्रीय समिति के निर्णय में इस आवश्यकता पर बल दिया गया है कि "शिक्षकों को कारखानों, राजकीय फ़ार्मों, मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों और सामूहिक फ़ार्मों में उत्पादन कार्य से परिचित कराने का प्रबंध इस तरह किया जाये, ताकि १६३१-३२ के दौरान सभी अध्यापकगण यह परिचय पा लें।" आगे कहा गया है: "सभी औद्योगिक और कृषि उच्च शिक्षा संस्थानों में छात्रों को स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने के काम की विधियों से तथा उत्पादन-तकनीकी शिक्षा के प्रबंध से परिचित कराया जाये।"

अंततः 'प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय का भौतिक आधार' शीर्षक अनुच्छेद में कहा गया है: "सोवियत संघ की सर्वोच्च आर्थिक परिषद को यह सुझाव दिया जाये कि जो ख़रादें, औज़ार और विभिन्न बची-खुची वस्तुएं प्रतिष्ठानों में काम नहीं आ सकतीं, लेकिन स्कूलों की कार्यशालाओं के लिए उपयोगी हैं, उन्हें स्कूलों को सौंप दिया जाये।

संघ जनतंत्रों की जन-कमिसार परिषदें, इलाकाई और प्रादेशिक कार्यकारी समितियां तथा औद्योगिक सहकारिता निकाय अल्पतम अवधि में अपने-अपने इलाक़े में स्थानीय साधनों का उपयोग करते हुए आम स्कूलों के लिए शिक्षा-सामग्री और साज़-सामान तैयार करें।"

२५. ८. १९३२ को केंद्रीय समिति ने एक और निर्णय स्वीकार किया: 'प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के पाठ्यक्रमों तथा दिनचर्या के बारे में'।

इसके 'पाठ्यक्रमों के बारे में' अनुच्छेद में कहा गया है: "पोलीटेक्निकल स्कूल में श्रम-शिक्षा के प्रबंध को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हुए श्रम संबंधी पाठ्यक्रमों पर इस प्रकार पुनर्विचार करने की आवश्यकता स्वीकार की जाती है, जिससे कि शिक्षा का उत्पादक श्रम के साथ वास्तविक संयोजन सुनिश्चित किया जा सके और "सिद्धांत तथा व्यवहार में उत्पादन की मुख्य शाखाओं का" अध्ययन हो सके (अखिल संघीय कम्युनिस्ट पार्टी [बोल्शेविक] का कार्यक्रम), लेनिन का निर्देश कि पोलीटेक्निकल सिद्धांत "**सभी** विषयों के शिक्षण की अपेक्षा नहीं करता, बल्कि **सामान्यत**: आधुनिक उद्योग के **मूलभूत** सिद्धांतों के शिक्षण की अपेक्षा करता है" (२६-२७ सितंबर १९२० को अखिल रूसी केंद्रीय कार्यकारिणी के तीसरे अधिवेशन में शिक्षा जन-कमिसारियत की रिर्पोट पर लेनिन की टिप्पणी)।

इस बात को देखते हुए, जैसा कि लेनिन ने कहा था, "**पोलीटेक्निकल शिक्षा**" के निम्न "**मूलभूत सिद्धांतों**" से परिचित कराया जाना चाहिए: "विद्युत ऊर्जा के बारे में **बुनियादी** जानकारी", "यांत्रिक उद्योग में बिजली का **उपयोग**", "यही बात **रसायन उद्योग में**", "रूसी संघात्मक जनतंत्र की बिजलीकरण योजना से परिचय", "**कम से कम १-३ बार** बिजलीघर, कारखाना, राजकीय फ़ार्म देखने जाना," कृषिविज्ञान, आदि की **अमुक** बुनियादी बातें जानना। **न्यूनतम ज्ञान की परिधि विस्तार में** निरूपित की जाये।"

"इस सिलसिले में और इसके साथ-साथ यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि माध्यमिक विद्यालय के छात्र बुनियादी औज़ारों से काम लेना सीख लें और लकड़ी, धातु, आदि के संसाधन का काम सीख लें"।

12-1000

'शैक्षिक कार्य के संगठन और स्कूल की दिनचर्या निश्चित करने के बारे में' अनुच्छेद में कहा गया है : "शिक्षा जन-कमिसारियत के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा जाये कि वह छात्रों की आयु के अनुसार अलग-अलग विषयों की तथा अलग-अलग शैक्षिक कार्यों (जैसे कि प्रयोगशाला में, उत्पादन स्थली पर, स्कूल के बाग़, खेत में) के अध्यापन की विधि तैयार करे।" आगे कहा गया है कि दो महीने की अवधि में "स्कूलों की कार्यशालाओं और कार्य-कक्षों को तत्संबंधी ख़रादों, औज़ारों और सामग्रियों से सुसज्जित करने की मानक योजना बनाई जाये, ताकि पोलीटेक्निकल स्कूल के गठन के लिए उपयुक्त शैक्षिक आधार सुनिश्चित किया जा सके।"

६. इस सबके बावजूद ५.९.१९३१ और २५.८.१९३२ के केंद्रीय समिति के निर्णयों पर अमल नहीं किया गया।

१९३५ में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के लिए श्रम-शिक्षा के पाठ्यक्रम प्रकाशित किये गये।

प्राथमिक विद्यालय में नगर और देहात के लिए श्रम-शिक्षा के पाठ्यक्रम एक जैसे ही हैं।

इनकी विशिष्टता है उस पोलीटेक्निकल ज्ञान का परिसीमन, जो पूर्ववर्ती वर्षों में दिया जाता था, श्रम को शिल्प के कुछ अभ्यासों तक सीमित किया गया है, बच्चों को प्रविधि के बारे में दी जानेवाली जानकारी नितांत अव्यवस्थित और सांयोगिक है, ज्ञान का उपयोग केवल खिलौने बनाने के लिए किया जाता है और (यह बात विशेषतः लाक्षणिक है) सारा पाठ्यक्रम सवा सोलह आने शहरी है।

माध्यमिक विद्यालय में श्रम-शिक्षा के पाठ्यक्रम नगरों और देहातों के लिए विभिन्न हैं। ग्रामीण पाठ्यक्रम कहीं अधिक हद तक जीवन से संबंधित हैं। बेशक, जिसे समाजोपयोगी श्रम कहा गया है वह मात्र उत्पादक श्रम है, उसमें सामाजिक तत्व बहुत कम है। किंतु प्रविधि, उसके महत्व के बारे में तो अक्षम्य रूप से कम है, पोलीटेक्निकल रुख का तो नामोनिशान नहीं है। पाठ्यक्रम उत्पादन से असंबद्ध ही है।

नगरों के पाठ्यक्रम उत्पादन से बिल्कुल नहीं जुड़े हुए हैं, उन्हें बेजान पढ़ाई ही बना दिया गया है, कृषि के साथ उनका कोई वास्ता नहीं है और उनसे पोलीटेक्निकल दृष्टि विकसित नहीं होती है।

श्रम-शिक्षा के सभी पाठ्यक्रमों का दूसरे विषयों के अध्ययन के साथ कोई संबंध नहीं है।

यह बात पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन के कथनों के विरुद्ध जाती है और ५.६.१६३१ तथा २५.८.१६३२ के केंद्रीय समिति के निर्णयों के विरुद्ध भी, जिनमें लेनिन के निर्देशों के पालन की आवश्यकता इंगित की गई है।

पिछले दिनों एकत्रित की गई सामग्री से यह पता चलता है कि श्रमाधारित पोलीटेक्निकल शिक्षा का काम **समेटा जा रहा है, इसे एक अतिरिक्त विषय का रूप दिया जा रहा है और कुछ स्कूलों से पूरी तरह हटाया जा रहा है।**

उपरोक्त सभी बातों के आधार पर:

१. शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच खाई पाटने में श्रमाधारित शिक्षा-दीक्षा के महत्व को देखते हुए **श्रम-शिक्षा को अविलंब पुनः अनिवार्य बनाया जाये**, इसके उचित प्रबंध के लिए आवश्यक घंटों की संख्या भी तय कर देनी चाहिए।

२. नगर और देहात के अधिकाधिक समीप आने की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए **श्रम-शिक्षा का एकीकृत पाठ्यक्रम** बनाना आवश्यक है, इसमें नगरों के माध्यमिक विद्यालयों में कृषि विज्ञान के तत्व बढ़ाये जाने चाहिए, जबकि ग्रामीण विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रमों में सामान्य टेक्नोलोजी के तत्व।

३. मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन के निदेशों पर, पार्टी के कार्यक्रम और ५.६.१६३१ तथा २५.८.१६३२ के केंद्रीय समिति के निर्णयों पर अमल करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि:

क) **श्रम-शिक्षा तथा सभी दूसरे विषयों के अध्यापन के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित किया जाये,** क्योंकि इसके बिना, एक ओर, छात्रों के लिए श्रम सार्थक नहीं हो सकता, उन्हें उत्पादन के बुनियादी नियमों की समझ दिलाना, उनका आवश्यक पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण बनाना असंभव है, दूसरी ओर, श्रम-शिक्षा का दूसरे विषयों के अध्यापन के प्रबंध पर प्रभाव क्षीण पड़ता है, जो इस बात में व्यक्त होता है कि छात्रों में सभी प्रश्नों के प्रति अधिक ठोस रुख बनता है, शिक्षा में शब्दजाल

से अधिक आसानी से छुटकारा पाया जाता है ;

ख) छात्रों का पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण अधिक व्यापक बनाने और ज्ञान-भंडार बढ़ाने की दृष्टि **से श्रम-शिक्षा को अधिक सुव्यवस्थित** करना चाहिए, **उसे संकीर्ण व्यावसायिक शिक्षा नहीं बनने देना चाहिए** जैसा कि अक्सर होता है और पोलीटेक्निकल शिक्षा के ध्येयों को पृष्ठभूमि में हटाता है ;

ग) **उत्पादक श्रम** के चरित्र-निर्माणात्मक महत्व को देखते हुए, जिसमें निर्धारित लक्ष्य संगठनकारी भूमिका अदा करता है – चरित्र और अनुशासन सुदृढ़ करने में सहायक होता है – यह नहीं होने देना चाहिए कि उत्पादक श्रम का स्थान "उत्पादन प्रक्रियाएं" ले लें या छात्र ऐसी चीज़ें बनायें, जो किसी को नहीं चाहिए, जिनके ढेर तहख़ाने में लगे रहें ; उत्पादक श्रम चुनते समय प्रत्येक कक्षा के छात्रों की शक्ति, अभिरुचि और प्रशिक्षण स्तर को ध्यान में रखा जाये ;

घ) **सामूहिक श्रम** के अपार महत्व को ध्यान में रखते हुए श्रम-शिक्षा को कोरी व्यक्तिगत शिक्षा न बनने दिया जाये, बल्कि क्रमशः सामूहिक श्रम के सरलतम रूपों से अधिक जटिल रूपों की ओर बढ़ा जाये, मिलकर लक्ष्य निर्धारित करना, लक्ष्य की वास्तविकता आंकना, कार्य की योजना बनाना और उसके पालन का हिसाब रखना सिखाया जाये। छात्रों के सामूहिक श्रम को आस-पास के उत्पादन कार्यों के साथ अधिकाधिक घनिष्ठ रूप से जोड़ा जाये और ऐसा करते हुए वामपंथी विकारों से बचा जाये, जिनमें बच्चों की आयु-विशेषताओं को और शिक्षा के साथ श्रम के घनिष्ठ संबंध को ध्यान में नहीं रखा जाता।

४) ५.९.१९३१ और १५.८.१९३२ के केंद्रीय ससिति के निर्णयों में निर्धारित व्यावहारिक क़दमों पर अमल तुरंत ही शुरू किया जाये:

क) **स्कूलों और प्रतिष्ठानों, राजकीय फ़ार्मों, मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों व सामूहिक फ़ार्मों के बीच संबंध सुदृढ़ किये जाये**, कार्यशालाओं को सुसज्जित करने के काम में स्कूलों की मदद के मामले में भी और "स्कूल के काम में भाग लेने के लिए अनुभवी कर्मी और विशेषज्ञ भेजने, उत्पादन के अध्ययन में

शिक्षकों की मदद करने, आदि" के सिलसिले में भी ;

ख) सभी औद्योगिक और कृषि उच्च शिक्षा संस्थानों में छात्रों को स्कूलों को पोलीटेक्निकल बनाने के काम की विधियों से तथा उत्पादन-तकनीकी शिक्षा के प्रबंध से **परिचित कराया जाये ;**

ग) सभी शिक्षकों को कारखानों, राजकीय फ़ार्मों, मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों और सामूहिक फ़ार्मों में उत्पादन के आधारभूत नियमों से परिचित कराया जाये।

५) ५.६.१६३१ और २५.८.१६३२ के निर्णयों को पूरा करते हुए:

क) विभिन्न कक्षाओं के छात्रों को प्रतिष्ठान, सामूहिक और राजकीय फ़ार्म दिखाने का कार्यक्रम बनाया जाये (इन यात्राओं के ध्येय संकीर्ण व्यावसायिक नहीं होने चाहिए, जैसा कि हम १६३५ के कार्यक्रमों में देखते हैं) ;

ख) सभी इलाक़ाई संग्रहालयों में **पोलीटेक्निकल विभाग खोले जायें ;**

ग) प्रविधि, यात्राएं, प्राकृतिक शक्तियों पर विजय आदि विषयों पर **बालोपयोगी साहित्य की सूची बनाई जाये ;**

घ) पोलीटेक्निकल शिक्षा के प्रमुख प्रश्नों पर प्रकाश डालने के लिए **फ़िल्में** बनाई जायें।

६) पोलीटेक्निकल श्रम-संस्थान के प्रतिनिधियों, प्रतिष्ठानों के इंजीनियरों, कृषि विशेषज्ञों, प्रमुख प्रतिष्ठानों के अग्रणी कर्मियों तथा श्रम समेत विभिन्न विषयों के अध्यापकों का एक आयोग बनाया जाये और उसे मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन के कथनों तथा प्राप्त अनुभव के आधार पर निम्न कार्य सौंपे जायें:

क) प्राथमिक विद्यालय के लिए पोलीटेक्निकल शिक्षा का न्यूनतम पाठ्यक्रम तैयार करना ;

ख) माध्यमिक विद्यालय के लिए पोलीटेक्निकल शिक्षा का न्यूनतम पाठ्यक्रम तैयार करना ;

ग) अध्यापन प्रशिक्षण विद्यालयों के लिए श्रम-संगठन का पाठ्यक्रम तैयार करना ;

घ) प्राथमिक, अपूर्ण माध्यमिक और माध्यमिक विद्यालयों में पोलीटेक्निकल शिक्षा के अध्यापन की विधि तैयार करना।

७) स्वीकृत निर्णयों के आधार पर :

क) प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के नये पाठ्यक्रम बनाये जायें ;

ख) अध्यापन प्रशिक्षण विद्यालयों और संस्थानों के लिए पाठ्यक्रम तैयार किये जायें, इनमें श्रम-शिक्षा अनिवार्य हो ;

ग) शिक्षकों के लिए, श्रम के अध्यापकों और विशेषज्ञों के लिए स्कूल में **श्रम-अध्यापन की विधि-पुस्तिका तैयार की** जाये ;

घ) **कार्यशाला के साज़-सामान के मानक तैयार किये जायें ;**

ङ) प्रतिष्ठानों और फ़ार्मों में काम में बड़ी कक्षा के छात्रों की शिरकत के रूप निर्धारित किये जायें ;

च) **श्रम-शिक्षा के अध्यापकों के प्रभेद**, उनका सामान्य शिक्षा तथा श्रम-प्रशिक्षण का स्तर और स्वरूप निर्धारित किये जायें ;

छ) श्रम-शिक्षा के अध्यापकों के प्रशिक्षण और पुन:प्रशिक्षण का प्रबंध किया जाये।

१९३६

परिच्छेद ३

श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण

क्या लड़कों को "औरतों के काम" सिखाने चाहिए?

'सेंट पीटर्सबर्ग में जनशिक्षा के आयोग की १६०८ की रिपोर्ट' में एक विशेषज्ञ ने दस्तकारी के अध्यापन के बारे में अपनी राय देते हुए लिखा है: "दस्तकारी के विषय में मैं सहर्ष यह कह सकता हूं कि सभी सहशिक्षा विद्यालयों में इसकी शिक्षा न केवल लड़कियां, बल्कि लड़के भी पाते हैं, लड़के सहर्ष ये काम सीखते हैं और कुछ स्कूलों में वे सिलाई और बुनाई, आदि में लड़कियों से आगे हैं।"

उपरोक्त रिपोर्ट में से यह उद्धरण पिछले वर्ष 'वेस्त्निक वोस्पितानिया'[1] (शिक्षा-दीक्षा दूत) के दिसंबर अंक में छपा था। इतिवृत्त स्तंभ के अंतर्गत इसे छापते हुए इस स्तंभ के संपादक ने इस बात पर संदेह प्रकट किया कि क्या लड़कों को सिलाई सिखाना वाकई फायदेमंद है?

मैं इस विषय पर दो शब्द कहना चाहती हूं।

सर्वप्रथम, मैं इस प्रश्न को अधिक सामान्य रूप में रखूंगी: क्या लड़कों को वे काम सिखाये जाने चाहिए, जो अभी तक केवल स्त्रियों के माने जाते हैं, जैसे कि: सिलाई, खाना बनाना, कपड़े धोना, नन्हे बच्चों की देखभाल करना, इत्यादि।

आधुनिक समाज में परिवार का जीवन अपनी अलग गृहस्थी से संबधित अनेक छोटे-छोटे कार्यों से जुड़ा हुआ है और प्रत्यक्षतः अभी बहुत देर तक ऐसा ही रहेगा। भविष्य में उत्पादन के पुनर्गठन और

मामाजिक जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन से इस पहलू में काफ़ी तब्दीलियां आयेंगी, लेकिन अभी तो पारिवारिक जीवन में खाना पकाना, कमगें की सफ़ाई करना, कपड़े सीना और उनकी मरम्मत करना, बच्चों का पालन-पोषण करना, आदि कामों के बिना गुज़र नहीं है। और इन सभी कामों का बोझ स्त्री के कंधों पर पड़ता है।

संपन्न परिवारों में यह श्रम उजरती कामगारिनों – बावर्चिन, नौकरानी, धाय – पर डाल दिया जाता है। संपन्न स्त्री स्वयं इस प्रकार छुटकारा पाती है कि यह श्रम दूसरी स्त्री पर डाल देती है, जिसके लिए इस काम से छुटकारा पाना संभव नहीं है। बहरहाल, गृहस्थी का सारा काम करती स्त्री ही है। मज़दूर परिवार में पति कभी-कभी स्त्री का हाथ बंटाता है। लेकिन वह ज़रूरत का मारा ऐसा करता है। काम से लौटकर, छुट्टी के दिन या बेकारी के दिनों में मज़दूर कभी-कभार दूकान से सौदा भी ले आता है, कमरे में झाड़ू लगा देता है और बच्चे की देख-रेख भी करता है। बेशक हर कोई मज़दूर सदा ऐसा करता हो, ऐसा नहीं है और फिर उसे बहुत कुछ करना आता भी नहीं है (कपड़े सीना, धोना), सो, पत्नी, चाहे वह भी सारा दिन घर से बाहर काम करती हो, घर लौटकर कपड़े धोने, घर की सफ़ाई करने में जुट जाती है, और आधी रात गये तक बैठी कपड़ी सीती रहती है, जबकि पति कब का सो रहा होता है। मज़दूरों में तो पति कभी-कभार घर के काम में पत्नी का हाथ बंटा भी देता है, लेकिन तथाकथित बौद्धिक परिवारों में, उनके साधन चाहे कितने ही सीमित क्यों न हों, पति सदा गृहस्थी के काम से अलग रहता है, पत्नी से जैसे बन पड़े, अपना "औरतों का" काम संभाले। बर्तन धोते या बटन टांकते "बुद्धिजीवी" का तो सभी मख़ौल ही उड़ायेंगे।

बुर्जुआ प्रेस में (विशेषत: पश्चिम में) इस बारे में बहुत कुछ कहा जाता है कि गृहस्थी वह क्षेत्र है, जिसमें स्त्री अपनी शक्ति का सर्वाधिक फलप्रद उपयोग कर सकती है। मनुष्य केवल उसी क्षेत्र में कोई महान कार्य कर सकता है, जो उसकी व्यक्तिगत विशेषता के सर्वाधिक अनुरूप होता है और स्त्री की व्यक्तिगत विशेषता ऐसी है कि गृहस्थी के छोटे-मोटे काम ही उसके सबसे अधिक अनुरूप हैं। स्त्री को इस बात की चिंता करनी चाहिए कि वह आदर्श गृहिणी बने, और पारिवारिक

जीवन के दायरे से निकलने तथा बौद्धिक श्रम में पुरुष का प्रतियोगी बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। सो, वे कहते है, इसका कोई कारण नहीं कि धूल पोंछने और जुराबों की मरम्मत के काम को हिकारत से देखा जाये – यह काम हेय कतई नहीं, उलटे सम्मान योग्य है।

इन सब बातों में कितना पाखंड है इसका पता इतने से ही चल जाता है कि गृहस्थी के काम को सम्मानजनक बतानेवाले पुरुष कभी इसमें हाथ नहीं बंटाते। क्यों? क्योंकि मन ही मन वे इस श्रम को हेय समझते हैं, इसे कम विकसित, निम्नतर आवश्यकताओंवाले जीव के लिए ही उपयुक्त मानते हैं।

ये सब बातें कि प्रकृति ने स्त्री को बनाया ही गृहस्थी का काम करने के लिए है – वैसी ही बकवास हैं, जैसे कि वे बातें जो कभी दासस्वामी किया करते थे कि दासों को प्रकृति ने बनाया ही इसलिए है कि वे दास हों।

असल में देखा जाये, तो घर के काम में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो इसे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए अधिक अनुकूल बनाता हो। कुछ ऐसे काम करना, जिनमें भारी शारीरिक बल की आवश्यकता होती है, स्त्री के बस की बात नहीं है, लेकिन क्योंकर पुरुष स्त्री के साथ मिलकर गृहस्थी का काम नहीं कर सकता? बात यह नहीं है कि गृहस्थी स्त्री का जन्मजात कार्यक्षेत्र है, बल्कि यह कि पुरुष को कमाई करने के लिए घर से बाहर रहकर काम करना पड़ता है। जहां तक ऐसा होता है, वहां तक तो स्त्री द्वारा ही घर का सारा काम किये जाने में कुछ औचित्य है। लेकिन चूंकि अधिकाधिक स्त्रियों को वेतन के लिए काम में अपना समय लगाना पड़ रहा है, सो गृहस्थी का काम उस पर अतिरिक्त बोझ होता जा रहा है और यह कोई न्याय की बात नहीं है कि पुरुष यहां उसकी मदद को नहीं आता। ठीक इसी तरह यदि पुरुष का काम ऐसा है कि उसे काफ़ी ख़ाली समय मिलता है तो यह न्याय की बात नहीं है कि वह पत्नी के साथ गृहस्थी का काम बराबर-बराबर करना अपने लिए अपमानजनक मानता है।

स्वतंत्र स्कूल[2] लोगों का जीवन बिगाड़नेवाले सभी अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करता है। यह अंधविश्वास कि गृहस्थी का काम निम्नतर अपेक्षाओंवाले जीवन के लिए ही उचित काम है, पुरुष और स्त्री के

मंबंधों को बिगाड़ता है, उनमें असमानता के बीज बोता है। यह अंधविश्वास न जाने कितने नारी जीवनों को डुबो चुका है, जाने कितने परिवारों में विलगाव और परस्पर असमझ पैदा कर चुका है। स्वतंत्र स्कूल संयुक्त शिक्षा-दीक्षा का प्रबल समर्थक है, क्योंकि वह मानता है कि संयुक्त कार्य और विकास की समान परिस्थितियां युवक-युवतियों में परस्पर समझ बनाने, उन्हें आत्मिक रूप से एक दूसरे के निकट लाने में सहायक होंगी और इस तरह स्त्री-पुरुष के बीच सामान्य संबंधों का पूर्वाधार बनेंगी। इस दृष्टिकोण को मानते हुए स्वतंत्र स्कूल को दस्तकारी के मामले में भी लड़के-लड़कियों के बीच भेद नहीं करना चाहिए। यह आवश्यक है कि लड़के-लड़कियां दोनों समान रूप से गृहस्थी के सभी काम करना सीखें और इन्हें अपनी मर्यादा से नीचे न समझें।

जिस किसी ने बच्चों का प्रेक्षण किया है, वह जानता है कि बचपन के शुरू में लड़के भी लड़कियों की ही भांति खाना पकाने, बर्तन धोने और घर के दूसरे सभी कामों में सहर्ष मां का हाथ बंटाने के लिए तत्पर होते हैं। यह सब उन्हें इतना दिलचस्प लगता है! लेकिन आम तौर पर परिवार में छोटी उम्र से लड़के-लड़की के बीच भेद किया जाने लगता है। लड़कियों को प्याले धोने, मेज़ पर बर्तन लगाने को कहा जाता है और लड़के से कहा जाता है: "क्या तुम रसोई में घुसे रहते हो? यह क्या लड़कों का काम है?" लड़कियों को गुड़ियां, खिलौनों के बर्तन आदि दिये जाते हैं, लड़कों को इंजन, सिपाही। स्कूल जाने की उम्र का होते-होते लड़कों के मन में "औरतों के काम" के प्रति एक हेय दृष्टि बन जाती है। किंतु यह बिल्कुल सतही ही होती है और स्कूल में यदि शिक्षा दूसरे ढंग से दी जाती है तो यह भावना तुरंत ही विलुप्त हो जाती है। इसके लिए लड़कों को भी लड़कियों के ही समान सीना, बुनाई करना, कपड़ों की मरम्मत करना, आदि वे सब काम सिखाने चाहिए, जिनके बिना गुज़ारा नहीं हो सकता और जो न आने से आदमी निस्सहाय और पराश्रित हो जाता है। यदि यह पढ़ाई ठीक से कराई जाये, तो लड़के सहर्ष ये सब काम सीखेंगे, जिसका उदाहरण हम पीटर्सबर्ग के स्कूलों में देखते हैं (उल्लेखनीय है कि सहशिक्षा विद्यालयों में ही ऐसी सफलता पाई गई है)। तदुपरांत बच्चों को (लड़कों-लड़कियों में भेद किये बिना) यह काम सौंपना

चाहिए कि वे नाश्ता तैयार करें, बर्तन धोयें, कमरे साफ़ करें, सफ़ाई का ध्यान रखें, इत्यादि। उपयोगी बन पाने की इच्छा, सौंपे गये काम को अच्छी तरह पूरा करने की कामना, काम में लगन – इस सबकी बदौलत लड़का "औरतों के काम" के प्रति अपनी हिकारत शीघ्र ही भूल जायेगा।

बेशक यह उम्मीद करना हास्यास्पद होगा कि लड़कों को "औरतों के काम" सिखाने के कोई महान परिणाम होंगे, लेकिन यह उन छोटी-छोटी बातों में से एक है, जिनसे स्कूल का आम वातावरण बनता है और जिनकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

१६१०

स्कूल के समाजोपयोगी कार्य के प्रश्न पर कुछ विचार

सोवियत स्कूल को छात्रों को जो दक्षताएं प्रदान करनी चाहिए, उनमें प्रमुख है सामाजिक कार्य करने की दक्षता। यह कार्य भी छात्रों को अकेले नहीं, बल्कि सामूहिक रूप से करना सिखाना चाहिए।

हमारे कृषिप्रधान देश में छोटे मिल्की की मनोवृत्ति अत्यंत प्रबल है, ऐसे छोटे मिल्की की, जो "हर कोई अपने लिए" "मुझे किसी से क्या वास्ता" जैसी नैतिकता के ही उपदेश देता है। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारा देश सहकारिता के, सामूहिकता के मार्ग पर बढ़े, तो सभी तरह की सहकारिता के पनपने में सहायक क़दमों के साथ-साथ हमें छोटे मिल्की की मनोवृत्ति पर वैचारिक विजय पाने के लिए भी सभी संभावनाओं का उपयोग करना चाहिए। स्कूल इस कार्य का एक आधार-केंद्र हो सकता है। पाठ्य-पुस्तकें पहली पंक्ति से अंतिम पंक्ति तक सामूहिकतावादी भावना से ओत-प्रोत होनी चाहिए। पुस्तकों की मदद से नियमबद्ध रूप से बच्चों में यह आदत विकसित करनी चाहिए कि वे प्रत्येक प्रश्नों को समष्टि के हित की दृष्टि से देखें। प्रत्येक सरलतम और जटिलतम प्रश्न को इस प्रकार लेना कि बच्चा अपने को समष्टि के अंश के रूप में देखना सीखे – यह काम हमें अभी ठीक से नहीं आता है। यह काम हमें सीखना है।

दूसरी बात। इस बारे में बहुत कुछ लिखा गया है कि स्कूल में स्वप्रबंध ऐसा होना चाहिए, ताकि छात्र अपने स्कूली व्यावहारिक कार्यों

के समाधान को सारे ग्रुप, सारी कक्षा, सारे स्कूल के हितों की दृष्टि से देखें। स्वप्रबंध से बच्चों को जीवन द्वारा प्रस्तुत कार्यभारों को मिल-जुलकर, संयुक्त प्रयासों से पूरा करने का अभ्यास प्राप्त होना चाहिए। इस बारे में बहुत कुछ कहा गया है कि स्वप्रबंध इस तरह आयोजित होना चाहिए कि सभी बच्चे स्वप्रबंध कार्य में भाग लें, कि प्रत्येक छात्र निश्चित सामाजिक कार्य करे, जिसके लिए वह छात्र-समुदाय के सम्मुख उत्तरदायी हो।

लेकिन यदि हम केवल स्कूल में पाठों को सामूहिकतावादी बनाने और स्कूल के स्वप्रबंध में सामूहिकतावादी भावना लाने तक ही सीमित रहें, तो यह ग़लती होगी, हालांकि ये दोनों कार्यभार नितांत महत्वपूर्ण हैं। हमें छात्रों को यह सिखाना चाहिए कि वे सामाजिक जीवन की सभी परिघटनाओं को सामूहिकतावादी सामाजिक कार्यकर्ता की दृष्टि से देखें।

हमें सर्वप्रथम छात्रों में सामाजिक जीवन की परिघटनाओं के प्रति गहरी रुचि जगानी चाहिए। यह राजकीय वैज्ञानिक परिषद के पाठ्यक्रम का एक ध्येय है – बच्चों को अपने इर्द-गिर्द के जीवन में जो हो रहा है वह देखना सिखाना। हमें उनकी केवल आंखें ही नहीं खोलनी हैं। इन पाठ्यक्रमों के अनुसार शिक्षा की विधि ऐसी होनी चाहिए कि उससे भावनात्मक उत्साह जागे। महत्वपूर्ण बात यह है कि छात्र गांव में फैले डबरे और गंदगी को केवल देखें ही नहीं, बल्कि उन्हें इस बात की चिंता हो कि गांव में गंदगी है, कि रास्ते पर डबरे है। ज़रूरत इस बात की है कि यह गंदगी उन्हें व्यथित करे, उन्हें चैन से बैठने न दे। वही स्कूल अच्छा है जो छात्रों का ऐसी शिक्षा-दीक्षा दे सकता है कि वे सामाजिक जीवन की सभी घटनाओं से अपना वास्ता मानेंगे। पुराने ज़माने के स्कूल का किसी बात से कोई वास्ता नहीं था। सोवियत स्कूल हर बात से वास्ता रखता है।

लेकिन यह भी आधा काम ही है। छात्रों में यह आदत पैदा की जानी चाहिए कि वे हर प्रश्न के प्रति सक्रिय रुख अपनायें। सड़क की मरम्मत करने की ज़रूरत है। सड़क ख़राब है। छात्र इसका महत्व समझते हैं। यह बात उन्हें परेशान करती है। अगला क़दम ऐसा होगा: हमारा छात्र-समुदाय ख़राबी को दूर करने के लिए क्या कर सकता

है ? यहां अत्यंत महत्वपूर्ण काम शुरू होता है : अपनी शक्ति, अपनी योग्यता आंकी जाती है, काम की योजना बनाई जाती है। योग्यता पर्याप्त नहीं है। क्या यह हासिल की जा सकती है ? कितने दिनों में, किस तरह ? क्या यह काम छात्रों की शारीरिक सामर्थ्य में होगा ? आपस में काम का बंटवारा किस तरह करना अच्छा होगा ? छात्र इस निश्चय पर पहुंचते हैं : हम अकेले यह काम नहीं कर पायेंगे। तो किससे बात की जाये ? किसे इस काम में शामिल किया जाये ? किस तरह ऐसा किया जाये ? अपनी शक्ति और योग्यता को आंकना, दूसरों के साथ मिलकर काम कर सकना – यह है वह कार्यभार जो छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत है। छात्रों को स्वयं इन प्रश्नों पर काम करने दो, उन्हें ग़लतियां करने दो, ग़लतियों से सबक़ सीखने में उनकी मदद करो। जहां अध्यापक छात्रों को हफ़्ते भर के लिए कोई सामाजिक कार्य सौंपता है, फिर उनके काम की जांच करता है, वहां यह सब ठीक नहीं किया जाता। अध्यापक पहलक़दमी पेश कर सकता है, सलाह दे सकता है, लेकिन वह प्रमुख कर्ता नहीं होना चाहिए। छात्रों को स्वयं अपने लिए कार्यभार निर्धारित करना चाहिए, उन्हें अपने परिणामों को आंकना सीखना चाहिए।

अपने लिए सामाजिक कार्यभार तय करना, उन्हें सामूहिक रूप से पूरा करना, अपने समुदाय में नई शक्ति (उदाहरणतः, कुशल वयस्कों को) शामिल करना, प्रस्तुत कार्यभार की पूर्ति में रुचि रखनेवाले दूसरे समुदायों के साथ मिलकर काम करने के लिए सहमत हो पाना – यह सब स्कूल में सिखाया जाना चाहिए। यह बात मानी नहीं रखती कि स्कूल द्वारा किये गये सामाजिक कार्यों की संख्या कितनी अधिक है – "चाहे कम हो, पर बेहतर हो" – वे सामाजिक आदतें महत्वपूर्ण हैं जो स्कूल छात्रों में रोपता है।

हमारे पायानियरों को भी सामाजिक कार्य करना नहीं आता। वे तो स्कूल से भी अधिक हद तक मात्र प्रचार-कार्य को ही, उसके परिणाम का ध्यान किये बिना, सामाजिक कार्य मानते हैं, उन्हें अपनी शक्ति आंकना, काम का बंटवारा करना और भी कम आता है, अपने आप पर अत्यधिक भरोसा और दूसरे संगठनों के साथ मिलकर काम करने की योग्यता का अभाव उनमें और भी अधिक है। स्कूलों में बच्चों

में सामाजिक कार्य की जो आदत डाली जायेगी, जो दक्षता दी जायेगी, उसे बच्चे पायोनियर टुकड़ियों में लायेंगे। ये आदतें पायोनियरों के ज़रिए असंगठित बाल समूह में भी फैलेंगी। युवा पीढ़ी सामाजिक कार्यों में सक्रिय बनेगी, उसे सामूहिक रूप से, संयुक्त प्रयासों से सामाजिक कार्यभार निभाने आयेंगे।

यह ध्येय इस योग्य है कि इसे पाने के लिए काम किया जाये।

१९२६

बाल मंडलियों का काम

हमारा ध्येय है बच्चों में सामूहिक रूप से काम करने और जीने की योग्यता विकसित करना। लेकिन हम इस प्रश्न को हल करने पर अभी आये ही आये हैं। अभी तक इस दिशा में जो कुछ किया गया है वह पहले क़दम ही हैं।

इसके अलावा जो कुछ किया जाता है वह इक्के-दुक्के श्रेष्ठ स्कूलों में ही किया जाता है; जबकि बच्चों के कार्यकलाप के सामूहिक रूप आम, सर्वत्र व्याप्त रूप होने चाहिए, जिनका उपयोग स्कूलों में भी और स्कूलों के बाहर भी किया जाये।

सामूहिक श्रम का एक रूप है मंडलियां।

लेकिन यदि हम यह देखें कि व्यवहार में हमारे यहां कैसी मंडलियां हैं, तो हम पायेंगे – ये सभी मंडलियां बहुत हद तक एकरूपी हैं, इनका स्वरूप बालसुलभ नहीं है, शैक्षिक है, कवायदी है। इसके अलावा, ज़्यादातर मामलों में यें बच्चों की नहीं किशोरों की मंडलियां हैं।

हम राजनीतिक और नाटक मंडलियों, अनीश्वरवादियों की मंडलियों, साहित्यिक, कलात्मक, समूहगान मंडलियों, शारीरिक अभ्यास मंडलियों की चर्चा सुनते हैं। इनसे कुछ भिन्न हैं किशोर प्रकृति प्रेमियों, रेडियो प्रेमियों, आदि की मंडलियां। लेकिन शारीरिक अभ्यास की, नाटक और राजनीतिक मंडलियों की तुलना में इनकी संख्या बहुत कम है।

यदि हम यह प्रश्न रखें कि क्या बच्चे, विशेषतः ग्रामीण बच्चे,

अपनी पहलक़दमी से मंडलियां गठित करते हैं, तो साफ़-साफ़ कहना होगा – नहीं, वे अपनी पहलक़दमी पर ऐसा नहीं करते।

उधर आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों और किशोरों की मंडलियां दैनंदिन जीवन का अंग बन जायें। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चे छोटी उम्र से ही मंडली के काम में हिस्सा लें, अपनी पहल, अपनी पेशक़दमी, अपना शौक़ इसमें लगायें। मछेरों की, सेनिटरी की, बाग़बानी की, चित्रकारी, बढ़ईगिरी की, वाचकों की, चांदमारी की, पाककला की, समाचारपत्र शौक़ीनों की, मशीनों-मोटरों के शौक़ीनों की मंडली, साक्षरता मंडली, इत्यादि, इत्यादि।

तीन, पांच बच्चे कोई काम करने की सोचते हैं, अपने लिए कोई लक्ष्य निर्धारित करते हैं – वे सामान्य ध्येय से, सामान्य रुचि से ऐक्यबद्ध मंडली बना लें। कोई नियमावली, किसी तरह की औपचारिकता नहीं चाहिए, जो काम में सारी रुचि ख़त्म कर डालती है। मिल-जुलकर लक्ष्य निर्धारित करना और मिल-जुलकर उसे पाने का प्रयास करना – यह नितांत महत्वपूर्ण कार्य है। स्कूल, पायोनियर संगठन – सभी को और हर किसी को बाल मंडलियों के गठन में सहयोग प्रदान करना चाहिए, उनकी मदद को आना चाहिए।

छोटे बच्चों की मंडलियों में सदस्य भी कम होंगे और लक्ष्य भी कम समय में पाये जा सकनेवाले होंगे, अधिक बालसुलभ होंगे। महत्व लक्ष्यों का नहीं है, बल्कि मिल-जुलकर लक्ष्य निर्धारित करने और उस तक पहुंचने की आदत का है। धीरे-धीरे छोटी अस्थाई मंडलियां अधिक दीर्घकालीन मंडलियों का रूप लेंगी, उन्हें निश्चित रूप प्रदान करने, उन्हें सुसंगठित बनाने, उनमें श्रम-विभाजन करने की आवश्यकता पैदा होगी, बच्चे अपने काम के बारे में बताना चाहेंगे, रिपोर्ट देना भी चाहेंगे।

मंडलियों में काम से पायोनियर आंदोलन के लिए अत्यंत अनुकूल ज़मीन बनती है। मंडलियों में काम करने के अभ्यस्त बच्चे पायोनियर संगठन के काम में भी पहलक़दमी, मिलकर काम करने की योग्यता ला सकेंगे।

सबसे प्रमुख बात है अधिक से अधिक उदाहरण हों और कम से कम औपचारिकताएं, पंजीकरण, नियमावलियां।

13–1000

वयस्कों को बच्चों के शौक़िया मंडली कार्य में हर तरह से मदद करनी चाहिए।

सबसे बड़ी सहायता निम्न है। हमारे बच्चों को बहुत कम काम करने आते हैं, लेकिन वे बहुत अधिक ज्ञान और दक्षता पाना चाहते हैं, उन्हें इसकी आवश्यकता है। **हर वयस्क को, जिसे कोई काम करना आता है, बच्चों को यह काम सिखाना चाहिए।** मिसाल के लिए एक कामगरिन को सिलाई मशीन पर कपड़े सीने आते हैं – वह तीन लड़कियों की मंडली को यह काम सिखा दे। मज़दूर को लकड़ी की पेटियां बनानी आती हैं – वह लड़कों को यह काम सिखा दे। डाक्टर लड़के-लड़कियों के दल को प्राथमिक सहायता देना सिखा दे, नर्स पट्टी बांधना सिखाये, किसान अपना काम सिखाये, इत्यादि, इत्यादि।

आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे भांति-भांति का ज्ञान आत्मसात करें, योग्यता पायें। मज़दूर छुट्टी पर आया है। वे उससे बात करें कि उसे जो कुछ आता है उसमें से कुछ उन्हें सिखा दे। वे उसके साथ समझौता कर लें: वह उन्हें अमुक काम सिखायेगा और वे उसकी क्यारियों की निराई कर देंगे, अहाता साफ़ कर देंगे, नाली खोद देंगे, घास काट देंगे, इत्यादि। इस विचार से हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहना चाहिए कि कोई आयेगा और कुछ सिखा जायेगा, ख़ुद ज्ञान पाने के लिए जूझना चाहिए, अपनी शिक्षा की क़ीमत अपने श्रम से चुकानी चाहिए। इस तरह बच्चों में पहलक़दमी की, व्यावहारिकता की अपार योग्यता विकसित हो सकती है, वे लोगों को परखना सीख सकते हैं। हर किसी से वह योग्यता ग्रहण करो, जो वह दे सकता है, और फिर जीवन में उसका उपयोग करो।

हमारा देश अभी ग़रीब है – हमें धरती से, जल से सर्वत्र वह सब पाना नहीं आता, जो वे हमें दे सकते हैं। हमें यह सीखना है। इसके लिए हमें जुटकर शिक्षा पानी है। फ़िलहाल राज्य सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत कम ही कुछ दे सकता है। लेकिन बैठे-बैठे इंतज़ार नहीं किया जा सकता। अभी हमें ख़ुद ही एक दूसरे की मदद करते हुए, अपने चारों ओर के जीवन से, पुस्तक से अधिक से अधिक ज्ञान और योग्यताएं पाते हुए स्वयं अपने को शिक्षित करना है। हम यह काम पूरा करके रहेंगे, शिक्षित बनकर रहेंगे। ...

हमारे पास थोड़ा बहुत जो कुछ है उसका उपयोग करना हमें सीखना है। ज़रूर हम उसका उपयोग करेंगे। ... देहात में पहुंचे अख़बार के हर अंक का, हर पुस्तक का पूरा उपयोग करेंगे। हर साक्षर व्यक्ति का और हर योग्य व्यक्ति का तो इससे भी अधिक उपयोग करेंगे।

मुझे पेस्तालोज़्ज़ी[1] की याद आती है। उसके ज़माने में स्विटज़रलैंड एक ग़रीब तथा अपेक्षाकृत अल्पसंस्कृत देश था। वह सबसे अधिक ग्रामीण बच्चों के बारे में सोचता था कि किस तरह देहात में ग़रीबी मिटाई जाये, वहां संस्कृति का प्रसार हो। उसकी रचनाओं में आप इस बारे में बहुत-से निर्देश पायेंगे कि अज्ञान के अंधकार में डूबे देहात में ज्ञान का प्रकाश कैसे फैलाया जाये, थोड़ा-बहुत जो है उसका उपयोग कैसे किया जाये। वह बच्चों को सलाह देता है कि वे उस किसान औरत के पास जायें, जिसे अच्छी किस्मों की बंदगोभी उगानी आती है, घड़ीसाज़ के पास जायें, शहर से आये सौदागर के पास जायें। दक्षता प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति से जो वह दे सकता है, ग्रहण करें।

आधुनिक सांस्कृतिक जीवन में शिक्षा पाने की संभावनाएं कहीं अधिक हैं। लेकिन सबसे अधिक सुसंस्कृत देशों के भी सच्चे व्यावहारिक शिक्षक लड़के-लड़कियों को उसी बात की शिक्षा देते हैं, जो पेस्तालोज़्ज़ी उन्हें सिखाना चाहता था – अपने इर्द-गिर्द के जीवन का, योग्य लोगों का ज्ञान पाने के लिए उपयोग करना।

पेस्तालोज़्ज़ी से हमें जीवन के प्रति ऐसा बिल्कुल सही दृष्टिकोण सीखना चाहिए, अपने पर्यावरण से आवश्यक ज्ञान और योग्यता पाना सीखना चाहिए। तकनीकी विद्यालय और व्यावसायिक स्कूल अभी काफ़ी समय तक युवाजन के एक अल्पांश को ही शिक्षा दे पायेंगे, जबकि शिक्षा सभी को पानी चाहिए।

तो क्या करना चाहिए?

१) सारी जनता में विशेषत: मज़दूरों के बीच इस विचार का व्यापक प्रचार करना चाहिए कि हर ऐसा व्यक्ति, जिसे कुछ करना आता है, बच्चों को अपना यह कौशल सिखाये।

२) बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में परस्पर सहायता का सिद्धांत निरूपित किया जाये : कोई व्यक्ति बच्चों को अमुक बातें सिखाने

का दायित्व लेता है, बच्चे उसके लिए अमुक काम करने का दायित्व लेते हैं।

३) स्कूलों और पायोनियर टुकड़ियों के ज़रिए सभी सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों को कामकाजी मंडलियां बनाने के विचार का प्रसार करना चाहिए।

४) इस प्रश्न पर आवश्यक बाल-साहित्य की रचना की जानी चाहिए।

१६२६

बच्चों का सामूहिक श्रम

हम अक्सर बच्चों को आलस का, निठल्लेपन का उलाहना देते हैं, यह भूल जाते हैं कि बच्चे तो बच्चे ही हैं और हमें जो खेल लगता है वह उनके लिए सच्चा श्रम है।

बच्चा पेड़ की छाल से नाव बनाता है। नाव का मॉडल बनाने का यह ध्येय वयस्क को मामूली-सा, बचकाना, अनावश्यक लगता है, लेकिन वह स्वयं नई गाड़ियों के मॉडल बड़ी दिलचस्पी से देखता है; उधर नाव का मॉडल बनाते हुए बच्चा सीखता है: वह व्यवहार से, अनुभव से प्रकृति के कुछ नियमों का ज्ञान पाता है, जिस सामग्री से नावें बनाई जाती हैं उसके गुणों की जानकारी वह पाता है, जिस औज़ार से वह काम करता है, उसका उपयोग करना वह सीखता है, सो वह मां जो बेटे की नाव चूल्हे में फेंक देती है, अपराध करती है, वह अपने बेटे को कुशल कर्मी नहीं बनने देती।

कभी-कभी बच्चे मिल-जुलकर कोई काम करते हैं, कुछ बनाते हैं। कभी वे मिलकर हवाई जहाज़ का मॉडल बनाते हैं, कभी तस्वीरें, आदि बनाते हैं, कभी क्यारियां खोदते हैं, इत्यादि।

बड़े यदि इस खेल-श्रम में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तो यही सबसे अच्छा होगा, क्योंकि उनकी साख, उनके हाथों का कौशल बच्चों की योग्यता से इतना बढ़कर होता है कि बच्चों की खेल में सारी दिलचस्पी जाती रहेगी; लेकिन यदि बच्चे वयस्क से सलाह मांगते हैं, तो उसे सलाह

देनी चाहिए, उनके प्रति अपना गंभीर रुख़ दिखाकर उनकी मदद करनी चाहिए।

बच्चों के संयुक्त कार्य की ख़ास तौर पर क़द्र करनी चाहिए – यह सामूहिक श्रम का अंकुर है। इस सामूहिक श्रम में बच्चे की शक्ति सबसे अधिक अच्छी तरह से मुखरित होती है। मुझे याद है कैसे दस-ग्यारह साल की हम तीन लड़कियों ने छोटे बच्चों के लिए "चिड़ियाघर" बनाने की सोची ; पैसे चाहिए थे, सो हमने कुछ घरों में खाली शीशियां, बोतलें जमा कीं, उन्हें बेचकर पचास कोपेक पाये – यह हमारी आरंभिक पूंजी थी। फिर हमने एक औरत के साथ तय किया कि उसे गोट पर कढ़ाई कर दिया करेंगी, बड़े जतन से हमने यह काम करके एक रूबल से ज़्यादा कमाया। पुस्तकालय में सारी संदर्भ-सूचियां देखकर हमने पशु-पक्षियों के बारे में किताबें ढूंढ़ीं। दुकानें छान मारीं, तस्वीरोंवाले कार्ड ढूंढ़े, कुछ किताबों से तस्वीरें काटीं, उन्हें चिपकाया – इस तरह काम करते हुए आख़िर हमने चिड़ियाघर बना लिया। बड़ों के लिए यह महज़ एक खिलौना था, लेकिन हमने यह काम करते हुए कितनी ही उपयोगी बातें सीखीं और इस काम ने हमारी मैत्री कितनी गाढ़ी कर दी।

व्यावहारिक बुद्धिवाले अमरीकी बच्चों के सृजनात्मक सामूहिक श्रम का सारा महत्व समझते हैं, वहां बच्चे श्रम के लिए दल बनाने के आदि हैं। सात-आठ साल के पांच बच्चे हफ़्ते भर के लिए "इंडियनों का जत्था" बनाते हैं – अपने लिए ख़ुद तीर-कमान और पंखों के "मुकुट" बनाते हैं ; चित्रकारी के शौक़ीन चार लड़के "किशोर छविचित्रकार" मंडली बना लेते हैं – दो हफ़्ते तक साथियों के छविचित्र बनाते रहते हैं ; दसेक किशोरियां "सिलाई मंडली" बनाती हैं, जो महीने भर तक काम करती है। अमरीका के बाल-जगत में ऐसे अस्थाई कार्य-दलों की भरमार है।

मैं नहीं जानती कि वास्तव में ही ऐसा है या नहीं – मैंने कई साल पहले इसके बारे में कहीं पढ़ा था। यदि यह सच है तो यह वह उदाहरण है जिसका हमें हर तरह से अनुकरण करना चाहिए।

बच्चों की पहलकदमी पर किसी निश्चत ध्येय के लिए बननेवाले बाल-श्रम-दलों को हर तरह से प्रोत्साहन देना चाहिए, उनकी मदद करनी चाहिए। संयुक्त कार्य की, चाहे वह थोड़े समय के लिए ही हो और उसका

ध्येय बचकाना हो, ऐसे कार्य की आदत का अपार महत्व है। ऐसे दल, ऐसी मंडलियां सामूहिक कार्य की आदत डालते हैं।

हम कृषि के सामूहिकीकरण की, भोजनालयों, मरम्मत वर्कशापों, कम्यून गृहों की ; सारे जीवन को सामूहिकता के सिद्धांतों के आधार पर गठित करने की बात करते हैं, यह समझते हैं कि ऐसी व्यवस्था ग़रीबी मे और पार्थक्यपूर्ण, असंगठित जीवन से, जहां इंसान इंसान का शत्रु होता है, बचने की सबसे अच्छी गारंटी है, लेकिन यह सोचना हास्यास्पद होगा कि कोई सरकारी विभाग ही जीवन की ऐसी व्यवस्था बना सकता है ; हमें स्वयं ही जीवन के सभी क्षेत्रों में सामूहिक श्रम की व्यवस्था करनी चाहिए।

बच्चों को भी छोटी उम्र से इस तरह शिक्षित करना चाहिए कि उन्हें मिल-जुलकर रहना और शिक्षा पाना आये। इस दृष्टि से बच्चों के श्रम-दल हर तरह से विकसित करने चाहिए, उनकी मदद करनी चाहिए। समाजवाद के निर्माण का हमारा ध्येय भी इसकी मांग करता है।

अभी हम इतने ग़रीब हैं कि सारे देश में किंडरगार्टनों, बाल-क्लबों और कार्यशालाओं का जाल नहीं बिछा सकते, लेकिन हम सारे देश में अस्थाई कामकाजी बाल-दल बना सकते हैं और यह काम हमारी चेतनशीलता पर ही निर्भर है। ऐसे बाल-दल गुंडागर्दी का अच्छा उपचार हैं।

आगे चलकर स्कूल और पायोनियर संगठन बच्चों के सामूहिक कार्यकलाप को एक सामान्य संगठनबद्ध धारा में ला सकेंगे। श्रम-दलों की आदत से स्कूलों का भी और बच्चों का भी काम बहुत फलप्रद होगा। हमें बाल-श्रम का आदर करना, उसकी सहायता करना सीखना है।

१६२८

बच्चों और किशोरों की कम्युनिस्ट शिक्षा दीक्षा

तृतीय शैशव-रक्षा कांग्रेस (१९३०) में प्रस्तुत रिपोर्ट

साथियो, मेरी रिपोर्ट का विषय है 'बच्चों और किशोरों की कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा'। आज समस्त बालगण की कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा के प्रश्न का अपार महत्व है। क्रांति के शुरू में, १९१७ के बाद, हमारा ध्यान इस ओर था कि कुछ प्रायोगिक-आदर्श स्कूलों में प्रायोगिक-आदर्श बाल-घरों, (अनाथालयों) में इस बात की तस्वीर पेश की जाये कि नये ढंग से शिक्षा-दीक्षा कैसे दी जानी चाहिए, किस तरह पुराने तरीकों से नहीं, बल्कि नई विधियों से शिक्षा-दीक्षा दी जानी चाहिए। विश्व-युद्ध और गृहयुद्ध के कारण बड़ी संख्या में अनाथ व बेघर हुए बच्चों के लिए हमें बहुत-से बाल-घर खोलने पड़े, लेकिन इनमें कुछेक ही आदर्श बाल-घर थे, जहां लड़के-लड़कियां कुछ सीख सकते थे। यदि इस प्रश्न को उसकी पूरी समग्रता में लिया जाये, तो हमें यह मानना होगा कि यह काम ठीक से नहीं हो पाया है।

पिछले दिनों देश के सारे सामाजिक जीवन में, सारी अर्थव्यवस्था में आये अनेक परिवर्तनों के सिलसिले में समस्त बालगण की शिक्षा-दीक्षा और चरित्र-निर्माण का प्रश्न विशेषत: उग्र हो गया है। कृषि में छोटे-छोटे निजी किसानी फ़ार्मों के बड़े-बड़े सामूहिक मशीनीकृत फ़ार्मों में संक्रमण का जो काम आजकल हो रहा है उससे स्थिति बहुत बदलती है। औद्योगीकरण के व्यापक विकास की बात ही अलग रही – इससे तो चरित्र-निर्माण की एकदम नई संभावनाओं के द्वार खुलते हैं। मेरे विचार में

बच्चों की कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा का, चरित्र-निर्माण का केंद्रीय प्रश्न है उनके श्रम का संगठन। हम जानते है कि किस प्रकार श्रम-संगठन वयस्कों को शिक्षित करता है।

देहात को लें। देहात में निजी किसानी खेती और कारोबार निश्चित विश्वदृष्टिकोण, निश्चित चरित्र, सभी प्रश्नों को प्रति निश्चित रुख बनाता है। हम "छोटे मिल्की की मनोवृत्ति" की बात करते हैं। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि आदमी घटनाओं के मूलभूत सामान्य सिद्धांत नहीं समझता, बुनियादी सवाल नहीं पहचानता, वह अपने इर्द-गिर्द थोड़ी दूर तक, केवल अपने कारोबर को ही देखता है और अपनी छोटी-सी मिल्कियत के मापदंड से ही सब कुछ नापता है।

हम जानते हैं कि देहात में अक्सर कैसे एक मिल्की का दूसरे से झगड़ा होता है, किस तरह औरतें बेबात को ही लड़ती-झगड़ती रहती हैं, उनके विचार अपनी चहारदीवारी से आगे नहीं निकलते और किस तरह लघु किसान सोचता-विचारता है: "हर कोई अपना ख़याल रखता है, भगवान सबका"। लघु किसानी अर्थव्यवस्था में यही मनोवृत्ति बनती है। लोग श्रम के नये रूपों, नये संगठन रूपों को नहीं समझ पाते हैं। हर कोई अपनी ख़ातिर जीता है और तब, बेशक, भगवान, उसके लिए मानी रखता है। फ़सल मारी गई, तो यह "भगवान का शाप है, हम क्या कर सकते हैं"।

ऐसा किसान कारखाने में काम करने आता है। वह विशाल मशीनीकृत उत्पादन-कार्य, श्रम-संगठन, श्रम-विभाजन देखता है, यह देखता है कि किस प्रकार सारा काम निश्चित योजना के अनुसार, नियमबद्ध और सुसंगठित ढंग से होता है, किस तरह एक आदमी का काम दूसरे आदमी के काम से जुड़ा होता है। हर कोई अपने को एक सामान्य यंत्र का पुर्ज़ा समझने लगता है। तब कारखाने में काम करने आया किसान यहां के वातावरण में कुछ दिनों तक पगने के बाद हर चीज़ को दूसरे ही नज़रिये से देखने लगता है। वह अब अपने सीमित दायरे में नहीं, बल्कि सामान्य हितों की दृष्टि से देखने लगता है। मज़दूर वर्ग अग्रणी वर्ग क्यों है? क्योंकि बड़े उत्पादन की, कारखाने में काम की परिस्थितियां उसे सामूहिकतावादी बनाती हैं। धर्म के मामले में भी ज़्यादातर मज़दूर, जो काफ़ी अरसे से कारखाने में काम कर रहे हैं, इतने धर्मपरायण

नहीं रहते, क्योंकि वे प्रति दिन यह देखते हैं कि लोहे को, कच्चे माल को मशीनों से संसाधित करने के, मशीनों की मदद से श्रम-संगठन के क्या परिणाम होते हैं। उनमें भौतिकवादी विश्वदृष्टिकोण अधिक आसानी से बनता है।

अपने काम के शुरू में कोई पांच साल तक मैं रविवारीय संध्या स्कूल में अध्यापक रही। मैंने वहां देखा था कि किस प्रकार किसान जब स्कूल में आता है, तो शुरू-शुरू में वहां जो कुछ बताया जाता है वह सब सुनने तक से डरता है, लेकिन साल भर तक कारखाने में काम कर लेने पर उसका नज़रिया बिल्कुल बदल जाता है। ... जब आदमी के देखते-देखते लोहे से सूक्ष्मतम औज़ार, सूक्ष्मतम मशीन बनाई जाती है, तो वह प्रविधि की, संगठन की, समुदाय की शक्ति समझने लगता है।

यही कारण है कि कारखानों में तपा-मंजा मज़दूर वर्ग ही वह वर्ग है जो सभी सामाजिक संबंधों को भी अधिक अच्छी तरह समझता है और उसमें से ही अग्रणी वर्ग बनता व सुदृढ़ होता है।

अब यह देखें कि आज क्या हो रहा है। देश का औद्योगीकरण मज़दूर वर्ग की शक्ति बढ़ा रहा है। १५ वीं कांग्रेस के बाद हम सामूहिकीकरण के जिस काम की पूर्ति के द्वार पर पहुंच गये हैं, उसका क्या परिणाम है? इसका परिणाम यह है कि पुरानी छोटी-छोटी खेतियों का, बाप-दादाओं से धरोहर में मिले श्रम के पुराने रूपों का विघटन हो रहा है और नई विशाल खेती किसानों का विश्वदृष्टिकोण नये ढंग से पुनर्गठित कर रही है। अब उदीयमान पीढ़ी के कम्युनिस्ट चरित्र-निर्माण के लिए अत्यंत अनुकूल परिस्थितियां बन गई हैं। समय के साथ ये परिस्थितियां और भी अधिक अनुकूल होती जायेंगी। लेकिन यह समझने के लिए कि हमें बच्चों की कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा, कम्युनिस्ट चरित्र-निर्माण कैसे करना है, हमें इस काम की अलग-अलग कड़ियों पर ग़ौर करना होगा।

पुराने ज़माने में जब शिल्प, घरेलू उद्यम और लघु किसानी कारोबार का प्रभुत्व था, तब परिवार बहुत बड़ी भूमिका अदा करता था। किसान परिवार में लड़का छोटी उम्र से ही अपने माता-पिता का, सारे परिवार का श्रम देखता था। अपना काम दिखाकर उसे शिक्षा दी जाती थी, लेकिन वह यह नहीं जानता था कि प्रकृति की किसी परिघटना को कैसे समझा-समझाया जा सकता है। श्रम-कौशल तो वह बचपन से ही

सीखता था – आठ साल की उम्र में बच्चे को कई काम करने आते थे। घरेलू उद्यम या शिल्प को लें। यहां बेटा बाप को काम करते देखता था और इस तरह यह काम करना सीखता था। पहले परिवार ही श्रम-शिक्षा देता था। और अब? अब मज़दूर और सामूहिक फ़ार्म के किसान का श्रम घर से बाहर होता है; हम देखते हैं कि परिवार आर्थिक इकाई नहीं रह गया। मज़दूर कारखाने में श्रम करता है और बच्चा यह नहीं देखता कि काम कैसे होता है। घर पर वह बूढ़ी दादी के संरक्षण में रहता है, जो अक्सर उसे बेसिरपैर की बातें सुनाती है, या मां के प्रभाव में, जो स्वयं भी कारखाने में काम नहीं करती, और यदि मां काम करती है तो बच्चा पूरी तरह गली-मोहल्ले के प्रभाव में रहता है।

इस तरह कारखाने का वयस्क मज़दूर पर जो चरित्र-निर्माणकारी प्रभाव पड़ता है वह बच्चे पर नहीं पड़ता। हम देखते हैं कि किसान परिवार में भी वही प्रक्रियाएं होने लगी हैं। जब किसान बड़े मशीनीकृत सामूहिक या राजकीय फ़ार्म में शामिल होते हैं तो परिवार की वह भूमिका नहीं रहती जो पहले वह श्रम-शिक्षा के मामले में, श्रम द्वारा चरित्र-निर्माण के मामले में अदा करता था। यदि हम दफ़्तर के कर्मचारी के परिवार को, यानी शहर के ग़ैर-मज़दूर परिवार को लें तो ऐसे परिवार में यदि श्रम-शिक्षा है तो यह गृहस्थी के कामों के गिर्द ही सीमित है: झाड़ू दे दो, खाना बनाने में मदद करो, सौदा ले आओ, वगैरह। इस प्रकार यह शिक्षा, यह श्रम-शिक्षा एक तरह से आत्मसेवा तक ही सीमित है। अब जबकि हम बड़े भोजनालय, आदि खोल रहे हैं तो यह श्रम-शिक्षा भी जाती रहती है।

आजकल हमारे यहां ही नहीं, पूंजीवादी देशों, उदाहरणतः जर्मनी में भी यह कहा जा रहा है कि उद्योग के, महिला श्रम के विकास के प्रभाव के कारण परिवार का प्रभाव बहुत क्षीण हो गया है, क्योंकि परिवार अब वैसी श्रम इकाई नहीं रहा, जैसी कि वह पहले था। इसका अर्थ यह नहीं है कि परिवार का विलोप हो रहा है, लेकिन वह उस तरह की श्रम इकाई नहीं रहा जैसी कि पहले था, उसका प्रभाव क्षीण पड़ रहा है।

आज बाल-श्रम के सिलसिले में हम क्या देखते हैं? देहात में बाल-

श्रम का अध्ययन करते हुए हम पाते हैं कि कुलकों के ख़िलाफ़ हम जो संघर्ष कर रहे हैं, निजी खेती में उजरती श्रम के उपयोग का जो परिसीमन हम कर रहे हैं उसका यह नतीजा हो रहा है कि मंझोला किसान, जो अभी भी अपनी अलग खेती कर रहा है, उजरती श्रम का उपयोग करने से डरता है, मशीनें उसके पास हैं नहीं, सो उसे सभी काम मामूली साज़-सामान की मदद से खुद ही करने पड़ते हैं। इसका नतीजा यह है कि बच्चों पर उनकी सामर्थ्य से अधिक काम थोपा जाता है। बच्चों से पूछो कि वे कैसे काम करते हैं, तो पता चलता है सुबह ६ बजे से शाम ६ बजे तक। ऐसा श्रम बच्चे की सामर्थ्य से एकदम बाहर है। परिणामस्वरूप बच्चा घर छोड़कर चला जाता है। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि श्रम-शिक्षा के मामले में परिवार का प्रभाव क्षीण हो रहा है।

लेकिन यह प्रभाव दूसरे अर्थों में भी क्षीण हो रहा है। हमें परिवार के अवांछनीय क़िस्म के प्रभाव को क्षीण करने के अभूतपूर्व अवसर मिल रहे हैं। उदाहरण के लिए कुलक को लें। पहले ज़माने में वह परिवार में बच्चे को पूरी तरह "अपनी भावना" में पालने की कोशिश करता था। तोलस्तोय ने एक जगह इस बात का बड़ा अच्छी तरह वर्णन किया है कि कैसे कुलक अपने बच्चे को स्कूल नहीं भेजना चाहता था, क्योंकि वह उसे "अपनी भावना में पगाना" चाहता था। अब वह ऐसा नहीं कर पाता है। इसलिए कुलक और उसके परिवार का बच्चे पर, उदीयमान पीढ़ी पर प्रभाव त्यों-त्यों घटता जाता है, ज्यों-ज्यों स्कूल का, परिवेश का प्रभाव बढ़ता जाता है।

परिवार के प्रभाव और श्रम-शिक्षा के इस क्षीण होने के विभिन्न पहलू हैं। एक ओर, इसके कारण बेघर बच्चों की संख्या बढ़ती है। प्राय: बच्चा घर छोड़कर चले जाने की कोशिश करता है, क्योंकि परिवार में उसे वह शिक्षा-दीक्षा नहीं मिलती, जो पहले बच्चों को मिलती थी। परिवार का प्रभाव क्षीण होता है। इसके बदले में क्या मिलता है? जब चरित्र-निर्माण परिवार में होता था, परिवार परवरिश करता था, चाहे वह शिल्पी का, दस्तकार का या छोटे किसान का परिवार होता था, तो स्कूल का केवल एक कार्यभार होता था– शैक्षिक। पहले यही कहा जाता था: अध्यापक पढ़ाता है, छात्र पढ़ते

हैं। स्कूल में पढ़ना, लिखना, गिनना, आदि सिखाया जाता था। लेकिन श्रम करना, कोई काम करना वहां नहीं सिखाया जाता था। सो, इस बात की कि आम स्कूल श्रम की शिक्षा नहीं देते थे (केवल व्यावसायिक विद्यालय में श्रम की शिक्षा दी जाती थी) – इस बात की स्कूलों पर और हमारे सभी बाल-प्रतिष्ठानों पर निश्चित छाप पड़ती थी। इस प्रकार स्कूल की वह चरित्र-निर्माणात्मक भूमिका नहीं थी, जो उसे अब प्राप्त होने लगी है।

अब चूंकि उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन के कारण परिवार का प्रभाव क्षीण हो रहा है, सो स्कूल अपार चरित्र-निर्माणात्मक महत्व पा रहा है। हमारे सम्मुख ये प्रश्न उठ रहे हैं कि स्कूलों में, बाल-प्रतिष्ठानों में श्रम का प्रबंध कैसे किया जाये। हम सार्विक शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं। अब यह सार्विक शिक्षा कोई दूर भविष्य की बात नहीं रह गई, यह अब निकट भविष्य की बात है, एक यथार्थ है। सार्विक शिक्षा का अर्थ यह है कि सारे बालगण पर स्कूल का प्रभाव होगा। सो महत्वपूर्ण बात यह है कि न केवल स्कूल के प्रभाव को ध्यान में रखा जाये, स्कूल में न केवल निश्चित ज्ञान दिया जाये, बल्कि स्कूल श्रम-स्कूल हो और उसमें श्रम का अध्यापन इस तरह हो कि वह कम्युनिज़्म की भावना में शिक्षित करे।

यही कारण है कि कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में जनशिक्षा के परिच्छेद में श्रम-स्कूल के अस्तित्व की आवश्यकता इंगित की गई है, मात्र श्रम-स्कूल की नहीं, बल्कि पोलीटेक्निकल स्कूल की, यानी ऐसे स्कूल की जिसमें श्रम की शिक्षा नये ढंग से दी जाती है।

यह स्कूल किस तरह श्रम की नई शिक्षा देता है, इसे श्रम-शिक्षा कैसे देनी चाहिए? हमारे यहां व्यवहार में जो स्थिति बनी है, मैं उसकी नहीं, बल्कि मार्गदिशा की बात कर रही हूं। इस स्कूल को श्रम-शिक्षा किस प्रकार देनी चाहिए? इसे यह देखना चाहिए कि आज कारखाने में, बड़े फ़ार्म में, विशाल उद्यम में कैसे श्रम की आवश्यकता है, विशाल उत्पादन कार्य में लगे कर्मी से कैसे ज्ञान की, किन योग्यताओं की अपेक्षा की जाती है।

पहले स्थिति कुछ भिन्न थी। बेशक शिल्प का हुनर सीखने के लिए, उसके औज़ार से काम लेना सीखने के लिए लंबी शिक्षा की

आवश्यकता थी। यदि हम सामूहिक फ़ार्मों के काम को देखें, तो साफ़ पता चलेगा कि वहां किस बात की कमी है। वहां श्रम के तौर-तरीक़ों का अभाव है, किसानों को उत्पादन के औज़ारों से काम लेना, अपने समय का नियोजन करना, काम का बंटवारा करना, काम के लिए आवश्यक गति निर्धारित करना नहीं आता।

सामूहिक फ़ार्मों में काम करने गये मज़दूरों को निम्न बात पर ख़ास तौर से हैरानी होती है। एक ट्रैक्टर खड़ा है। जाड़ों के दिन हैं, ट्रैक्टर हिम से ढका खड़ा है, किसी को यह ख़याल नहीं आता कि ट्रैक्टर को छप्पर तले खड़ा करना चाहिए, कि खुली जगह पर हिम में खड़ा-खड़ा वह ख़राब हो जायेगा। किसी को इसकी परवाह नहीं कि ट्रैक्टर ख़राब हो जायेगा या नहीं, कोई यह नहीं सोचता कि श्रम का विभाजन किस तरह करना विवेकसंगत होगा। आजकल 'ट्रैक्टर की संभाल' नाम का अख़बार निकलता है। यह अख़बार क्यों निकालना पड़ रहा है? क्योंकि सामूहिक किसान में अभी श्रम की वह समझ नहीं है, जो मज़दूर में है, उसके तौर-तरीके उसे नहीं आते। सो आजकल हमारे श्रम-स्कूल में यह प्रयास किया जा रहा है कि छात्र श्रम के तरह-तरह के औज़ारों से काम लेना मोटे तौर पर सीख जायें, कि वे श्रम-प्रक्रियाओं को समझने लगें: यह काम ऐसे क्यों किया जाना चाहिए, किसी और ढंग से क्यों नहीं, इत्यादि।

इस संबंध में मज़दूर विराट भूमिका अदा कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने कारखाने में तत्संबंधी प्रशिक्षण और अभ्यास पाया है। सो हमें यह कोशिश करनी चाहिए कि हमारे स्कूल, मज़दूर समूह के साथ, किसान समूह के साथ संबंधित हों, ताकि मज़दूर और सामूहिक किसान अपना श्रम-अनुभव स्कूल को प्रदान करें। ऐसा होने पर शिक्षा-दीक्षा का सच्चा कार्य हो सकेगा। अब हमें मिलों, कारखानों, बड़े-बड़े और सुव्यवस्थित राजकीय एवं सामूहिक फ़ार्मों के मेहनतकशों को स्कूल में श्रम के अध्यापन के काम में लगाना चाहिए, क्योंकि यदि हम स्कूल में बाल-श्रम का प्रबंध पुराने ढंग से करेंगे तो इससे कुछ हाथ नहीं लगेगा।

पुराने ढंग के बाल-घर में साज़-सामान भी है, श्रम का अध्यापक भी है, लेकिन वहां की किशोर छात्रा शिकायत करती है: "मैं छह

साल से बाल-घर की कार्यशाला में जा रही हूं। इतने सालों से बस एक ही काम सिखाया जा रहा है – काज बनाना"। शिल्प विद्यालयों में ऐसे ही होता था : श्रम के किसी एक क्षेत्र की शिक्षा दी जाती थी और बरसों तक एक ही काम करना सिखाया जाता था। बरसों तक लड़का कोई एक तस्वीर बनाता था या किसी काम का कोई एक अंश करता था।

लेकिन अब ऐसा होना चाहिए कि छात्र भांति-भांति के श्रम के लिए तैयार हो, कि स्कूल में वह जो शिक्षा पाये उससे वह श्रम संबंधी तौर-तरीके सीखे। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि हमारे स्कूल पुराने ढंग के स्कूल न हों, कि वे एक तरह की उत्पादन इकाई हों, लेकिन उस तरह की नहीं जैसे कि परिवार या लघु किसानी कारोबार या लघु शिल्प उद्योग-धंधा था, बल्कि दूसरी ही क़िस्म की।

स्कूल किसी कारखाने या बड़े सामूहिक फ़ार्म या राजकीय फ़ार्म मे संलग्न होना चाहिए और वहां छात्रों की मदद से उत्पादन कार्य का निश्चित भाग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि स्कूल स्वयं अपने आप में एक उत्पादन इकाई हो। आगे मैं इस बात की चर्चा करूंगी कि ऐसी उत्पादन इकाइयों की क्या विशिष्टता है, लेकिन अभी हमें स्कूल की क़िस्म ही बदलनी है।

यदि हम यह सोचते हैं कि पुराने ढंग से स्कूलों में शिल्प सिखाना ही असल काम है, तो हम चरित्र-निर्माणात्मक श्रम को उचित स्तर पर नहीं रख पायेंगे। यदि जिल्दसाज़ बैठा ख़ुद जिल्दें बांधता रहता है और लड़के देखते रहते हैं तो इससे कोई लाभ नहीं होने का, यह कोई श्रम-शिक्षा नहीं होगी, चीरत्र-निर्माणात्मक श्रम नहीं होगा। आवश्यकता इस बात की है कि श्रम का अध्यापन आधुनिक ढंग से हो। यह समझ अक्सर नहीं पाई जाती।

फ़ैक्टरी-कारखाना शागिर्दी स्कूल कारखाने से जुड़ा माना जाता है, लेकिन कारखाने के साथ उसका कोई संगठनात्मक संबंध नहीं है। कारखाना स्कूल के लिए पैसे देता है और वहां कारखाने के मज़दूरों के बच्चे पढ़ते हैं – बस यही सारा संबंध है। कारखाने का अलग अस्तित्व है, स्कूल का अलग। स्कूल में बढ़ईगिरी की शिल्प कार्यशाला खोली गई है, जबकि कारखाने में आधुनिक मशीनें हैं और वहां बिल्कुल

दूसरी ही चीज़ों का उत्पादन होता है।

तो मतलब यह है कि हमें अपने शिक्षा प्रतिष्ठानों को, स्कूलों की कार्यशालाओं को बड़े उत्पादन के साथ जोड़ना है, तब इनका अपार शैक्षिक एवं चरित्र-निर्माणात्मक महत्व होगा। मशीनीकृत श्रम बख़ूबी शिक्षित करता है। ज़रा देखिये कि सही ढंग से, नये ढंग से आयोजित श्रम-शिक्षा का कितना महत्व है। मास्को से थोड़ी दूर कोस्तिनो शहर में एक स्कूल है। यहां उन किशोरों को लिया जाता है, जो श्रमिक परिवार से निकल गये, आवारागर्दी करने लगे, अपराध करने लगे – टेढ़े किशोर हैं ये।

तो यहां क्या किया गया है? किया यह गया है। यहां श्रम-विद्यालय खोला गया है, मशीनों से सुसज्जित कार्यशालाएं हैं, अनुभवी मज़दूरों को निमंत्रित किया गया है, जो किशोरों को यह दिखाते हैं कि काम कैसे करना चाहिए। इस तरह उनमें शिक्षा की ओर रुझान पैदा हुआ है और निश्चित संगठनबद्धता आई है। सो, जिस किसी ने यह स्कूल देखा है वह यह मानता है कि यह स्कूल शिक्षा-दीक्षा के, चीरत्र-निर्माण के काम में बहुत सफल हो रहा है।

ऐसे स्कूल और भी हैं। यारोस्लाव्ल के इलाक़े में एक बाल-घर था। इसका प्रधान एक कम्युनिस्ट था। शुरू में वह हमें लिखता था कि बच्चे किसी तरह बस में नहीं आते। हमारा पत्र-व्यवहार होने लगा। वह श्रम-शिक्षा का सही प्रबंध करने में सफल रहा, बाल-घर में मशीनों से सुसज्जित वर्कशापें खोली गईं और इसके बाद उसने लिखा कि वह ख़ुद बच्चों को नहीं पहचान पाता। "वे हर बात के लिए राजी हैं, सभी काम स्वयं सहर्ष करते हैं।" श्रम बदला, संगठन बदला और स्कूल का शैक्षिक, चरित्र-निर्माणात्मक महत्व भी बदल गया। यह बात बहुत मानी रखती है।

लेकिन बात केवल यही नहीं है। कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा निश्चित श्रम-शिक्षा में ही निहित है। छोटा मिल्की हर बात को अपने नज़रिये से देखता है: "यह मेरे लिए फ़ायदेमंद है। यह मेरा है।" लेकिन कारखाने का मज़दूर कैसे देखता है? मिसाल के लिए कम्युनिस्ट सुब्बोत्निक या समाजवादी प्रतियोगिता लें। यह सब मज़दूर को कैसे शिक्षित करता है? इस तरह कि आज अक्तूबर क्रांति के बारह साल बाद

मज़दूरगण कारखाने को अपनी संतान मानते हैं, वे अपने को इस बात के लिए उत्तरदायी समझते हैं कि कारखाने में काम कैसे चल रहा है, यानी यह वह बात है, जिसे लेनिन ने सचेतन अनुशासन कहा था, डंडे का, ज़बरदस्ती का अनुशासन नहीं, बल्कि वह सचेतन अनुशासन जिसके बिना समाजवाद का निर्माण नहीं हो सकता। यही सच्चा कम्युनिस्ट अनुशासन है।

दूसरी ओर, हम अक्सर देखते हैं कि सामूहिक फ़ार्म में अभी ऐसा अनुशासन नहीं है। सुब्बोत्निकों और समाजवादी प्रतियोगिता जैसी लंबी शिक्षा की आवश्यकता है, जो सारे सामूहिक किसानों में श्रम के प्रति सचेतन रुख विकसित करेगी। यही कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा का मर्म है। श्रम के प्रति सचेतन रुख होने पर ही यह समझ आती है कि प्रत्येक का श्रम सबके सामान्य श्रम का एक अंश है। यहां परस्पर सहायता दूसरी ही बुनियाद पर बनती है, इस आवश्यकता की समझ के आधार पर कि श्रम के सही संगठन के लिए यह परस्पर सहायता होनी चाहिए, क्योंकि परस्पर सहायता सामूहिक श्रम का अभिन्न अंग है। सामूहिक श्रम एकजुटता की भावना पैदा करता है।

ऐसा व्यक्ति, ऐसा किशोर, जिसे हम सचेतन सामूहिकतावादी बना पायेंगे, वह हर चीज़ को दूसरी ही नज़रों से देखेगा।... कम्युनिस्ट श्रम-शिक्षा पूर्णतः धर्मविरोधी शिक्षा-दीक्षा है। छोटा मिल्की हर बात में डरता है, उसे हर चीज़ समझ से परे, रहस्यमय, सांयोगिक लगती है। लेकिन सामूहिकतावादी समझता है कि श्रम का संगठन ही बात का मर्म है।... उसे इंजीनियर चाहिए, काम के साथी चाहिए, श्रम का सही संगठन चाहिए।...

सामाजिक प्रश्नों को भी सामूहिकतावादी व्यक्ति नये ढंग से देखने लगता है।

सामूहिकता की भावना में शिक्षित, सचेतन अनुशासनवाला व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से भी अनुशासनबद्ध होता है, सभी सामाजिक प्रश्नों के प्रति उसका रुख भिन्न होता है। यह एक नितांत महत्वपूर्ण चरित्र-निर्माणात्मक कार्यभार है।

इसके अलावा, हमारी समाजवादी अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था से किस बात में भिन्न है?

14-1000

यह इस तरह नहीं चलती कि एक पूंजीपति दूसरे से मुकाबला करता है, दूसरे से टुकड़ा छीनने की कोशिश करता है, ताकि उसका अपना मुनाफ़ा बढ़े।

हमारे यहां ऐसी पूंजीवादी स्पर्द्धा नहीं है। यह हम जानते हैं। अब हम सारी अर्थव्यवस्था के लिए एकीकृत योजना बनाने के द्वार पर खड़े हैं। इस विशाल क़दम के महत्व का अवमूल्यांकन नहीं किया जा सकता। लेकिन हमारी योजना से हम और बहुत-सी अपेक्षाएं कर सकते हैं। साथियो, बात यह नहीं है कि हम कहीं बोल्शोई थियेटर में अपनी योजनाओं पर तालियां बजायें और कहें कि योजनाबद्धता बहुत अच्छी चीज़ है। हमें इस सिलसिले में शिक्षा-दीक्षा का अपना सारा काम सही दिशा में बढ़ाना है। सो अब शिक्षक नियोजन को बहुत महत्वपूर्ण मानने लगे हैं।

प्राथमिक विद्यालय को लें। कोई छोटा-सा काम करना है। मान लीजिये, उसे एक दिन में करना है। आठ साल का बच्चा है, वह अकेला काम नहीं करेगा, बल्कि, मान लीजिए, उनके ग्रुप में पांच बच्चे होंगे। यह ग्रुप अपना काम कैसे करेगा? बच्चे अपनी शक्ति का ध्यान नहीं रखते, उन्हें सदा यही लगता है कि वे सब कुछ कर सकते हैं। उन्हें अपनी शक्ति की, अपनी सामर्थ्य की समझ नहीं है, वे जोश में बह निकलते हैं। लेकिन यदि एक बार वे विफल रहेंगे, दूसरी बार विफल रहेंगे, तो देख लेंगे कि उन्होंने अपनी शक्ति का अतिमूल्यांकन किया था कि उनकी योजना ठीक नहीं है।

यहां बड़ी कक्षा के बच्चों की मदद चाहिए। दूसरी कक्षा के बच्चों के लिए, हो सकता है, एक दिन के काम की नहीं, पांच दिन के काम की योजना बनानी चाहिए। और वहां ग्रुप में पांच नहीं, दस बच्चे होंगे। माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के लिए कार्यभार कहीं अधिक जटिल हो सकते हैं। यह सोचा जा रहा है कि सारे स्कूली जीवन में नियोजन का स्थान बनाया जाये। इसका अपार शैक्षिक महत्व है क्योंकि इस तरह एक साथ ही कर्मी भी और स्वामी भी शिक्षित होता है, दूसरे शब्दों में स्कूल के बाद जब छात्र उत्पादन-स्थली पर काम करने आयेगा तो वह निर्देशों का पालन मात्र करनेवाला कर्मी नहीं होगा, जो बस हैंडल घुमाया करेगा, बल्कि वह साथ ही

कारखाना समिति में काम कर सकेगा, भीतरघात नहीं होने देगा, इत्यादि। यही बात सामूहिक फ़ार्म के लिए भी है। यहां काम करने आया भूतपूर्व छात्र न केवल बेलचे से काम कर सकेगा, बल्कि ट्रैक्टर का उपयोग भी कर सकेगा, वह ट्रैक्टर को खुले में हिम तले खड़ा नहीं रहने देगा और ऐसा सामूहिक किसान अच्छा स्वामी होगा, जो हर बात के बारे में सोचेगा, अपनी शक्ति , अपनी सामर्थ्य पहचानेगा, जो स्वयं यह जानता होगा कि संगठित सामूहिक श्रम का क्या महत्व है।

यहां यह कहा जाना चाहिए कि श्रम-शिक्षा बच्चों की शक्ति के अनुरूप होनी चाहिए। हर आयु के बच्चों के लिए एक ही मापदंड नहीं हो सकता। ड्राइंग में श्रम की बच्चों की सामर्थ्य बड़ी अच्छी तरह प्रतिबिंबित होती है। देखिये, किंडरगार्टन में और पहली कक्षा में बच्चे कैसे ड्राइंग करते हैं। बनाने लगते हैं एक चीज़, बनती है दूसरी। काम भी वे ऐसे ही करते हैं। बच्चा मिट्टी से आदमी बनाने लगता है फिर काम करते-करते वह सोचता है: "नहीं, मैं मकान बनाऊंगा।" और वह मकान बना लेता है। बच्चे में न यह समझ है कि वह क्या कर सकता है और क्या नहीं, न ही वह कोई लक्ष्य तय करके उसे पाने के लिए लगन से काम कर सकता है।

८–९ साल के बच्चे के लिए श्रम वही नहीं है जो वयस्क के लिए। वयस्क के लिए और किशोर के लिए भी श्रम का निश्चित निर्धारित लक्ष्य होता है, जबकि बच्चे के लिए श्रम का ध्येय है अपने इर्द-गिर्द के संसार को जान पाना। इसीलिए उसका श्रम अत्यंत परिवर्तनशील होता है। बच्चे का श्रम स्वभाव पर निर्भर श्रम होता है। बच्चा अक्सर श्रम के सभी पहलुओं को नहीं देखता है, सभी पहलुओं की ओर उसका ध्यान नहीं जाता है। वह कोई काम करने लगता है, इस बीच दूसरी चीज़ की ओर उसका ध्यान चला जाता है, ध्यान बंट जाता है और वह अपना काम भूल जाता है। उसके हाथ में तितली आ गई और वह उसके पंख देखने में लग गया, यह भूल ही गया कि वह क्या काम करना चाहता था, तितली के प्रेक्षण में वह तल्लीन हो गया है।

यह बाल-आयु की विशेषताएं हैं। इन विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए और ८-९ साल के बच्चों को ऐसा काम सौंपना

चाहिए जिसे करते हुए वे कुछ सीख भी सकें और बढ़ सकें। लेकिन ऐसे बच्चों को अक्सर यंत्रवत श्रम करने को कहा जाता है: क्यारियों पर नज़र रखो, मुर्गियों का ध्यान रखो।

अब तीसरी और चौथी कक्षा के बच्चों को लें। ये बिल्कुल दूसरे ही ढंग से ड्राइंग करते हैं। ये हर चीज़ को उसकी समग्रता में ग्रहण करते हैं।

इनकी रुचि किसी निश्चित पहलू में होती है, जिसे ये समग्रता में, संपूर्ण रूप से ग्रहण करना चाहते हैं। ६ से १२ वर्ष की आयु में यह जो इच्छा प्रकट होती है, इससे पता चलता है कि इस आयु के लिए पोलीटेक्निकल, विविधतापूर्ण, बहुमुखी श्रम का प्रबंध करना विशेषत: महत्वपूर्ण है, जिससे यह दिखाया जा सके कि किस प्रकार सभी अंशों में श्रम परस्पर संबंधित है।

किशोर का बनाया चित्र लें। वह चित्र ऐसे नहीं बनाता है, जैसे कि दस साल का बच्चा, वह अब ऐसी ड्राइंग नहीं करता जिसमें सिर धड़ से बड़ा होता है। उसकी रुचि ब्योरों और अंशों में होती है। वह चाहता है कि प्रत्येक भाग उचित ढंग से बनाया जाये। यह संक्रमण-आयु की विशिष्टता है – छोटी-छोटी बातों, ब्योरों की ओर ध्यान देना, उन पर ध्यान केंद्रित करना। यह इस आयु के लिए लाक्षणिक है।

बच्चों के श्रम की चर्चा करते हुए यह याद रखना चाहिए कि बच्चे बड़ों से कहीं जल्दी थक जाते हैं। इसलिए विभिन्न आयु के बच्चों की शक्ति का ध्यान रखना चाहिए। यदि हम बच्चों पर उनकी शक्ति से अधिक बोझ डालेंगे तो हम उन्हें आलसी बनायेंगे, ऐसे लोग बनायेंगे जो अपने काम के प्रति लापरवाह होंगे। हमें ऐसा करना चाहिए कि श्रम रोचक भी हो और यथाशक्ति भी और साथ ही यह सृजनात्मक श्रम हो, न कि यंत्रवत किया जानेवाला काम।

व्यवसाय के चयन के बारे में भी मैं दो शब्द कहना चाहूंगी। मनोविज्ञान की एक शाखा है, जो श्रम संबंधी मनोविज्ञान के व्यावहारिक प्रश्नों का हल ढूंढती है। यह मनोविज्ञान हमें बताता है कि हर व्यक्ति विमानचालक, ट्रैक्टरचालक या संगठनकर्ता, आदि नहीं हो सकता। हर किसी की अपनी विशेषताएं होती हैं, जो उसके शारीरिक संगठन

से संबंधित होती हैं। कोई व्यक्ति पूरी बात को तुरंत ग्रहण कर सकता है, कोई व्यक्ति उसे विशिष्ट ढंग से देखता है। कुछ लोग सुनकर आसानी से सीख सकते हैं, कुछ अपने हाथों से कोई काम करके ही उसे अच्छी तरह सीख पाते हैं और कुछ के लिए देखकर याद करना आसान होता है। शारीरिक संगठन की ये सब विशेषताएं बहुत महत्वपूर्ण हैं। श्रम केवल तभी उत्पादक हो सकता है जबकि प्रत्येक पद पर उसके लिए उपयुक्त लोग होंगे। बुर्जुआ वर्ग यह बात भली-भांति समझता है। हम जानते हैं कि बुर्जुआ वर्ग प्रत्येक ओहदे के लिए उचित व्यक्ति को कितनी बारीकी से ढूंढ़ता है। जर्मनी और अमरीका में स्कूलों में श्रम-सलाहकार हैं, वहां व्यावहारिक मनोविज्ञान काफ़ी विकसित है।

लेकिन यदि हम इन सलाहकारों का काम देखें तो हम क्या पायेंगे? हम देखेंगे कि हर सामाजिक वर्ग के लिए ये विभिन्न परामर्श देते हैं। यदि बच्चे मज़दूरों के हैं तो उन्हें एक काम के लिए भेजा जाता है, मज़दूर के बच्चे को आदेशपालन करनेवाला कर्मी होने की सलाह दी जाती है, जबकि बुर्जुआ वर्गों के बच्चों को वे कहते हैं कि वे इंजीनियर, डाक्टर, कृषिविशेषज्ञ, आदि बन सकते हैं। सलाहकार यह नहीं देखता है कि मज़दूर के बच्चे में अनुपम संगठन योग्यता है – उसे संचालक नहीं, बस आदेशपालक ही होना चाहिए। सो उसे कारकून बनने की सलाह दी जाती है। हर सामाजिक श्रेणी के लिए व्यवसाय के चयन संबंधी विशेष परामर्श दिया जाता है।

इस प्रश्न के प्रति हमारा रुख़ ऐसा नहीं है। इसके अलावा बुर्जुआ वर्ग यह नहीं देखता है कि किसी काम का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, वह तो बस यही देखता है कि काम पूंजीपति के लिए कितना लाभदायक है। हमारे पास जब अपने सलाहकार होंगे तो वे केवल इस बात की ओर ही ध्यान नहीं देंगे कि यह काम उत्पादन के लिए कितना महत्वपूर्ण है, बल्कि इस बात की ओर भी कि यह काम किस तरह आदमी को शिक्षित कर सकता है और विकास के उच्चतर चरण पर पहुंचा सकता है।

अपनी रिपोर्ट में मैं पोलीटेक्निकल श्रम का चरित्र-निर्माणात्मक महत्व दिखाना चाहती थी। अब जबकि परिवार का प्रभाव क्षीण

हो रहा है और सामाजिक शिक्षा-दीक्षा अग्रभूमि में आ रही है, यह बात विशेष महत्व पा लेती है।

हमें अपने बाल-घरों का ढांचा बदलना चाहिए। बाल-घरों का जो जाल है वह किसी काम का नहीं है। यह बात साफ़-साफ़ कहनी चाहिए। पिछले बरसों के लिए यह बात विशेषतः सच है। हो सकता है कि कुछ अच्छे बाल-घर भी हों, लेकिन कुल जमा बच्चों का जीवन सरस नहीं है, यह वह जीवन नहीं है, जिसकी उन्हें उम्मीद है। ऐसा सुनने में आता है कि बच्चे बाल-घर से भाग जाते हैं। ध्यान रहे, ऐसा इसलिए भी होता है कि बच्चा श्रम के मामले में बाल-घर से संतुष्ट नहीं होता। हमें यह सोचना चाहिए कि किस तरह सभी शिक्षा-प्रतिष्ठानों में श्रम को स्थान दिलायें, उन्हें अधिक व्यापक बनायें, क्योंकि वे अधिकाधिक हद तक उस श्रम-शिक्षा का स्थान लेंगे, जो पहले परिवार में मिलती थी।

यह श्रम-शिक्षा, श्रम द्वारा चरित्र-निर्माण का यह काम कैसे हो? यह विराट कार्यभार है। हमें भांति-भांति के अनेक प्रतिष्ठान चाहिए, केवल बाल-घर नहीं। हमें कार्यशालाओं, वर्कशापों, तकनीकी केंद्रों और बाल-आर्तेलों का प्रबंध करना है, बाल-श्रम को अंत तक संगठित करना है। यह बुनियादी कड़ी है। यह वह बात है, जिससे हमें शिक्षा के, चरित्र-निर्माण के इस काम को उच्चतर स्तर पर उठाने में मदद मिलेगी।

बाल-घरों में ऐसी बेतुकी बातें क्यों होती हैं? क्योंकि वहां या तो श्रम-शिक्षा है ही नहीं, या उसका ठीक प्रबंध नहीं है। इस प्रश्न को लेकर बच्चों को ठीक से संगठित नहीं किया गया है, इत्यादि।

मेरे विचार में इस सम्मेलन में हमें इन प्रश्नों पर बहुत ध्यान से ग़ौर करना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि मज़दूरों और कामगारिनों की मदद के बिना हम कुछ भी नहीं कर पायेंगे।

इन सब बातों को प्रतिबिंबित करना ही मेरी रिपोर्ट का ध्येय था। अब मुझे इतने पर समाप्त करने की आज्ञा दें और यह कामना करने की कि सम्मेलन के सहभागी इन प्रश्नों पर विशिष्ट ध्यान दें।

१६३०

केंद्रीय समिति के स्कूल विभाग[1] के, साथी म० प० मालिशेव[2] के नाम पत्र

साथी मालिशेव, निर्णय के मसौदे पर मैं निम्न टिप्पणियां करना चाहती हूं।

१) ...आधुनिक बच्चे मशीनों से घिरे हैं: फ़ार्मों के खेतों में मशीनें काम करती हैं, उनकी मरम्मत की जाती है, लौहारखाना है, रेलवे लाइन पास से गुज़रती है, मोटरगाड़ियां चलती हैं, हवाई जहाज़ उड़ते हैं, टेलिफ़ोनों की घंटियां बजती हैं, रेडियो बोलता है, तार आते हैं। यह सब बच्चों में मशीनों के प्रति, प्रविधि के प्रति रुचि जगाता है। मशीनों की रचनाएं समझाते हुए, बच्चे जो देखते हैं, उसे समझाते हुए उनकी इस रुचि की पुष्टि करनी चाहिए। प्रविधि के प्रश्नों पर रोचक साहित्य ढूंढ़ना चाहिए।

हमारे पास थोड़ा बहुत जो है उसी का उपयोग करना चाहिए। वैसे तो हमारे पास अब दिखाने के लिए बहुत कुछ है।

प्राथमिक विद्यालय में श्रम की शिक्षा शिक्षक को ही देनी चाहिए। इसके लिए उसे श्रम के पाठों का संबंध गणित के सवालों से, ड्राइंग से और प्राकृतिक परिघटनाओं की व्याख्या से जोड़ना चाहिए। **अध्यापन प्रशिक्षण माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों को हाइजीन के अध्यापन की भी और श्रम के अध्यापन की शिक्षा देनी चाहिए।** कुछ मामलों में श्रम के पाठों में **बढ़ई, दरज़ी, इस या उस मज़दूर को** शिक्षक की **मदद के लिए** बुलाया जा सकता है। इन लोगों को शिक्षक के निर्देशन में उसकी सहायता करते हुए काम करना चाहिए।

पहली और दूसरी कक्षाओं में श्रम बहुत हद तक खेल से, स्वयंसेवा से संबंधित होगा; तीसरी-चौथी कक्षाओं में **श्रम का स्वरूप उत्पादक होना चाहिए।** बच्चे अपने श्रम की उपयोगिता जितनी अधिक स्पष्टता से देख पायेंगे, श्रम उनके लिए उतना ही रोचक होगा। **बालोद्यान या शिशुविहार के लिए, पुस्तकालय के लिए, स्कूल के बाग़ या खेत के लिए काम में बच्चों का मन लगेगा।**

प्राथमिक स्कूल के अधीन एक **कार्य-कक्ष** होना चाहिए। यह स्कूल के पास ही कहीं स्थित होना चाहिए।

नगर में श्रम-शिक्षा का सारा वातावरण कहीं अधिक जटिल है। नगर में तो कार्य-कक्ष नितांत आवश्यक है। शायद, स्कूल के पास के रिहायशी इलाक़े में प्राथमिक कक्षा के छात्रों के लिए कार्य-कक्ष खोलने के लिए बातचीत की जा सकती है।

२) बहुत सारी कठिनाइयां इस बात से पैदा हुई हैं कि पिछले बरसों में हमारे स्कूल **अपने आप में सिमटने** लगे हैं। प्राथमिक स्कूलों पर यदि इसका प्रभाव बहुत अधिक नहीं पड़ता है तो अपूर्ण माध्यमिक और माध्यमिक विद्यालयों पर इसका असर बहुत बुरा पड़ रहा है।

पहले जहां स्कूल का आधा काम स्कूल की चारदीवारी के बाहर होता था, वहीं अब **स्कूल सक्रिय जीवन से कट गया है**, जिससे कि **समाजोपयोगी श्रम** का आयोजन बहुत कठिन हो गया है। अब उपयोगी श्रम, उत्पादक श्रम **श्रम-कक्षाओं के लिए उपयोगी वस्तुएं** बनाने तक ही सीमित हो गया है, इस श्रम की उपयोगिता एक सवाल ही है; आवश्यकता इस बात की है कि श्रम की उपयोगिता स्कूल की चारदीवारी से बाहर हो, कि उपयोगी वस्तुएं बालोद्यानों के लिए, पड़ोसी संगठनों—रिहायशी समिति, वयस्कों के विश्राम-कक्ष के लिए, पुस्तकालय, आदि के लिए बनाई जायें।

३) पांचवीं से सातवीं कक्षाओं के लिए स्कूली कार्यशालाएं, वर्कशापें विशेषतः महत्वपूर्ण हैं। उनकी आवश्यकता शैक्षिक ध्येयों द्वारा निर्धारित है। १२ से १५ वर्ष तक की आयु, संक्रमण की यह आयु चरित्र-निर्माण की दृष्टि से निर्णायक आयु होती है। इससे सही ढंग से आयोजित श्रम विराट भूमिका अदा करता है। इस आयु में **श्रम की उत्पादकता, उसका सामूहिक स्वरूप, पुर्ज़ों के संसाधन का अभ्यास, श्रम की समझ—**

ये सब बातें विशेष भूमिका अदा करती हैं। इस आयु में उत्पादक श्रम को "श्रम-प्रक्रियाओं" का शिक्षण बना देने से श्रम के प्रति नफ़रत पैदा होती है। इस आयु में श्रम-विभाजन विशेषतः महत्वपूर्ण होता है। यह बात बहुत मानी रखती है कि एक ही चीज़ पर कुछेक लोग काम करें, ताकि काम कर रहा किशोर यह महसूस करे कि उसके काम पर सबकी सफलता निर्भर है। यदि वह काम का अपना हिस्सा ठीक से पूरा नहीं करेगा तो इसका असर सबके काम पर, सारे काम के परिणाम पर पड़ेगा। संक्रमणात्मक आयु विशेष अनुशासनहीनता की आयु होती है और यहां **श्रम सामाजिक** (जैसा कि लेनिन इसे कहते थे) **अनुशासन विकसित करने में अद्वितीय भूमिका अदा कर सकता है।** यहां श्रम में समाजवादी प्रतियोगिता के तत्वों का समावेश करना चाहिए (लेकिन बड़ी सावधानी से) और यह प्रतियोगिता अलग-अलग छात्रों की नहीं, बल्कि उनके छोटे-छोटे समुदायों की होनी चाहिए। इस आयु में ही अपने श्रम के लिए **उत्तरदायित्व की चेतना** और **श्रम के सही संगठन के महत्व की** चेतना विकसित करनी चाहिए, श्रम-संगठन के प्रश्नों में रुचि जगानी चाहिए। संक्रमणात्मक आयु का लक्षण है **ब्योरों में रुचि** (बच्चों के चित्र लाक्षणिक होते हैं: बारह साल तक की आयु में बच्चे आम तस्वीरें बनाते हैं, परिप्रेक्ष्य, अनुपात को समझना सीखते हैं, संक्रमणात्मक आयु में बच्चे छविचित्र, अलग-अलग मकान, वृक्ष, आदि बनाते हैं, चित्र में बारीकी लाने की कोशिश करते हैं), संक्रमणात्मक आयु के बच्चों का श्रम के प्रति रुख़ अधिक गहन होता है। इस आयु में ही श्रम का दूसरे विषयों (भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, गणित) के साथ संबंध जोड़ना और श्रम की **समझ पाना** विशेषतः महत्वपूर्ण है। इस आयु में श्रम की विभिन्न शाखाओं में रुचि जगाना, **मानसिक और शारीरिक श्रम में संबंध जोड़ना** ख़ास तौर से महत्वपूर्ण है।

कार्यशालाओं में काम की योजना शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से बहुत सोच-समझकर तैयार की गई होनी चाहिए, वह संयोगिक नहीं होनी चाहिए, वह **पोलीटेक्निकल** होनी चाहिए, यहां कारीगरी से बचना ख़ास तौर पर मानी रखता है। इन कक्षाओं में श्रम को कारखानों, फ़ार्मों, आदि की यात्राओं से जोड़ा जाना चाहिए, लेकिन ये **यात्राएं**

सैर-सपाटा नहीं होनी चाहिए, इनका ध्येय श्रम की दृष्टि से, पोलीटेक्निकल शिक्षा की दृष्टि से छात्रों को विभिन्न उत्पादन कार्यों से परिचित कराना होना चाहिए।

पांचवीं-सातवीं कक्षाओं में कार्यशालाओं, वर्कशापों में श्रम का स्थान श्रम-अभ्यास या किसी प्रतिष्ठान में श्रम नहीं ले सकता।

गर्मियों में बच्चों का श्रम विशेष महत्व रखता है, इसे पायोनियर कैम्पों का स्वरूप बदलना चाहिए, इन कैम्पों में उकताऊ, नीरस जीवन को **रोचक, दिलचस्प, आकर्षक जीवन का अंश** बनाना चाहिए।

पांचवीं-सातवीं कक्षाओं में श्रम की शिक्षा **इस काम के विशेषज्ञों द्वारा** दी जानी चाहिए। यहां यह ज़रूरी है कि उन लोगों को जिन्हें **सच्चे अर्थों में काम करना आता है,** विशेष पाठ्यक्रम में अध्यापन का प्रशिक्षण दिया जाये, अपूर्ण माध्यमिक विद्यालय में श्रम को शैक्षिक दृष्टि से पेश करना सिखाया जाये।

आठवीं-दसवीं कक्षाओं के छात्रों के लिए **स्कूल से बाहर** काम करना, जैसे कि फ़ैक्टरी-कारखाना शागिर्दी स्कूल के छात्र करते हैं, उस क़िस्म का काम करना संभव भी है और आवश्यक भी। इस मामलों में स्थानीय परिस्थितियां, उत्पादन का स्थानीय स्वरूप विशेषत: महत्वपूर्ण है, और यहां हर स्थान के लिए यह सोचना चाहिए कि वहां **खेतों में,** इन या उन प्रतिष्ठानों में लड़के-लड़कियों के काम का प्रबंध कैसे किया जा सकता है।

वयस्क मज़दूरों और किसानों के साथ काम विशेषत: महत्वपूर्ण है, जैसा कि लेनिन ने कोमसोमोल की तीसरी कांग्रेस में ज़ोर देकर कहा था।

अब हमारे पास इस मामले में बहुत अधिक संभावनाएं हैं। बड़ी कक्षाओं के छात्रों के श्रम के संगठन में **ट्रेड-यूनियनों को** गंभीरतापूर्वक भाग लेना चाहिए। उनके साथ मिलकर इस काम का प्रबंध करना चाहिए।

ये हैं कार्यक्रम के सिलसिले में मेरी टिप्पणियां। मैं सोचती हूं कि विभिन्न शाखाओं के अग्रणी कर्मियों के साथ भी श्रम-शिक्षा के बारे में विचार-विमर्श करना चाहिए। वे अच्छे परामर्श दे सकते हैं।

१९३६

परिच्छेद ४

स्कूल छात्रों का व्यवसाय-चयन संबंधी मार्गदर्शन

व्यवसाय का चयन

व्यवसाय के चयन का अपार महत्व है। ऐसा होना चाहिए कि इन्सान को अपने श्रम से ख़ुशी मिले, न कि उसे अपने काम से घिन हो। व्यवसाय अपनी मनपसंद का हो, आदमी जो काम करता है, उसमें उसकी दिलचस्पी हो, उसे अपने काम से लगाव हो, तभी वह अपने श्रम से ख़ुशी पा सकता है, अथक परिश्रम कर सकता है, अपने श्रम के क्षेत्र में कोई मूल्यवान योगदान कर सकता है।

व्यवसाय के चयन का प्रश्न सदा महत्वपूर्ण होता है, किंतु अब हमारे देश में, जिसे उद्योग में श्रम की उत्पादकता बढ़ानी है, इस उद्योग का द्रुत विकास करना है, यह प्रश्न विशेषतः उग्र हो गया है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में दाख़िले के समय हमारे यहां छात्र के रुझान की ओर प्रायः कोई ध्यान नहीं दिया जाता और लोग जिस संस्थान में दाख़िला पा सकते हैं, उसी में दाख़िला ले लेते हैं। इसका नतीजा क्या होता है? होता यह है कि आदमी प्रायः उच्च शिक्षा-संस्थान में केवल इसलिए पढ़ता है कि बाद में अच्छी नौकरी पा सके, इसलिए कतई नहीं कि इस क्षेत्र में उसकी रुचि है। सो उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपने काम में माहिर व्यक्ति नहीं, बल्कि बाबुओं की तरह अपना काम करनेवाला व्यक्ति होता है। वह परीक्षा भी दे लेगा, और सारा ज़रूरी काम भी करेगा, लेकिन उसके काम में उत्साह नहीं होगा, उसका श्रम कभी भी सृजनात्मक नहीं होगा।

हमारे युवाजन "श्रम-जनतंत्र" के बारे में बड़े अच्छे गीत गाते हैं। लेकिन देश को ऐसा जनतंत्र बनाने हेतु हमें कथनी को करनी में बदलने के लिए परिश्रम करना है, इस बात के लिए काम करना है कि हमारे जनतंत्र में श्रम अभिशाप का नहीं, सुख का स्रोत बने।

व्यवसाय के चयन का काम ठीक से आयोजित करना चाहिए।

बुर्जुआ देशों में यह प्रश्न अत्यंत संकीर्ण होकर रह जाता है, वहां इसे मुख्यत: टेस्टों (शारीरिक शक्ति, तीक्ष्ण दृष्टि, दिशाविन्यास क्षमता, आदि के टेस्टों) की मदद से हल किया जाता है। बुर्जुआ विज्ञान में इस संबंध में बहुत कुछ किया जा चुका है। हमें उसकी उपलब्धियों का अध्ययन करना चाहिए और उनमें हमारे लिए जो स्वीकार्य हैं, उनका उपयोग शुरू करना चाहिए। पूंजीवादी देशों में तो वर्ग-विभाजन व्यवसाय के चयन को सीमाओं में जकड़ता है। हम इन सीमाओं को तोड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं। कुछ हद तक हम इन्हें तोड़ भी चुके हैं। मज़दूरों और किसानों के बच्चों के लिए मज़दूर-फ़ैकल्टियों और उच्च शिक्षा-संस्थानों में दाख़िले का प्रबंध इसमें विशेषत: सहायक हुआ है। लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं है। व्यवसाय का सही चयन ही श्रम को हर्षदायक बना सकता है। सो, स्कूल का सारा काम इस तरह संगठित होना चाहिए कि छात्र को व्यवसाय चुनने में मदद मिले। यदि स्कूल में मात्र पढ़ाई होती है तो वहां बच्चों के रुझानों और रुचियों के प्रकट होने के लिए वहां कोई ज़मीन नहीं होती। इन्हें बस दबा दिया जाता है। व्यापक रूप से होनेवाला स्कूल का सामाजिक और श्रम-कार्य ही बच्चे की शक्ति को "मुक्त" करता है, उसे स्वयं अपना ज्ञान पाने, अपनी अभिरुचि, अपना रुझान समझ पाने में मदद देता है।

लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सचेतन रुचि प्रबल हो पाये, सांयोगिक न रहकर स्थायी बन जाये।

मेरे विचार में स्कूलों के अंतर्गत मंडलियों की व्यवस्था इसमें बहुत बड़ी भूमिका अदा कर सकती है। मंडली में काम करते हुए किशोर सही-सही यह तय कर सकता है कि दत्त कार्य से उसे कितना संतोष होता है, इस काम में वह किस हद तक मगन हो सकता है।

परंतु इन मंडलियों का काम वैसा नहीं होना चाहिए, जैसा कि अब है।

यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि मंडलियों में भाग लेना अनिवार्य नहीं हो सकता – ऐसा करने पर इनकी सारी सार्थकता जाती रहती है। मंडलियों को कक्षा की पढ़ाई का ही एक रूप कतई नहीं बनने दिया जा सकता।

मंडलियों में छात्रों को स्वेच्छा से भाग लेना चाहिए। इस काम का दूसरा पहलू है मंडली के संचालन का स्वरूप। कभी-कभी मंडली अतिरिक्त पाठ मात्र होती है, उदाहरण के लिए, रसायन का अध्यापक ही तत्संबधी विषय की मंडली का संचालक होता है। ऐसा संगठन सही नहीं है। मंडली में तो छात्रों द्वारा स्वयं किया जानेवाला सामूहिक कार्य ही महत्वपूर्ण है। अधिक जाननेवाला कम जाननेवाले की मदद करे। लेकिन मंडली तयशुदा रास्ते पर नहीं चल सकती, उसे अपना रास्ता ढूंढ़ना चाहिए, स्वयं अपना काम आगे बढ़ाना चाहिए, भले ही वह ग़लतियां करे, लेकिन इन ग़लतियों से सीखे। मंडली का कोई संरक्षक नहीं होना चाहिए। मंडली को सहायता की ज़रूरत है, संरक्षण की नहीं।

इसके बाद मंडलियों के स्वरूप का सवाल आता है। हमारे यहां बहुत थोड़ी क़िस्म की मंडलियां हैं। नाटक मंडलियां, क्रीड़ा मंडलियां, साहित्यिक और प्रकृतिप्रेमी मंडलियां हैं, अब कृषि, सहकारिता और रेडियो मंडलियां भी बनने लगी हैं।

मैं सोचती हूं कि अध्यापन मंडलियां, विद्युततकनीकी, यांत्रिक, आदि भांति-भांति की तकनीकी मंडलियां भी होनी चाहिए और विभिन्न उत्पादन-कार्य करनेवाली मंडलियां भी। मंडलियां जितनी अधिक विविधतापूर्ण होंगी, उतनी ही आसानी से किशोर अपनी पसंद की मंडली ढूंढ़ सकेगा और उसमें अपनी क्षमता का विकास कर सकेगा।

सही ढंग से आयोजित मंडलियां बच्चों की रुचियों के विभेदन में, उन्हें अधिक गहन बनाने में सहायक होती हैं और किशोर के लिए व्यवसाय का चयन बहुत आसान बना सकती हैं।

इस सिलसिले में हमने अब तक जो अनुभव पाया है, उसका बड़े जतन से सामान्यीकरण करना, उसका मूल्यांकन करना और छात्रों को उससे परिचित कराना चाहिए। भांति-भांति की अधिक से अधिक मंडलियां बनाई जायें, उनके लिए अनुमानित योजनाएं तैयार

की जायें। स्कूलों के ज़रिए निश्चित क़िस्म की मंडलियों का प्रचार किया जाये। उदाहरण के लिए विद्युततकनीकी मंडलियां, जो लेनिन के लेख के अनुसार[1] आस-पास के हर बिजलीघर का उपयोग बिजली संबंधी ज्ञान के प्रचार के लिए करें।

हमें अच्छी तरह से यह सोचना-विचारना चाहिए कि स्कूलों के अंतर्गत विभिन्न मंडलियां बनाने का काम किस तरह सर्वश्रेष्ठ ढंग से आयोजित किया जा सकता है।

१६२५

समाजवाद के निर्माण के सभी कार्यों के लिए कर्मी तैयार करें

व्यवसाय का चयन एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है। प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ दे सकता है उसका अधिकतम तभी देता है, जबकि वह अपनी रुचि के क्षेत्र में काम करता हो, जहां उसकी प्राकृतिक प्रतिभा पूर्ण रूप से मुखरित हो सकती हो। बेशक ऐसे क्षण भी आते हैं, जब जिस काम में ख़ास दिलचस्पी नहीं है वह भी करना पड़ता है। हमारे युवाजन, कोमसोमोल-सदस्यों का यह गीत बिल्कुल सही है: "ज़रूरत जो आये तो जवानी भी कुर्बान कर दें।" इसीलिए तो वे अग्रणी युवाजन हैं, कोमसोमोल-सदस्य हैं। वे ऐसे गीत गाते ही नहीं, ऐसा करते भी हैं।

लेकिन यदि इस या उस काम के लिए नियुक्त किये जा रहे युवक अथवा युवती की प्रतिभा और रुचि की ओर हम नियमतः ध्यान न दें, तो यह एकदम बेतुकी बात होगी।

आजकल सभी युवाजन मिलों-कारखानों में काम करना चाहते हैं। यह फ़ैशन है, सभी ख़रादी, फ़िटर, आदि बनना चाहते हैं। तथाकथित बौद्धिक व्यवसाय मन मारकर ही चुनते हैं। यहां, एक ओर बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों के निर्माण-कार्य का रोमांच है, भीमकाय मिलों-कारखानों का निर्माण युवाजन को अभिभूत करता है, समाजवादी प्रतियोगिता उनका उत्साह जगाती है, कारखाने के सुघड़ कर्मी-समुदाय में काम सहर्ष होता है। बौद्धिक व्यवसायों में कर्मी-समुदाय इतने सुसंगठित

नहीं होते, अक्सर अकेले बैठ कर काम करना होता है। और फिर कारखाने में काम करने का मतलब है—तुम सर्वहारा हो; सर्वहारा अग्रणी वर्ग है, जिसके सम्मुख संसार के पुनर्गठन का कार्यभार है। यह बात भी निश्चित भूमिका अदा करती है कि आज मज़दूर वर्ग की स्थिति डाक्टरों, शिक्षकों, आदि से कहीं अधिक अच्छी है। यह बात भी मानी रखती है कि आज मज़दूर के लिए उच्च शिक्षा पाना, निश्चित पद पाना अधिक आसान है।

लेकिन हमें क्षण भर को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि हम समाजवादी समाज का निर्माण कर रहे देश में रह रहे हैं। विराट मिलों, मोटर और ट्रैक्टर कारखानों, बिजलीघरों और धातु कारखानों का निर्माण—यह सब समाजवाद के निर्माण का पूर्वाधार है, उसकी नींव है, यह पूर्वाधार आवश्यक है, किंतु पर्याप्त नहीं। समाजवाद एक नई व्यवस्था है, इसका अर्थ है उज्ज्वल जीवन, जो सारा सामूहिकतावादी सिद्धांतों के आधार पर संगठित है।

१८ दिसंबर १६१६ को 'स्मेना' ('नई पीढ़ी') नामक पत्रिका के पहले अंक में लेनिन ने पेत्रोग्राद के युवाजन के नाम अभिवादन संदेश में लिखा था: "लाल सप्ताह के इन दिनों में मैं पेत्रोग्राद गुबेर्निया के मज़दूर-किसान युवाजन का अभिवादन करता हूं।

"नौजवान साथियो, इस दिशा में अपना काम तेज़ करो, ताकि अपनी नई, युवा शक्ति के साथ नये, उज्ज्वल जीवन के निर्माण में लग सको।"[1]

इसके महीने भर बाद मास्को के क्रास्नाया प्रेस्न्या इलाक़े के मज़दूरों और लाल सैनिकों को संबोधित करते हुए लेनिन ने कहा: "हमने एक महान संघर्ष छेड़ा है, जो जल्दी ही पूरा नहीं होगा: यह भुखमरी, ठंड और टाइफ़स के खिलाफ़, प्रबुद्ध, उज्ज्वल, संतृप्त और स्वस्थ रूस के लिए मेहनतकश सेनाओं का रक्तहीन संघर्ष है, लेकिन हम इस संघर्ष में भी वैसी ही निर्णायक विजय पायेंगे, जैसी हमने सफ़ेद गार्डों के खिलाफ़ संघर्ष में पाई है।"[2]

कोमसोमोल-सदस्य लेनिन के ये शब्द जानते हैं। उनकी पहल पर सांस्कृतिक अभियान चलाया गया और निरक्षरता उन्मूलन के क्षेत्र में भारी विजय पाई गई। लेकिन क्या निरक्षरता मिटा देना ही सब कुछ

है? हमें संस्कृति के, स्वास्थ्यरक्षा, सहकारिता, आहार, आदि क्षेत्रों में, विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में विराट कार्य करना है। समाजवाद की सारी गहन व्यवस्था के लिए संघर्ष करना है।

लेकिन क्या कर्मियों के बिना यह संघर्ष किया जा सकता है? एक उदाहरण लें। देहातों में पुस्तकों के प्रचार के लिए कोमसोमोल बहुत कुछ कर रहा है। लेकिन इससे भी अधिक करने की आवश्यकता है। पुस्तकालय के काम के लिए बहुत अधिक कौशल चाहिए, साहित्य का और विशेषत: कम्युनिस्ट साहित्य का ज्ञान होना चाहिए, यह पता होना चाहिए कि इस क्षण जनसाधारण की रुचि किन प्रश्नों में है, पाठकों की मांगों का आदर करना आना चाहिए। गोर्की का 'मेरे विश्वविद्यालय' उपन्यास पढ़िये और आप देखेंगे कि किस तरह गोर्की बुर्जुआ साहित्य से वह सब पा लेते थे, जिसकी उन्हें, एक सर्वहारा को ज़रूरत होती थी। हमें पुस्तकें जनसाधारण के लिए उपलभ्य बनानी चाहिए, ताकि उनके लिए ज्ञान के द्वार खुलें, वे मानवजाति की सारी उपलब्धियों को आत्मसात कर सकें।

लेकिन कोमसोमोल का सदस्य होना हो काफ़ी नहीं है, ज्ञान होना चाहिए, लगन से शिक्षा पानी चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि कोमसोमोल सदस्य हो गये, तो तुम्हें सब कुछ आ गया। हमें अपने सुशिक्षित लाइब्रेरियन चाहिए—एक, दो नहीं, हज़ारों। जनसाधारण साक्षर हो गये हैं, उन्हें पुस्तकालयों का व्यापकतम जाल चाहिए।

हम सार्विक शिक्षा लागू कर रहे हैं, कम्युनिस्ट शिक्षा-दीक्षा की, लोगों का चहुंमुखी विकास करने की बातें कर रहे हैं, भारी-भरकम पाठ्यक्रम बना रहे हैं, लेकिन क्या कोमसोमोल सदस्य स्कूल का शिक्षक बनना अपने लिए सम्मान की बात मानते हैं?

हमारे देश को स्वस्थ, सशक्त देश बनना है। क्या डाक्टरों के बिना ऐसा करना संभव है? लेकिन क्या कोमसोमोल सदस्य डाक्टरी शिक्षा पाना चाहते हैं, क्या वे इस विज्ञान की सभी उपलब्धियों पर अधिकार पाने के लिए अथक परिश्रम करते हैं?... जनता की आवश्यकताएं बहुत बढ़ गई हैं, लोग सुसंस्कृत जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, गंदगी में नहीं रहना चाहते, वे चाहते हैं कि उनके पास पुस्तकें हों, ज्ञान हो।

15-1000

हमें वितरण को, व्यापार को नये, समाजवादी ढंग से संगठित करना चाहिए। समाजवादी वितरण के मोर्चे पर बहुत बड़ी संख्या में कर्मी चाहिए। यह मोर्चा भी उत्पादक मोर्चे से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। चूंकि हम समाजवाद का निर्माण कर रहे हैं, इसीलिए, हमारे यहां बौद्धिक व्यवसायों के कर्मियों की अत्यधिक मांग है। ज्ञान के सभी क्षेत्रों में, विज्ञान के सभी क्षेत्रों में हमें नई पीढ़ी में से, कोमसोमोल सदस्यों में से कर्मी प्रशिक्षित करने हैं।

कोई भी हमारे बदले समाजवाद नहीं बना देगा। लेनिन कहते थे: अकेले कम्युनिस्टों के हाथों समाजवाद का निर्माण नहीं किया जा सकता, साथ ही वह यह भी कहते थे कि मार्गदर्शन हमें करना चाहिए, न कि हमारा मार्गदर्शन होना चाहिए, वरना हम कहीं के कहीं पहुंच जायेंगे। मार्गदर्शन करने का अर्थ हुक्म चलाना, आदेश देना नहीं है। हुक्मों, आदेशों से अक्सर बहुत कम बात बनती है। रास्ता वही दिखाता है, जो काम जानता है, उसे समझता है, काम का मर्म समझता है। काम जाने बिना सही नेतृत्व नहीं हो सकता। हमें ज्ञान के सभी क्षेत्रों में, सभी तथाकथित बौद्धिक व्यवसायों के अपने कर्मी तैयार करने हैं। आवश्यकता इस बात की है कि मिलों-कारखानों में काम करनेवाले युवाजन में जो उत्साह व्याप्त है वह बौद्धिक व्यवसायों में कार्यरत युवाजनों पर भी छा जाये। इस मोर्चे पर हमें अपनी सर्वश्रेष्ठ शक्ति लगानी चाहिए। लेकिन शक्ति मात्र लगानी ही नहीं चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि कोमसोमोल बौद्धिक व्यवसायों के मोर्चे पर काम कर रहे अपने हर सदस्य का ध्यान रखे, मज़दूर जनसाधारण के साथ उसका संपर्क क्षीण न होने दे, उसके काम पर सदा नियंत्रण रखे। महत्व की बात यह है कि इस क्षेत्र में भी, श्रम के दूसरे क्षेत्रों की भांति, श्रम-प्रतियोगिता आयोजित की जानी चाहिए।

अंत में मैं एक और प्रश्न का उल्लेख करना चाहूंगी। हम वर्गहीन समाज के निर्माण के पथ पर अग्रसर हैं। लेकिन वर्गहीन समाज बनाने के लिए यह अपेक्षित है कि लोगों का मानसिक और शारीरिक श्रम करनेवालों में विभाजन मिटाया जाये। हमारा पोलीटेक्निकल स्कूल इस ध्येय की पूर्ति करता है। लेकिन वह अपने इस कार्यभार को तब तक पूरा नहीं कर पायेगा, जब तक कि उसे बाहर से, पुनर्गठित

हो रहे जीवन से सहायता नहीं मिलेगी। आवश्यकता इस बात की है कि उन परिणामों की प्रतीक्षा किये बिना, जो इस स्कूली शिक्षा से कमोबेश सुदूर भविष्य में, दस-बीस साल बाद प्राप्त होंगे, कोमसोमोल अभी से बौद्धिक और शारीरिक श्रम के भेदों को मिटाने में लग जाये। निर्माणाधीन समाजवाद का वातावरण इसमें अधिकाधिक सहायक होगा। शारीरिक श्रम के क्षेत्र में काम करनेवाले कोमसोमोल सदस्यों को अतिरिक्त श्रम के रूप में कोई मानसिक श्रम का कार्य करना चाहिए और मानसिक श्रम करनेवालों को शारीरिक श्रम का। ऐसे विभिन्नतम और विविधतम संयोजन हो सकते हैं – इस बात के अनुसार कि किसकी क्या रुचि, क्या योग्यता है, कैसे व्यवसाय संयोजन के लिए उपयुक्त हैं और किस तरह के संयोजन से सबसे अच्छे परिणाम निकलते हैं। यह बिल्कुल नया काम है। यहां भटकाव, एक व्यवसाय छोड़कर दूसरा हाथ में लेना कतई नहीं होना चाहिए। लेकिन इस दिशा में रास्ता अवश्य प्रशस्त करना चाहिए। आधुनिक प्रविधि व्यवसायों का ऐसा संयोजन करने की आवश्यकता हमारे सामने रख रही है।

कोमसोमोल सदस्यों की ओर से इस दिशा में ज़बरदस्त पहलक़दमी होनी चाहिए और स्पष्टतः निर्धारित लक्ष्य तथा उसकी ओर बढ़ने का दृढ़ संकल्प। एक व्यवसाय का अध्ययन करने के बाद हो सकता है दूसरा व्यवसाय स्वयं, पत्रव्यवहार द्वारा, साथियों की मदद से, मंडलियों में सीखना पड़े। गंभीर शिक्षा की आवश्यकता है। शुरूआत ही महत्वपूर्ण है। पहले क़दम ही कठिन होंगे।

१६३२

व्यवसाय का सही चयन

व्यवसाय का सही चयन काम के लिए भी, उत्पादन के लिए भी और स्वयं कर्मी के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है।

कमज़ोर नज़रवाले, कठिन क्षणों में हतप्रभ हो जानेवाले व्यक्ति को ट्राम का ड्राइवर बना दो, तो यकीनन यह कहा जा सकता है कि वह एक न एक दिन ज़रूर दुर्घटना कर बैठेगा। दुर्बल व्यक्ति को ऐसे काम में लगा दो, जिसके लिए शारीरिक शक्ति की ज़रूरत है, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वह यह काम पूरा नहीं कर पायेगा और उसकी रही-सही ताकत भी जाती रहेगी। तंत्रिका-तंत्र के रोग से ग्रस्त और अज्ञानी व्यक्ति को अध्यापक बना दो, तो वह ज़रूर बच्चों को बिगाड़ डालेगा।

यही कारण है कि लोगों को चुनते समय यह ठीक-ठीक पता होना चाहिए कि किसे किस काम में लगाया जा सकता है। इस या उस कार्य के लिए कर्मी में कैसे गुण, ज्ञान और योग्यता होनी चाहिए – यह तय करना नितांत महत्वपूर्ण है। बुर्जुआ वर्ग ने बहुत पहले ही इस सच्चाई को पहचान लिया है और वह इस प्रश्न की ओर बहुत ध्यान देता है। कई ऐसी वैज्ञानिक परीक्षाएं हैं, जिनसे यह पता चलता है कि विमानचालक, ट्रामड्राइवर, इस या उस जटिल ख़राद पर काम करनेवाले मज़दूर, फ़ोरमैन, इंजीनियर, इत्यादि में कैसे गुण होने चाहिए। विज्ञान की एक अलग शाखा भी है – व्यवसायविज्ञान, जो इस या उस व्यवसाय के कर्मी के लिए आवश्यक गुणों का अध्ययन

करती है। हमें इन वैज्ञानिक रचनाओं का बड़े ध्यान से अध्ययन करना चाहिए ताकि इनमें से वह सब ले सकें, जिसकी हमें आवश्यकता है। आधुनिक, बुर्जुआ भी, व्यावहारिक मनोविज्ञान भी इस संबंध में बहुत कुछ दे सकता है।

बेशक हमें बुर्जुआ व्यावहारिक मनोविज्ञान के प्रति आलोचनात्मक रुख़ अपनाना चाहिए, क्योंकि वह इस प्रश्न को अपने बुर्जुआ-वर्गाधारित दृष्टिकोण से हल करता है: सत्ताधारी लोगों और उनकी संतानों के लिए उसका एक मापदंड है तथा मेहनतकशों के बच्चों के लिए दूसरा। पुरुषों के श्रम को वह एक मापदंड से देखता है और स्त्रियों के श्रम को दूसरे मापदंड से। और फिर यह बात विशेषत: ध्यान देने योग्य है कि बुर्जुआ व्यावहारिक मनोविज्ञान कर्मियों के चयन को **केवल** उत्पादन की दृष्टि से लेता है, इस या उस काम का कर्मी पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसकी शक्ति ऐसे काम में कितनी जल्दी चुक जाती है – इसमें बुर्जुआ मनोविज्ञान ख़ास दिलचस्पी नहीं लेता।

इसके विपरीत सोवियत देश में हमारी रुचि **केवल** उत्पादन में ही नहीं है, बल्कि मज़दूरगण में, इस उत्पादन-स्थल पर काम कर रहे कर्मी में भी है। समाजवादी व्यावहारिक मनोविज्ञान को कर्मी की ओर, इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि कोई व्यवसाय कर्मी के चहुंमुखी विकास में कहां तक सहायक है, इस या उस व्यवसाय से उसे कितना संतोष, श्रम का कितना हर्ष मिलता है।

अनुभव यह बताता है कि जिस व्यवसाय से आदमी को सबसे अधिक संतोष प्राप्त होता है, वही प्राय: वह व्यवसाय होता है, जिसमें आदमी उत्पादन में अधिकतम योगदान कर सकता है।

व्यवसाय-चयन के प्रति सही रुख़ होने पर उत्पादन और कर्मी के हित समान होते हैं, लेकिन ऐसा रुख़ तय कर पाने के लिए ही सदा कर्मी के हितों को, उसकी रुचियों को ध्यान में रखना चाहिए।

हमारे देश के विकास के वर्तमान चरण में समाजवादी व्यावहारिक मनोविज्ञान के सम्मुख वह प्रश्न अपनी पूरी उग्रता के साथ उठ खड़ा हुआ है, जो एंगेल्स ने ही अपने दिनों में पेश किया था, लेकिन जो सोवियत देश में ही हल किया जा सकता है। यह है **व्यवसायों का संयोजन**।...

जीवन में व्यवसायों का संयोजन हम देख रहे हैं: आज मज़दूर-धातुकर्मी, कल सामूहिक फ़ार्म का अध्यक्ष, परसों कमिसारियत का प्रधान... आज बुनकर, कल नगर सोवियत की सदस्या, परसों उच्च तकनीकी शिक्षा पा रही छात्रा और फिर इंजीनियर।...

सोवियतों में काम, सार्वजनिक काम मिल-कारखानों में, सामूहिक फ़ार्म में काम के साथ मिलकर नये क़िस्म के कर्मियों का निर्माण कर रहा है। एक ओर, तकनीकी काम, दूसरी ओर, बौद्धिक काम। लेकिन, यदि हम वर्गहीन समाज को ध्यान में रखते हैं – और हम उसे ध्यान में रखे बिना, उसके निर्माण के लिए कार्य किये बिना नहीं रह सकते (१७ वें पार्टी सम्मेलन में यह कार्यभार हमारे सम्मुख अकारण ही नहीं रखा गया है) – तो हमें यह समझना चाहिए कि व्यवसायों के विवेकसंगत संयोजन का प्रश्न एक अत्यंत गंभीर प्रश्न है, जिस पर पूरी गंभीरता से काम होना चाहिए।

इसके साथ ही हमें व्यवसायों में ऐसा संयोजन करने की चेष्टा करनी चाहिए कि, एक ओर, शारीरिक श्रम के व्यवसाय हों तथा, दूसरी ओर, मानसिक श्रम के। शारीरिक श्रम के व्यवसायों का मानसिक श्रम के व्यवसायों के साथ सही संयोजन यदि बड़े पैमाने पर किया जाये, तो उससे बौद्धिक और शारीरिक श्रम करनेवालों में कर्मियों के सामाजिक विभाजन की जड़ कट जायेगी।

मज़दूर फ़ैकल्टियों, विभिन्न तैयारी पाठ्यक्रमों और मज़दूर शिक्षा की सारी प्रणाली ने सोवियत संघ में कथनी में नहीं, बल्कि करनी में मज़दूरों-किसानों के लिए उच्च शिक्षा-संस्थानों के द्वार खोले हैं। लेकिन इस ओर से आंखें नहीं मूंदनी चाहिए कि बहुत-से विद्यार्थी उच्च शिक्षा-संस्थान को अच्छे ओहदे, मान-सम्मान पाने का, शारीरिक श्रम से छुटकारा पाने का रास्ता ही समझते हैं। यह उन दिनों का अंधविश्वास है, जब लोग ज्ञान को अपना विशेषाधिकार बनाते थे और शारीरिक श्रम हेय माना जाता था। पूंजीवादी देशों में आज भी ज्ञान एक विशेषाधिकार है; समाजवाद में ऐसा नहीं होना चाहिए।

हमारा कार्यभार यह कतई नहीं है कि अधिक से अधिक मज़दूरों को बुद्धिजीवी होने का, मज़दूर न रहने का अवसर प्रदान करें। असल बात तो यह है कि श्रम-विभाजन बिल्कुल नये आधार पर हो।

दूसरा प्रश्न है **विशेषताओं को बदलना।** हम ऐसे व्यक्ति की कल्पना नहीं कर सकते जो सदा-सदा के लिए एक ही व्यवसाय से बंधा हो। "आधुनिक उद्योग किसी भी प्रक्रिया के वर्तमान रूप को कभी उसका अन्तिम रूप नहीं समझता और न ही व्यवहार में उसे ऐसा मानता है। इसलिये इस उद्योग का प्राविधिक आधार क्रांतिकारी ढंग का है, जबकि इसके पहलेवाली उत्पादन की तमाम प्रणालियां बुनियादी तौर पर रूढ़िवादी थीं। आधुनिक उद्योग मशीनों, रासायनिक क्रियाओं तथा अन्य तरीक़ों द्वारा न केवल उत्पादन के प्राविधिक आधार में, बल्कि मज़दूर के कार्यों में और श्रम-प्रक्रिया के सामाजिक संयोजनों में भी लगातार तबदीलियां कर रहा है। साथ ही वह इस तरह समाज में पाये जानेवाले श्रम-विभाजन में भी क्रांति पैदा कर देता है और पूंजी की राशियों को तथा मज़दूरों के समूहों को उत्पादन की एक शाखा से दूसरी शाखा में निरंतर स्थानांतरित करता रहता है। लेकिन इसलिये आधुनिक उद्योग ख़ुद अपने स्वरूप के कारण... श्रम के निरंतर परिवर्तन, काम के रूप में लगातार तबदीली और मज़दूरों में सार्वत्रिक गतिशीलता को ज़रूरी बना देता है..."[1] मार्क्स ने लिखा था।

मार्क्स ने पूंजीवादी समाज के उद्योग की चर्चा की है। लेकिन समाजवादी समाज में भी उद्योग का तकनीकी आधार स्थायी नहीं हो जाता, इसके विपरीत वैज्ञानिक खोजों की गति तीव्र होती है और इससे तकनीकी आधार में और भी अधिक क्रांतिकारी परिवर्तन आते हैं। बेशक अर्थव्यवस्था के नियोजन से श्रम-शक्ति के पुनर्वितरण में अधिक योजनाबद्धता आयेगी, श्रम-शक्ति का अनुत्पादक व्यय ख़त्म होगा, लेकिन मज़दूर को सदा के लिए एक ही कार्य से, एक ख़राद से बांधने की दिशा में नियोजन नहीं होगा। पोलीटेक्निकल शिक्षा कार्यों के आवश्यक परिवर्तन को अत्यंत विवेकसंगत बनायेगी, कार्यों में इस परिवर्तन का नियमन होगा, लेकिन साथ ही यह परिवर्तन बढ़ता जायेगा।

आज हमारे देश में विशाल उद्योग का विकास मार्क्स की इस प्रस्थापना का सर्वश्रेष्ठ चित्रण करता है। किंतु, निस्संदेह, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि मज़दूरों के इस पुनर्वितरण का, कार्यों के

इस परिवर्तन का नियमन नहीं हो सकता और नहीं किया जाना चाहिए। नियमन एकदम आवश्यक है। लेकिन इस पुनर्वितरण का सही नियमन करने के लिए, विशेषज्ञों की किस्मों का, उनमें से प्रत्येक से संबंधित मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। इसके बिना नियमन का काम अनुमान से होगा, कम कारगर होगा। हम जानते हैं कि पूंजीवादी देशों में कुशल मज़दूर अक्सर अपनी विशेषज्ञता बदलते हैं (शोधकार्यों से पता चला है कि विशेषज्ञताओं में यह परिवर्तन एक आम बात है, एक आदमी चौदह तक विशेषज्ञताएं बदलता है), लेकिन आम तौर पर ये विशेषज्ञताएं ऐसी होती हैं, जिनके लिए एक ही किस्म के कर्मियों की आवश्यकता होती है।

इसके अलावा, उत्पादन के और स्वयं कर्मियों के हित में सामान्य पोलीटेक्निकल ज्ञान होना चाहिए, जिससे हर तरह का काम संगठित करने की योग्यता आती है। अपनी शक्ति का युक्तियुक्त उपयोग करते हुए, अपने श्रम का सही नियमन करते हुए, रास्ते में आनेवाली कठिनाइयों को दूर करने का उपाय खोजते हुए शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के काम करने की सामान्य योग्यता होनी चाहिए।

हमारी सारी शिक्षा – प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक – को पोलीटेक्निकल बनाना शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच खाई पाटने में बहुत बड़ी भूमिका अदा करेगा। पोलीटेक्निकल शिक्षा मानसिक और शारीरिक श्रम के पूंजीवादी विभाजन को सदा के लिए दफ़ना देगी। पोलीटेक्निकल शिक्षा की, सार्विक पोलीटेक्निकल शिक्षण की चर्चा करते हुए हम समाजवाद के निर्माण में, पूंजीवाद से हमें धरोहर में मिले सामाजिक श्रम-विभाजन को मिटाने में पोलीटेक्निकल शिक्षा की भूमिका पर कम ज़ोर देते हैं। बेशक, पोलीटेक्निकल स्कूल अपना यह कार्यभार तभी पूरा कर पायेगा, जबकि पोलीटेक्निकल शिक्षा की अवधारणा को सही-सही समझा जायेगा। हमें पोलीटेक्निकल शिक्षा को बढ़ईगिरी और लौहारगिरी तक सीमित करने के विरुद्ध, उसे देश के उत्पादन कार्य से अलग करने, शेष शिक्षा से अलग करने के विरुद्ध डटकर संघर्ष करना चाहिए। यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है कि पोलीटेक्निकल शिक्षा में श्रम का वैज्ञानिक संगठन और व्यवसाय-चयन संबंधी मार्गदर्शन भी शामिल होना चाहिए। यदि

हम उत्पादन के एक अभिन्न तत्व – ख़राद – का पूरी बारीकी से अध्ययन करते हैं, तो हमें उत्पादन के एक दूसरे अभिन्न तत्व – मज़दूर – का, प्रत्येक व्यवसाय में उसके श्रम की विशिष्टता का भी पूरी बारीकी से अध्ययन करना चाहिए। अभी हम ऐसा नहीं करते हैं। इसे हमें अनिवार्यतः पोलीटेक्निकल शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए।

आम तौर पर सातवीं तक के स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद छात्र को इस बात का बहुत ही अस्पष्ट-सा आभास होता है कि इस या उस कार्य को अधिकतम सफलता के साथ पूरा करने के लिए कौन-कौन से गुण होने चाहिए। आम तौर पर छात्र धातुकर्मी न केवल इसलिए बनना चाहते हैं कि उनका वेतन अधिक होता है, बल्कि इसलिए भी कि धातुकर्मी न केवल देश के उद्योग में अग्रणी भूमिका अदा करते हैं, बल्कि क्रांति में भी उन्होंने प्रमुख भूमिका अदा की थी।

बच्चे आम तौर पर ख़रादी या फ़िटर बनने का सपना देखते हैं, सोचते हैं कि वे "इसी काम के लिए बने" हैं। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के कार्यतंत्र की, जिसमें उत्पादन का प्रत्येक रूप सारी योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का एक अंग होता है, उससे अभिन्न रूप से जुड़ा होता है, – इसकी समझ किशोरों को नहीं होती है, स्कूल में उन्हें यह नहीं समझाया जाता। उन्हें यह भी नहीं बताया जाता कि अपनी शक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपयोग कैसे करें। हमारे युवाजन सभी क्षेत्रों में बड़े उत्साह से काम करते हैं।

लेकिन यौवन के उत्साह से इस प्रश्न की सार्थकता ख़त्म नहीं हो जाती कि शक्ति का कामकाजी, सर्वाधिक युक्तिसंगत वितरण हो। शक्ति का विवेकसंगत वितरण और यौवन का उत्साह मिलकर हमारी अर्थव्यवस्था को उस शिखर पर ले जा रहे हैं, जहां हमारी सफलताओं की गति और भी अधिक तीव्र हो जायेगी। पोलीटेक्निकल शिक्षा से श्रम की ऐसी समझ, ऐसे तौर-तरीके प्रचालित होंगे, जिनसे श्रम गुणवत्ता की दृष्टि से भिन्न हो जायेगा, पूर्णतः समाजवादी हो जायेगा।

मार्क्सवादी शिक्षक समाज व्यवसाय के चयन के प्रश्नों को शिक्षा पद्धति को पोलीटेक्निकल बनाने के कार्य का अभिन्न अंग मानता है और शिक्षा-पद्धति को पोलीटेक्निकल बनाने के प्रश्नों को समाजवाद

के लिए संघर्ष का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण मोर्चा।

यही कारण है कि अपनी एक बैठक में समाज ने व्यवसाय-चयन के प्रश्न को विचार-विमर्श के लिए रखा था और आगे भी उसकी ओर आवश्यक ध्यान देता रहेगा।

राजकीय वैज्ञानिक परिषद का स्कूल प्रभाग भी, जिसने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कार्य के लिए एक विशेष दल गठित किया है, इस पहलू की ओर ध्यान दे रहा है।

१९३२

व्यवसाय का स्वतंत्र चयन

व्यवसाय के स्वतंत्र चयन का अपार महत्व है। जब व्यक्ति वह काम करता है, जो उसे पसंद है, तो उस काम से वह ख़ुशी और संतोष पाता है, उस काम में पहलक़दमी दिखा सकता है, थकावट के बिना अधिक तीव्र श्रम कर सकता है।

भूदासता के दिनों में व्यवसाय का चयन आदमी की जन्मजात श्रेणी पर निर्भर होता था। शारीरिक श्रम किसान के भाग्य में बदा था। यह डंडे के ज़ोर पर किया जानेवाला श्रम था। शारीरिक श्रम अभिशाप माना जाता था। कहते हैं, ईश्वर ने आदम और उसके वंशजों को चिर शाप दिया था: "अपने माथे के पसीने की रोटी खाया करेगा"। मध्य युग का इतिहास विशाल जनसमूह के बाध्यतापूर्ण श्रम के ज्वलंत चित्र प्रस्तुत करता है।

फ़्रांस की बुर्जुआ क्रांति ने जनसाधारण को भूदासता से मुक्ति दिलाई। भूदासता के इस कानूनी उन्मूलन के बिना पूंजीवाद का विकास नहीं हो सकता था। उन दिनों के क्रांति-सेनानियों को लगता था कि श्रम की पूर्ण मुक्ति हो रही है। उदाहरणत: रूसो[1] ने बड़े जोश से व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता का यशगान किया। लेकिन नेक्रासोव के शब्दों में "भूदासता की बेड़ियों के स्थान पर लोगों ने बहुत-सी दूसरी बेड़ियां सोच लीं" और भूदासता पद्धति के स्थान पर पूंजीवादी पद्धति की, "उजरती दासता" की पद्धति की स्थापना से एक निश्चित,

काफ़ी सीमित संस्तर के लोगों को ही व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

समाज के श्रेणीगत विभाजन का स्थान उसके वर्गीय विभाजन ने लिया और यह नया विभाजन भी व्यवसाय के स्वतंत्र चयन में बाधक था। क़ानून हर किसी को अपनी पसंद का व्यवसाय चुनने का अधिकार देता था, किंतु वास्तव में कई बाधाएं, कई दीवारें खड़ी की गई थीं। ऐसी एक सबसे मज़बूत दीवार थी जनशिक्षा की पूंजीवादी पद्धति। प्रविधि के विकास और फ़ैक्टरियों में सामूहिक कार्य के लिए न्यूनतम साक्षरता अपेक्षित है। यही कारण है कि कतिपय पूंजीवादी देशों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा काफ़ी पहले लागू की जा चुकी है, जिसमें धर्म और बुर्जुआ नैतिकता का ज़हर घुला होता है। सारी शिक्षा इस तरह आयोजित है कि इससे अतीत और वर्तमान की विकृत तस्वीर छात्रों के दिमाग में बनती है।

इस पद्धति में प्राथमिक विद्यालय से माध्यमिक में जा पाना कोई आसान काम नहीं है, क्योंकि प्राथमिक विद्यालय का पाठ्यक्रम माध्यमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम से जुड़ा नहीं होता है। माध्यमिक विद्यालय छात्रों को ज्ञान से लैस करते हुए सत्ताधारियों के आदेशों का पालन करनेवाले राज्यतंत्र के सेवक तैयार करता है। यहां मुख्यतः टुटपुंजिया वर्ग के, कंगाल हो गये अभिजात वर्ग के, छोटे और मंझले व्यापारियों, दफ़्तरों के कर्मचारियों, अमीर हो गये किसानों, आदि के बच्चे जाते हैं।

माध्यमिक विद्यालय के विभिन्न रूप हैं, जो अधिक व्यापक ज्ञान देते हैं और किशोरों को किसी निश्चित "बौद्धिक व्यवसाय" के लिए तैयार करते हैं। माध्यमिक विद्यालय से तथाकथित "बौद्धिक व्यवसायों" का रास्ता खुलता था। टुटपुंजिया वर्ग अपने बच्चों को माध्यमिक विद्यालय में दाख़िला दिलाने की कोशिश करता था। माध्यमिक विद्यालय में शिक्षा पा लेने से विवशतापूर्ण भारी शारीरिक श्रम से छुटकारा पाने का, "इज़्ज़तदार नौकरी" पाने का अवसर मिलता था। माध्यमिक विद्यालयों से उच्च शिक्षा संस्थानों के भी द्वार खुलते थे, जहां उच्चतर कोटि के, अधिक अच्छा वेतन पानेवाले विशेषज्ञ तैयार किये जाते थे। भावी "उद्योग-कप्तानों" और "राज्य संचालन के कर्णधार" के लिए ख़ास स्कूल भी बने।

जनशिक्षा की सारी पद्धति पूंजीवादी व्यवस्था को सुदृढ़ करने की दृष्टि से सोच-विचारकर बनाई गई थी। व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता काफ़ी विवादास्पद समस्या थी। साम्राज्यवादी युद्ध के दिनों में जर्मनी के शैक्षिक पत्र-पत्रिकाओं में सर्वाधिक प्रतिभावान, हुनरमंद लोगों को आगे लाने की समस्या पर ज़ोरदार बहस हुई। लेकिन प्रश्न का सार यह नहीं था कि हर किसी को अपनी योग्यता निखारने का अवसर दिया जाये, बल्कि यह कि किस तरह सर्वाधिक प्रतिभावान लोगों को चुनकर पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा में लगाया जाये, शोषकों का सेवक बनाया जाये।

सोवियत सत्ता को ज़ारशाही से धरोहर में वही पूंजीवादी शिक्षा पद्धति मिली, बस उसमें भूदासता अधिकार के अवशेष तथा आम लोगों के अज्ञान एवं अधिकारहीनता के अवशेष और मिले हुए थे।

सोवियत सत्ता पहले कदमों से ही वर्गीय दीवारें तोड़ने में लग गई। उसने सारी जनशिक्षा पद्धति का पुनर्गठन किया, ताकि ज्ञान के सारे संचित भंडार में जनसाधारण के सांस्कृतिक उत्थान के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण है उसे चुना जाये और मज़दूरों को ज्ञान से लैस किया जाये।

एकीकृत श्रम-शिक्षा पद्धति बनाई गई। पाठ्यक्रमों में से पुरानी सारी बकवास निकाल फेंकी गई, मज़दूर फैकल्टियां खोली गईं, मज़दूरों और किसानों को माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में दाख़िला पाने के लिए तरह-तरह की रियायतें दी गईं। नये आधार पर सारी जनशिक्षा पद्धति का पुनर्गठन गृहयुद्ध के आग्नेय दिनों में, सारी सामाजिक व्यवस्था के पुनर्गठन के आग्नेय दिनों में हुआ। सो यह समझ में आता है कि कभी-कभी मामूली से मामूली काम कर पाना भी कितना कठिन होता था, कि सार्विक प्राथमिक शिक्षा तक लागू कर पाना कितना कठिन था। सांस्कृतिक मोर्चा लगातार संघर्ष का मोर्चा बना रहा। सोवियत सत्ता के अस्तित्व के २० वर्षों में जनशिक्षा का इतिहास इस संघर्ष के बारे में अधिक विस्तार से बतायेगा।

आज हमारे देश का चेहरा-मोहरा एकदम बदल गया है। बड़े उद्योग का विकास, कृषि का सामूहिकीकरण और मशीनीकरण – इस सबसे नगर और देहात को निकट लाने का आधार बना है, लोगों की दृष्टि-परिधि व्यापक हुई है, लोग अधिक सचेतन हो गये हैं। लोगों का जीवन अधिक बहुपक्षीय हो गया है, विज्ञान और प्रविधि के विकास

की बदौलत शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच संबंध बढ़ रहा है, पुरानी दीवारें, जो जनसाधारण के लिए ज्ञान का पथ रोके खड़ी थीं, ढहा दी गयी हैं।

सोवियत संघ में अब व्यवसाय के स्वतंत्र चयन के लिए मूलभूत पूर्वाधार बना लिये गये हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सांस्कृतिक मोर्चे पर हम किसी भी हद तक अपनी सतर्कता कम कर सकते हैं।

हम पलांश को भी यह नहीं भूल सकते कि निरक्षरता और अल्पज्ञान के अवशेष व्यवसाय के स्वतंत्र चयन के लिए कितनी बड़ी बाधा हैं।

हम पलांश को भी यह नहीं भूल सकते कि हमें छोटी उम्र से ही स्कूली और स्कूलेतर कार्यों की मदद से उदीयमान पीढ़ी की सामान्य शिक्षात्मक और पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि को व्यापक बनाना है, यह याद रखते हुए कि सामान्य शिक्षात्मक और पोलीटेक्निकल दृष्टि-परिधि की संकीर्णता व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता को सीमित करती है, इस चयन को सांयोगिक बनाती है।

हमें इस पुराने दृष्टिकोण के अवशेषों को मिटाना है कि शारीरिक श्रम कोई ऐसा श्रम है, जो कोटि-कोटि अभिशप्त लोगों के भाग्य में ही बदा है। हमें हर हालत में उच्च शिक्षा संस्थान में दाख़िला पाने, इंजीनियर बनने, "इज़्ज़तदार नौकरी पाने" की चेष्टाओं के विरुद्ध संघर्ष करना है। इन चेष्टाओं में "ख़राद पर काम करनेवाले" लोगों के प्रति पुराना दृष्टिकोण, शारीरिक श्रम में रत लोगों के प्रति हेय दृष्टि प्रतिबिंबित होती है। अग्रणी मज़दूर आंदोलन इस अंधविश्वास को शीघ्र ही मिटाने में सहायक होगा।

हमें अपने बच्चों का स्वास्थ्य हर तरह से सुधारना चाहिए, इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि उन्हें अच्छा आहार मिले, वे ताज़ी हवा में रहें, अच्छी नींद सोयें, उनका सामान्य शारीरिक विकास ठीक हो, उनकी दृश्य और श्रवण-स्मरण शक्ति विकसित हो, उन्हें श्रम की सामान्य आदतें पड़ें।

जब शिल्पों का, घरेलू उद्योग-धंधों का प्रभुत्व था, उन दिनों व्यवसाय का चयन प्रायः माता-पिता के व्यवसाय द्वारा निर्धारित होता था। तब श्रम-कौशल से श्रम की गुणवत्ता निर्धारित होती थी। यह कौशल, श्रम संबंधी ये आदतें सीखने के लिए छोटी उम्र से ही काम

शुरू करना होता था। अल्पायु में व्यवसाय का चयन तब एक सामान्य बात थी। सारतः शिल्प में संकीर्ण तकनीकी दक्षताएं विशाल भूमिका अदा करती थीं। इन्हें पाने के लिए बरसों तक अभ्यास करना होता था, इसलिए शागिर्दी बड़ी लंबी होती थी, छोटी उम्र में ही प्रशिक्षण शुरू हो जाता था। शिल्प के लिए, घरेलू उद्योग-धंधों के लिए अल्पायु में ही व्यवसाय का चयन लाक्षणिक था, वैसे यह कहना अधिक सही होगा कि कोई चयन था ही नहीं। बच्चों का व्यवसाय माता-पिता ही निर्धारित करते थे।

आधुनिक प्रविधि ने शागिर्दी के स्वरूप को आमूल बदला है। अब किसी व्यवसाय के लिए प्रशिक्षण पानेवाले से संकीर्ण तकनीकी अभ्यास की नहीं, बल्कि ख़राद से काम लेने, अपनी ख़राद का काम सर्वाधिक फलप्रद ढंग से आयोजित करने और सामान्यतः सारे उत्पादन से परिचित होने की अपेक्षा की जाती है। यह अकारण ही नहीं है कि बहुत-से युवा अग्रणी मज़दूरों ने फ़ैक्टरी-कारखाना शागिर्दी स्कूल में ही शिक्षा पाई है।

हमारे सामान्य शिक्षा विद्यालयों को छात्रों को आधुनिक प्रविधि के लिए अपेक्षित सामान्य श्रम-कौशल से लैस करना चाहिए और इस तरह उनके लिए अनेक व्यवसायों का पथ प्रशस्त करना चाहिए। व्यवसाय के चयन में जल्दबाज़ी का कोई काम नहीं है। लेनिन ने अल्पायु में ही व्यवसाय-चयन के ख़तरों की सख़्त चेतावनी दी थी।

कई ऐसे व्यवसाय हैं, जिनके लिए विशेष गुण होना आवश्यक है – श्रवणशक्ति और दृष्टि तीक्ष्ण होनी चाहिए, स्पर्श शक्ति विशेषतः विकसित होनी चाहिए, तंत्रिका केंद्र ख़ास तौर पर प्रशिक्षित होने चाहिए – इत्यादि। इन सब प्रश्नों का अध्ययन विज्ञान की विशेष शाखा – व्यावहारिक मनोविज्ञान – करती है। कई व्यवसायों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त लोग ढूंढ़ने में इसका बहुत महत्व है। यह विज्ञान लोगों के व्यवसाय के चयन में कई गलतियां करने से रोक सकता है। लेकिन व्यावहारिक मनोविज्ञान को सर्वशक्तिशाली मान लेना भी गलत होगा। यह सहायक, आनुषंगिक विज्ञान है। व्यवसाय का चयन मुख्यतः जिस बात से निर्धारित होता है, वह है सामाजिक व्यवस्था। समाजवादी व्यवस्था ही आबादी के व्यापकतम संस्तरों के लिए व्यवसाय का सर्वाधिक स्वतंत्र चयन सुनिश्चित करती है।

अंत में होनहार बच्चों के बारे में दो शब्द। होनहार बच्चे को भी अन्य सभी बच्चों की तरह सामान्य शिक्षा पाने का अधिकार होना चाहिए। हमें उसके लिए आम सोवियत स्कूल में ही चहुंमुखी विकास की संभावनाएं सुनिश्चित करनी चाहिए, यह याद रखते हुए कि अल्पायु में ही विशेषज्ञता में सीमित हो जाने से भविष्य में बच्चे के लिए अपनी योग्यता के उपयोग की संभावनाएं भी सीमित हो जायेंगी। एक उदाहरण लें। बच्चे की दृश्य-स्मरण शक्ति प्रखर है। वह बड़े अच्छे चित्र बनाता है। उसे छोटी उम्र में ही व्यावसायिक विद्यालय में दाख़िल करा दिया जाता है, जहां वह चित्रकारी की विधियां सीखता है, लेकिन उसका दृष्टिकोण व्यापक बनाने की परवाह कोई नहीं करता, परिघटनाओं के प्रति कम्युनिस्ट रवैया उसमें विकसित नहीं किया जाता, उसे कोई भी सच्चा कम्युनिस्ट, सामूहिकतावादी, समाज का सक्रिय सदस्य नहीं बनाता। सो बड़ा होकर वह एक प्रतिभावान ख़ाकाकार बनता है – फलों की टोकरी की तस्वीर वह बहुत अच्छी बनाता है, लेकिन आधुनिक समाजवाद की विशिष्टता प्रतिबिंबित करनेवाला कोई चित्र बनाने में, कृत्रिमता के बिना सीधे-सादे ढंग से, इस तरह कि चित्र शब्दों से अधिक अभिव्यंजनात्मक हो – ऐसा चित्र बनाने में वह असमर्थ है।

आवश्यकता इस बात की है कि सामान्य शिक्षा विद्यालय भी और व्यावसायिक विद्यालय भी उसे कम्युनिस्ट बनने की शिक्षा दें, तभी वह अपनी प्रतिभा का सच्चा उपयोग कर सकेगा।

१९३६

बच्चों का चहुंमुखी विकास

सोवियत संविधान में वह सब दर्ज है जो लंबे संघर्ष के वर्षों में पाया गया है। संविधान के क्रियान्वयन की यह अपेक्षा है कि हम अपने सारे काम को अधिक ऊंचे स्तर पर उठायें।

...हमें बच्चों को बहुत कुछ बताना, उनका दृष्टिकोण व्यापक बनाना और समाज के सक्रिय सदस्य बनने में उनकी मदद करनी चाहिए। हम उन्हें बाल-कथाओं पर बहुत अधिक पालते हैं, जबकि उनके लिए वास्तविकता कथा-कहानी से कहीं अधिक रोचक है। और फिर बाल-कथाएं भी भांति-भांति की होती हैं।

सारगर्भित बाल-कथाएं होती हैं, जो लोगों के चरित्रों के, मानव संबंधों के ज्वलंत चित्र प्रस्तुत करती हैं, दूसरी ओर, ऐसी बाल-कथाएं भी होती हैं, जो चेतना पर परदा डालती हैं, लोगों को, जीवन को ठीक-ठाक समझने में बाधक होती हैं। जीवन बच्चों को बहुत-सी बातों को ध्यान से देखने पर विवश करता है, और यहां हम हथियार डालकर बैठे नहीं रह सकते।

हमें बच्चे की चेतना जगानी है, इस काम में पुस्तकें हमारी सहायक हो सकती हैं। अब बाल पुस्तकालयों का जाल बिछाना महत्वपूर्ण है। लेकिन बात केवल इतनी ही नहीं है। यह बात भी मानी रखती है कि बच्चे क्या पढ़ेंगे। पुस्तकों का चयन बहुत मानी रखता है। आज जबकि देहात के सांस्कृतिक स्तर को नगर के सांस्कृतिक स्तर के समीप लाने

16-1000

का प्रश्न उठा है, यह नितांत महत्वपूर्ण है कि देहात में लड़के-लड़कियों को पढ़ने के लिए पुस्तकें उपलब्ध हों, कि देहातों के स्कूलों में बालोपयोगी पुस्तकें अधिक हों, कि यह साहित्य अच्छा, सच्चा साहित्य हो, जो बच्चों के लिए सचमुच क़रीबी और समझ में आनेवाला हो, उनका ज्ञान बढ़ाता हो।

बच्चों को पायोनियर कार्य बहुत अच्छे लगते हैं, उन्हें करते हुए वे बहुत कुछ सीखते हैं। मैंने एक बार बच्चों को पुस्तकालयों के बारे में पत्र लिखा था। हमने ग्रामीण पुस्तकालयों की प्रतियोगिता आयोजित की और मुझे तब काफ़ी आश्चर्य हुआ, जब सामूहिक और राजकीय फ़ार्मों से आनेवाले लोगों ने बताया कि उनके यहां पुस्तकालयों के मामले में बच्चे पहल करते हैं।

स्कूलों के पुस्तकालयों के लिए बच्चों की रुचियों और उनके ज्ञान के स्तर को ध्यान में रखकर पुस्तकें चुननी चाहिए, लेकिन इस तरह पुस्तकालय बनाकर बच्चों को पुस्तकें चुनने की छूट देनी चाहिए। ऐसी बातें मुझे कतई नहीं पसंद हैं कि अमुक आयु के बच्चों को केवल अमुक पुस्तकें पढ़नी चाहिए और अमुक आयु के बच्चों को अमुक। बच्चों को हद से ज़्यादा संरक्षण में रखना, हर वक्त उन पर नियंत्रण रखना ठीक नहीं। उन्हें चुनाव की, अपनी ओर से पहल करने की निश्चित आज़ादी होनी चाहिए। जब बच्चे कुछ करने की सोचते हैं, तो इस सिलसिले में वे बहुत-से कदम उठाते हैं, संगठित होना सीखते हैं, इससे उनमें अनुशासन आता है। बच्चों को ऐसा काम देना चाहिए, जिसमें उनकी दिलचस्पी हो, जिसे करने में वे मगन हो सकें। और फिर बच्चों के विकास के स्तर को भी ध्यान में रखना चाहिए।

हमारी ऐसी अवधारणा बन गई है कि पुस्तक पढ़ते हुए ही ज्ञान पाया जा सकता है, लेकिन कैसे जीवन को देखा-समझा जाये, कैसे उसका प्रेक्षण, उसका अध्ययन किया जाये, नये ढंग से जीना कैसे सीखा जाये – इस सबके बारे में न पायोनियर लीडर और न ही शिक्षक ढंग से कुछ बताते हैं। जबकि ऐसे खेल हैं जो जीवन को ध्यान से देखना-समझना सिखाते हैं। स्कूलेतर काम में इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहिए कि घूमने या सैर करने, आदि के साथ-साथ कैसे प्रकृति का, लोगों का और आस-पास के सारे जीवन का प्रेक्षण करें।

यह हम नहीं सिखाते हैं और हमारे यहां जो मंडलियां हैं, वे भी ज़्यादातर व्यायाम की या नाटक की हैं।

दूसरी बात, हमारे यहां यह माना जाता है कि साहित्य, प्रकृति-अध्ययन, इतिहास, आदि की मंडलियां पढ़ाई को ही आगे जारी रखती हैं। मंडली में अनिवार्यतः एक संचालक होना चाहिए, जिसे सब कुछ बताना चाहिए और बच्चों को चिड़ों की तरह बस मुंह खोलना और सब कुछ निगलते जाना चाहिए। हमारे यहां संचालक के बिना मंडली की कल्पना ही नहीं की जाती। मंडलियों में बच्चों को अधिक आज़ादी दो, उन्हें ख़ुद काम करने दो।

ख़ेदवश यह कहना पड़ता है कि हम बच्चों की रुचियों और उनकी आयु-विशेषताओं का बहुत कम ध्यान रखते हैं। क्या हमारे पायोनियर लीडरों और शिक्षकों को मानव प्रकृति और बच्चों की आयु-विशेषताओं का ज्ञान नहीं होना चाहिए? कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो यह मानते हैं कि बच्चे का भाग्य उसकी आनुवंशिकता और सामाजिक परिवेश के प्रभाव द्वारा पूर्वनिर्धारित है। इधर इनकी उचित ही आलोचना हो रही है कि ये बच्चों के प्रति भावहीन, औपचारिक रवैया अपनाते रहे हैं, प्रतिशत अंकों के अनुसार बच्चों को योग्य-अयोग्य में बांटते रहे हैं, बजाय यह सोचने के कि बच्चों के विकास में कैसे सहायता दें। लेकिन यदि हम बच्चों की आयु-विशेषताएं नहीं जानेंगे और यह नहीं जानेंगे कि किसी आयु विशेष में बच्चों की रुचि किन बातों में होती है, तो हम अपने काम में सफलता नहीं पा सकेंगे।

हमारे यहां संस्कृति प्रासादों की बहुत चर्चा होती है। मुझे यह सुनकर बड़ा क्रोध आया कि पुराने बोल्शेविक समाज की इमारत में विशेषतः होनहार बच्चों के लिए प्रासाद खोला गया है। होनहार बच्चों को हमारे यहां बिगाड़ा जाता है। एक दिन मुझे एक बच्ची अपनी अध्यापिका के साथ जाती मिली, मैंने उसे देखकर हाथ हिलाया। इस पर उसकी अध्यापिका मेरे पास चली आई: "यह बड़ी होनहार बच्ची है।"

यदि हम बच्चों से यह कहते फिरेंगे कि वे बड़े होनहार हैं, तो सबको बिगाड़ डालेंगे। मुझे लेनिन के साथ अपनी एक बातचीत याद आती है। मैं उन्हें एक होनहार लड़के के बारे में बता रही थी, जिसे

उसके मां-बाप आये दिन संगीत सभाओं में ले जाते थे। लेनिन ने कहा, बेचारे बच्चे को मां-बाप से छीन लेना चाहिए, वरना वे उसे सता डालेंगे। लेनिन की बात शब्दशः सच निकली। बालक की मां उसे देश-विदेश ले जाती थी, हर जगह उसे दिखाती फिरती थी कि देखिये इसकी संगीत प्रतिभा कितनी असाधारण है। अंत यह हुआ कि बालक को मस्तिष्क शोथ हो गया और वह मर गया। बेशक, सदा ऐसा दुखद अंत नहीं होता है, लेकिन यह उदाहरण शिक्षाप्रद है।

हमें होनहार बच्चों के मन में यह बात नहीं बिठानी चाहिए कि वे औरों से अलग हैं, उन्हें कोई विशेष स्थिति नहीं देनी चाहिए। इस बात का ख़याल करना चाहिए कि उन्हें चहुंमुखी शिक्षा मिले। यह शिक्षा उनके लिए बाधक नहीं होगी, बल्कि जब वे बड़े होंगे, तो इससे उन्हें अपनी शक्ति और पसंद के मुताबिक व्यवसाय चुनने में मदद मिलेगी। छोटी उम्र से ही यह तय नहीं करना चाहिए कि यह बच्ची बैले नर्तकी होगी और यह बालक इंजीनियर।

हमें सभी बच्चों की हितचिंता करनी चाहिए, सभी को हम जो कुछ दे सकते हैं, उसका अधिकतम देना चाहिए।

स्कूलेतर कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह बच्चों की सही शिक्षा-दीक्षा में सहायक हो सकता है, उनके चहुंमुखी विकास के लिए उचित परिस्थितियां बना सकता है। हमें बच्चों की पहलकदमी का समर्थन करना चाहिए, उनके रचनात्मक कार्य में भी उनकी सहायता करनी चाहिए, उनका मार्गदर्शन करना और उनकी रुचियों को दिशा प्रदान करनी चाहिए। अक्सर माता-पिता बच्चों को बहुत बिगाड़ते हैं, उन्हें आये दिन सिनेमा, थियेटर ले जाते हैं। फ़िल्में बच्चों के दिमाग़ पर बोझ बनती हैं। बच्चों को ज़रा ग़ौर से देखिये, आप पायेंगे कि फ़िल्म के बाद बच्चा मां से ही उलटी-सीधी बात कह डालेगा, या स्कूल में दूसरों से भिड़ने लगेगा, इत्यादि। बच्चों को ऐसी फ़िल्में दिखानी चाहिए, जिन्हें वे समझ सकते हों, जिनसे बच्चों को ख़ुशी हो, उनकी दृष्टि-परिधि व्यापक हो। बड़ों के लिए फ़िल्म देखते हुए बच्चा अक्सर फ़िल्म का सार नहीं समझता है, बस बाहरी रूप को ग्रहण कर लेता है। मुझे किसी ने बताया था कि कैसे चैपलिन की वह फ़िल्म देखने के बाद जिसमें पेचकश से नाक खोलने का सीन है,

लड़के पेचकश लेकर एक दूसरे नाक खोलने की कोशिश करने लगे। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे सार समझें, उनके विचारों को सही दिशा प्रदान करनी चाहिए।

हमें बच्चों के तकनीकी केंद्रों का हर तरह से समर्थन करना चाहिए, बच्चों को मिलें-कारखाने, बिजलीघर दिखाने ले जाना चाहिए। संस्कृति प्रासादों में ऐसे कमरे होने चाहिए, जहां बच्चे जो चाहें बना सकें।

हमें बच्चों को इस तरह शिक्षित करना चाहिए कि वे अपने बाप-दादाओं के ध्येय को आगे बढ़ा सकें। लेनिन ऐसे बच्चों को देखना चाहते थे, जो अपने बाप-दादाओं का कार्य को सम्पन्न करेंगे। उनका कहना था कि हमारे बच्चे और भी अधिक अच्छी तरह संघर्ष करना व जीतना सीख जायेंगे।

बच्चों का चरित्र दृढ़ बनाने, उन्हें हृष्ट-पुष्ट बनाने, उनमें उपयोगी होने की इच्छा पैदा करने, उन्हें समाज के सक्रिय सदस्य, सामूहिकतावादी बनाने की ओर अधिक ध्यान दीजिये, उनके चहुंमुखी विकास की चिंता कीजिये। हमारे बच्चे अनुपम हैं, हमें उन्हें समझना और लेनिन के ध्येय का सेनानी बनने में उनकी मदद करना सीखना चाहिए।

१९३७

टिप्पणियां

परिच्छेद १। श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण की समस्याओं पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों का दृष्टिकोण

उदीयमान पीढ़ी को कम्युनिज़्म की भावना में शिक्षित करने के बारे में मार्क्स के विचार (१९३३)

[1] **का० मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स** 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र', संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड १, भाग १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७६, पृष्ठ १४८।

[2] वही, पृष्ठ १४९–१५०।

[3] वही, पृष्ठ १५३।

[4] वही, पृष्ठ १५४।

[5] वही, पृष्ठ १४८-१४९।

[6] वही, पृष्ठ १५२।

[7] **फ़्रेडरिक एंगेल्स**, 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९८०, पृष्ठ १८३-१८४।

[8] **का० मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स**, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड १, भाग १, पृष्ठ १५१।

[9] **कार्ल मार्क्स**, 'फ़ायरबाख़ पर निबंध', का० मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड १, भाग १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७६, पृष्ठ १४।

[10] **आन्नेन्कोव, प० व०** (१८१२ या १८१३–१८८७) – साहित्यक समीक्षक, संस्मरण लेखक। उन्नीसवीं सदी के पांचवें दशक में मार्क्स से इनका परिचय रहा।

[11] **प्रूदों, प्येर जोज़ेफ़** (१८०९–१८६५) – फ़्रांस के टुटपुंजिया समाज-

वादी, अराजकतावाद के सिद्धांतकार। मार्क्स ने अपनी **पुस्तक** 'दर्शन की दरिद्रता' (१८४७) में प्रूदों के प्रतिगामी दृष्टिकोणों की धज्जियां उड़ाईं।

12 **कार्ल मार्क्स**, 'आन्नेनकोव के नाम मार्क्स का पत्र'। २८ दिसम्बर, १८४६, का० मार्क्स, फ्रे० एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड १, भाग २, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७८, पृष्ठ २८७।

13 **कार्ल मार्क्स**, 'दर्शन की दरिद्रता', १८४७।

14 वही।

15 **कार्ल मार्क्स**, 'पांडुलिपियों से', १८५७।

16 **कार्ल मार्क्स**, 'पूंजी', खंड १, पन्द्रहवां अध्याय, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृष्ठ ५४९-५५०।

17 वही, पृष्ठ ५५०–५५१।

18 **सीनियर, नसाउ विलियम** (१७९०–१८६४) – इंगलैंड के बुर्जुआ अर्थशास्त्री।

19 **कार्ल मार्क्स**, 'पूंजी', खंड १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृष्ठ ५५६।

20 वही, पृष्ठ ४५२।

21 **ओवेन, राबर्ट** (१७७१–१८५८) ब्रिटिश काल्पनिक समाजवादी, फ़ैक्टरियों के अंतर्गत बच्चों की सामाजिक शिक्षा-दीक्षा के पहले प्रतिष्ठानों के संस्थापक।

22 **कार्ल मार्क्स**, 'पूंजी', खंड १, पन्द्रहवां अध्याय, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृष्ठ ५४५–५४६।

23 वही, पृष्ठ ५५३।

24 वही, पृष्ठ ५५३।

25 वही, पृष्ठ ५५३।

26 वही, तेरहवां अध्याय, पृष्ठ ३७०।

27 **कार्ल मार्क्स**, 'अस्थायी केन्द्रीय परिषद के प्रतिनिधियों के लिए अलग प्रश्नों पर निर्देश', १८६७।

[28] **कार्ल मार्क्स**, 'फ़्रांस में गृहयुद्ध', का० मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड २, भाग १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७७, पृष्ठ २८९।

[29] वही, पृष्ठ २९५।

[30] **कार्ल मार्क्स**, 'गोथा-कार्यक्रम की आलोचना', का० मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स, संकलित रचनाएं (तीन खंडों में), खंड ३, भाग १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७८, पृष्ठ ३१।

[31] वही, पृष्ठ २९-३०।

[32] **लासाल, फ़र्दीनांद** (१८२५–१८६४) – जर्मन निम्नपूंजीवादी समाजवादी, जर्मन मज़दूर आंदोलन की नाना अवसरवादी प्रवृत्तियों में से एक – लासाल-पंथ – के जनक।

पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के लिए संघर्ष में लेनिन की भूमिका (१९३२)

[1] **नरोदवाद** – रूसी क्रांतिकारी आंदोलन में एक टुटपुंजिया प्रवृत्ति। यह १९वीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशकों में उत्पन्न हुई। नरोदवादियों ने निरंकुश सत्ता की समाप्ति और भूस्वामियों की ज़मीनें किसानों को देने की मांग की।

उन्होंने यह बात अस्वीकार की कि रूस में पूंजीवादी संबंधों का विकास अनिवार्य है। इसीलिए उनकी धारणा थी कि मुख्य क्रांतिकारी शक्ति सर्वहारा नहीं, बल्कि किसान है। वे ग्राम-समुदाय को समाजवाद का भ्रूण-रूप मानते थे। उनकी गतिविधियां सक्रिय "नायकों" और निष्क्रिय "जन-समूह" वाले भ्रांतिपूर्ण सिद्धांत पर आधारित थीं। किसानों को निरंकुशतंत्र के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित करने के प्रयत्न में नरोदवादी देहाती इलाक़ों में, जनता के पास ("जनता" के लिए रूसी भाषा का शब्द "नरोद" है, इसी कारण ये लोग "नरोदवादी" कहलाते थे) गये, पर वहां उन्हें कोई समर्थन न मिला।

नरोदवाद का विकास क्रांतिकारी जनवाद से उदारतावाद तक की कई मंज़िलों से गुज़रा।

१९वीं शताब्दी के नौवें और अंतिम दशकों में नरोदवादियों ने ज़ारशाही के प्रति समझौतावादी रुख़ अपनाया, कुलकों के हित व्यक्त किये और मार्क्सवाद का विरोध किया।

[2] **युजाकोव से० नि०** (१८४९–१९१०) – रूसी पत्रकार और अर्थ-शास्त्री। उदारपंथी नरोदवाद के एक सिद्धांतिकार। शिक्षा-दीक्षा के प्रश्नों पर युजाकोव के नरोदवादी दृष्टिकोण की आलोचना लेनिन ने अपनी रचनाओं 'स्कूल फ़ार्म और नाज़िरी स्कूल' तथा 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल' में की।

[3] यहां अभिप्राय **ग्रनात बंधुओं द्वारा** १८९० से प्रकाशित किये जाते रहे '**विश्वकोश**' से है। इस 'विश्वकोश' के सातवें संस्करण (१९१५, खंड २८) में लेनिन का लेख 'कार्ल मार्क्स' सेंसर के कारण अधूरा छपा था।

[4] **व्ला० इ० लेनिन**, 'पार्टी कार्यक्रम पुनरीक्षण संबंधी 'सामग्री', अप्रैल – मई, १९१७।

[5] यहां चर्चा ३१ दिसंबर १९२० से ४ जनवरी १९२१ तक हुए जनशिक्षा के प्रश्नों पर **पहले पार्टी सम्मेलन** की है। इसमें वाद-विवाद का एक प्रमुख प्रश्न यह था कि "सामाजिक शिक्षा-दीक्षा का आधार" क्या हो – पोलीटेक्निकल या मोनोटेक्निकल (व्यावसायिक) शिक्षा। त० फ़० ग्रिन्को द्वारा प्रस्ताविक जनशिक्षा के उक्राइनी नमूने को लेकर संघर्ष चला। व्यावसायिक शिक्षा विभाग के उपाध्यक्ष ओ० यू० श्मिद्त इसका समर्थन कर रहे थे। यह नमूना निम्न दो प्रस्थापनाओं पर आधारित था: १) १५ साल तक के बच्चों के लिए "एकीकृत सामाजिक शिक्षा-दीक्षा प्रणाली हो, इसके सभी संगठनात्मक रूप (किंडरगार्टन, बाल-घर, सातवीं कक्षा तक के स्कूल, इत्यादि) श्रम-सिद्धांत पर आधारित हों"; २) १५ वर्ष के बाद "उत्पादन के इस या उस क्षेत्र में विशेष प्रशिक्षण दिया जाये..."। यह बात रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के कार्यक्रम के खिलाफ़ जाती थी, जिसमें कहा गया था कि १७ वर्ष की आयु तक अनिवार्य सामान्य और पोलीटेक्निकल शिक्षा होगी। आयु सीमा को घटाने के पार्टी सम्मेलन के निर्णय को पार्टी ने एक अस्थायी आवश्यकता माना।

17-1000

[6] **व्ला० इ० लेनिन,** 'पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में', नदेज्दा कोन्स्तान्तीनोव्ना क्रूप्स्काया की प्रस्थापनाओं पर टिप्पणियां, १६२० (व्ला० इ० लेनिन, 'सार्वजनिक शिक्षा के बारे में', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १६८३, पृष्ठ १३०)।

[7] वही, पृष्ठ १३०।

[8] **व्ला० इ० लेनिन,** 'शिक्षा जन-कमिसारियत के क्रियाकलाप के बारे में', १६२१।

[9] **फ़ैक्टरी कारखाना शागिर्दी स्कूल** कुशल कर्मी तैयार करने के लिए १६२० में खोले गये। १६४० तक बड़ी संख्या में अस्तित्वमान रहे।

[10] **व्ला० इ० लेनिन, 'रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के कार्यक्रम के मसविदे के लिए सामग्री',** मुद्दा ५, जनशिक्षा के कार्यक्रम के परिशिष्ट का मसौदा, १६१६।

उदीयमान पीढ़ी की सार्विक शिक्षा और पोलीटेक्निकल श्रम के बारे में लेनिन के विचार (१६३२)

('युवाजन के बारे में लेनिन के विचार' लेख से उद्धृत)

[1] **व्ला० इ० लेनिन,** 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल', १८६७।

[2] **व्ला० इ० लेनिन,** 'पार्टी कार्यक्रम पुनरीक्षण संबंधी सामग्री', १६१७।

[3] **व्ला० इ० लेनिन,** 'जल परिवहन के कर्मियों की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में भाषण', १६२०।

[4] **व्ला० इ० लेनिन,** 'प्रथम सुब्बोतनिक से अखिल रूसी सुब्बोतनिक तक' १६२० (व्ला० इ० लेनिन, 'समाजवादी आर्थिक संगठन', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १६७६, पृष्ठ ३४८-३४६)।

[5] **व्ला० इ० लेनिन, 'युवक संघों के कार्यभार'** (रूसी कम्युनिस्ट युवक संघ की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में २ अक्तूबर, १६२० को

दिया गया भाषण), व्ला० इ० लेनिन, 'सार्वजनिक शिक्षा के बारे में', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९८३, पृष्ठ ९५।

6 वही, पृष्ठ १०८-१०९।

7 वही, पृष्ठ १११-११४।

8 वही, पृष्ठ ११४।

9 **क्रजीजानोव्स्की, ग० म०** (१८७२–१९५९) – सोवियत पार्टी नेता और राजनेता, १८९३ से कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य। ऊर्जाविज्ञानी, अकादमीशियन। १९२० में रूस के विद्युतीकरण के राजकीय आयोग के अध्यक्ष रहे, १९२१ से राजकीय योजना आयोग के अध्यक्ष बने; १९३०–१९३२ में केंद्रीय ऊर्जा विभाग के अध्यक्ष रहे और १९३० से सोवियत विज्ञान अकादमी के ऊर्जा संस्थान के निदेशक।

10 **व्ला० इ० लेनिन**, सोवियतों की आठवीं अखिल रूसी कांग्रेस में 'अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति तथा जन-कमिसार परिषद के क्रियाकलाप के बारे में दी गयी रिपोर्ट', १९२०।

11 वही।

12 **व्ला० इ० लेनिन**, सोवियतों की आठवीं अखिल रूसी कांग्रेस, 'विद्युतीकरण के बारे में रिपोर्ट पर प्रस्ताव का मसौदा', १९२०।

13 **व्ला० इ० लेनिन**, सोवियतों की नवीं अखिल रूसी कांग्रेस, 'आर्थिक क्रियाकलाप के प्रश्नों पर सोवियतों की नवीं अखिल रूसी कांग्रेस के निर्देश', २८ दिसंबर, १९२१।

14 **व्ला० इ० लेनिन**, 'शिक्षा जन-कमिसारियत के काम के बारे में', १९२१।

15 **व्ला० इ० लेनिन**, अखिल रूसी कार्यकारिणी समिति की बैठक, ४(१७) नवंबर, १९१७, 'वामपंथी समाजवादी क्रांतिकारियों के प्रश्न का उत्तर'।

16 **व्ला० इ० लेनिन**, 'मास्को में युवा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की तीसरी विश्व कांग्रेस के नाम', १९२२।

17 **व्ला० इ० लेनिन**, 'अखिल रूसी मज़दूर किसान युवक संघ की पांचवीं कांग्रेस के नाम', १९२२।

परिच्छेद २। पोलीटेक्निकल शिक्षा

समाजवादी स्कूल के प्रश्न पर कुछ विचार (१९१८)

[1] **सार्विक प्राथमिक शिक्षा** का प्रश्न १९वीं सदी के सातवें दशक से रूस की प्रगतिशील शक्तियों को निरंतर उद्विग्न कर रहा था। कुछ इलाक़ों में अपने बल पर इसे लागू करने के प्रयास भी किये गये। बीसवीं सदी के आरंभ में अक्तूबर क्रांति से पहले इस दिशा में उठाये गये सीमित व्यावहारिक कदम भी असफल रहे। ज़ारशाही सरकार सार्विक शिक्षा का क़ानून नहीं बनाना चाहती थी।

[2] **फ़्रेबेल, फ़्रेडरिक** (१७८२–१८५२) – जर्मन शिक्षाशास्त्री, पेस्तालोज़्ज़ी के अनुयायी। इन्होंने स्कूलपूर्व शिक्षा-दीक्षा की मौलिक पद्धति बनाई, जो १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में काफ़ी प्रचलित हुई। उनकी शिक्षा-पद्धति में कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। उदाहरणतः, इसमें बच्चे की गतिविधियां अनावश्यक हद तक नियमित की जाती हैं, जिससे उसमें स्वतंत्र कार्य करने की क्षमता का हनन होता है।

[3] **मांटसरी, मरिया** (१८७०–१९५२) – इतालवी डाक्टर और शिक्षाशास्त्री। इन्होंने स्कूलपूर्व आयु के बच्चों और छोटी कक्षाओं के बच्चों में ज्ञानेन्द्रियों और समन्वित गतियों के विकास की पद्धति तैयार करने की ओर बहुत ध्यान दिया। मांटसरी का शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण स्वतंत्र शिक्षा-दीक्षा के विचारों का ही एक रूप था। अपने समय में इन विचारों का शिक्षण-कार्य में कवायद और कठमुल्लापन के ख़िलाफ़ संघर्ष पर सुप्रभाव पड़ा था।

[4] छात्रों के कार्यकलाप के ज़रिए उन्हें ज्ञान प्रदान करना, उनमें निश्चित अभ्यास डालना, दक्षताएं विकसित करना ही **शिक्षण की श्रम-विधि** कहलाता है। इस विधि से बच्चे अपने चारों ओर के जगत का सक्रिय, रचनात्मक परिचय पाते हैं।

व्यावसायिक शिक्षा के कार्यभार (१९१८)

[1] तीसरे दशक के अंत और चौथे दशक के आरंभ में मज़दूर संगठनों की पहलकदमी पर **मज़दूर विश्वविद्यालय** खोले गये थे। प्रौढ़ शिक्षा के नये किस्म के शिक्षा-प्रतिष्ठान खुलने पर ये बंद कर दिये गये।

पोलीटेक्निकल शिक्षा संबंधी प्रस्थापनाएं (१९२०)

[1] **जनशिक्षा पर पहले पार्टी सम्मेलन में** क्रूप्स्काया की पोलीटेक्निकल शिक्षा पर रिपोर्ट की प्रस्थापनाओं का एक रूपांतर। बीमारी के कारण क्रूप्स्काया इस सम्मेलन में अपनी रिपोर्ट पेश नहीं कर सकी थीं। उनकी ये प्रस्थापनाएं अ० व० लुनाचार्स्की ने पेश की थीं। लेनिन ने इन प्रस्थापनाओं के हाशिये पर टिप्पणियां लिखी थीं। १९२९ में 'ना पुत्याख़ क नोवोई श्कोले' (नये स्कूल के पथ पर) नामक पत्रिका के दूसरे अंक में क्रूप्स्काया ने पहली बार ये प्रस्थापनाएं सोवियत पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति की स्थापना के एक आधारभूत दस्तावेज़ के रूप में छापीं।

श्रम शक्ति के प्रशिक्षण का प्रश्न (१९२८)

[1] **का० मार्क्स**, 'पूंजी', खंड १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृष्ठ ५५०।

[2] वही, पृष्ठ ५४९-५५०।

[3] वही, पृष्ठ ५५०-५५१।

[4] वही, पृष्ठ ५५१।

[5] वही, पृष्ठ ५४९।

पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में (१९२९)

[1] मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं के पहले संस्करण में ग़लती से यह लिखा गया है कि यह पत्र ग० श्तार्केनबर्ग के नाम लिखा गया था। वास्तव में **पत्र व० बोरगियस को** लिखा गया था।

[2] **व्ला० इ० लेनिन**, 'ग० म० ऋजीजनोव्स्की के नाम पत्र', २३ जनवरी, १९२०।

[3] **व्ला० इ० लेनिन**, 'ग० म० ऋजीजनोव्स्की के नाम पत्र', २० दिसंबर, १९२०।

[4] **व्ला० इ० लेनिन**, **'पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में।** 'नदेज्दा कोन्स्तान्तीनोव्ना क्रूप्सकाया की प्रस्थापनाओं पर टिप्पणियां' (व्ला० इ० लेनिन, 'सार्वजनिक शिक्षा के बारे में', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९८३, पृष्ठ १३१।

[5] वही, पृष्ठ १३१।

[6] **व्ला० इ० लेनिन**, 'पुरानी समाज-व्यवस्था के विध्वंस से एक नयी समाज-व्यवस्था के सृजन की ओर', १९२० (व्ला० इ० लेनिन, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड ३, भाग १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६६, पृष्ठ ४२८।

[7] वही, पृष्ठ ४२७।

पोलीटेक्निकल शिक्षा पद्धति के बारे में (१९२९)

राजकीय वैज्ञानिक परिषद के प्रथम अधिवेशन में रिपोर्ट के लिए तैयार की गयी प्रस्थापनाएं (१९२९)

[1] देश की अर्थव्यवस्था के समाजवादी पुनर्गठन के काल में शिक्षा जन-कमिसारियत के सम्मुख पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति के आगे विकास के मार्ग तय करने का कार्यभार था। **राजकीय वैज्ञानिक परिषद** के पहले अधिवेशन में इस विषय पर कई रिपोर्टें सुनी गईं। क्रूप्सकाया

ने 'पोलीटेक्निकल शिक्षा-पद्धति' रिपोर्ट पेश की। यहां इस रिपोर्ट की प्रस्थापनाएं दी गई हैं, जिनमें श्रम और पोलीटेक्निकल शिक्षा की पद्धति निरूपित है, विभिन्न ज्ञान-शाखाओं के आधारभूत नियमों के अध्यापन में तथा शिक्षण की श्रम-विधि में पोलीटेक्निकल रुख अपनाने की आवश्यकता पर तथा स्कूली शिक्षा में सिद्धांत और व्यवहार के संयोजन की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है।

राजकीय वैज्ञानिक परिषद १६१६–१६३२ में शिक्षा जन-कमिसारियत का प्रमुख वैज्ञानिक एवं प्रणालीतंत्रीय केंद्र था। परिषद के वैज्ञानिक-शैक्षिक प्रभाग का, जो १६२१ में स्थापित हुआ, संचालन क्रूप्स्काया करती थीं। यह प्रभाग शिक्षण के अंतर्य और विधियों पर काम करता था, स्कूलों के लिए पाठ्यक्रमों, पाठ्य-पुस्तकों और सहायक पुस्तकों को स्वीकृति देता था। 'नये स्कूल के पथ की ओर' पत्रिका इस प्रभाग का मुखपत्र थी।

[2] **किसान युवाजन विद्यालय** कोमसोमोल की पहलकदमी पर १६२३ से ग्रामीण इलाक़ों में प्राथमिक विद्यालयों के आधार पर खोले गये। सामान्य शिक्षा विषयों के अध्यापन के अलावा यहां कृषि का ज्ञान भी दिया जाता था और कृषि के संगठन का कार्य छात्रों को सिखाया जाता था। १६३४ में नगर-देहात सभी के लिए एक ही तरह के सामान्य शिक्षा विद्यालय खोले जाने के साथ ये विद्यालय बंद कर दिये गये।

[3] **फ़ैक्टरी-कारखाना स्कूलों** में सातवीं कक्षा तक सामान्य शिक्षा दी जाती थी। १६२५ से १६३४ तक ऐसे स्कूल थे। इनमें छात्रों को फ़ैक्टरी-कारखाना शागिर्दी स्कूल में या सामान्य शिक्षा विद्यालय की आठवीं कक्षा में आगे पढ़ाई जारी रखने के लिए तैयार किया जाता था। ये स्कूल उस फ़ैक्टरी या कारखाने के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित होते थे, जिसके आधीन ये खोले जाते थे। १६२७–१६३० में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे स्कूल खुले। १६३४ में इन्हें अपूर्ण माध्यमिक विद्यालय में पुनर्गठित कर दिया गया।

अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और पोलीटेक्निकल स्कूल (१९३०)

अखिल रूसी पोलीटेक्निकल शिक्षा कांग्रेस में रिपोर्ट के लिए तैयार की गई प्रस्थापनाएं

[1] **पोलीटेक्निकल शिक्षा पर पहली आखिल रूसी कांग्रेस** १० से १६ अगस्त १९३० तक मास्को में हुई। पार्टी की १६वीं कांग्रेस के कर्मियों के प्रशिक्षण के बारे में निर्णयों तथा जनशिक्षा के प्रश्नों पर दूसरे पार्टी सम्मेलन (अप्रैल १९३०) के निर्णयों के अनुसार स्कूली शिक्षा को पोलीटेक्निकल बनाने के क्षेत्र में ठोस कदम तैयार करना ही इस कांग्रेस का प्रमुख कार्यभार था। क्रूप्स्काया एकमत से इस कांग्रेस की अध्यक्षा चुनी गयी थीं।

[2] **का० मार्क्स** 'पूंजी', खंड १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृष्ठ ५५०।

अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और पोलीटेक्निकल शिक्षा (१९३०)

पोलीटेक्निकल शिक्षा के विषय पर पहली अखिल रूसी कांग्रेस में दिये गये भाषण और रिपोर्ट

[1] **नई आर्थिक नीति** – पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण की अवधि में सोवियत सर्वहारा राज्य द्वारा अनुसृत आर्थिक नीति। सोवियत रूस ने विदेशी सशस्त्र हस्तक्षेप और गृहयुद्ध के दौरान जिस आर्थिक नीति का अनुसरण किया था और जो इतिहास में "युद्धकालीन कम्युनिज़्म" की नीति (१९१८-२०) के नाम से ज्ञात है, उससे भेद करने के लिए इसे "नई" आर्थिक नीति कहा गया। युद्धकालीन कम्युनिज़्म की नीति के अंतर्गत मालों के उत्पादन

तथा वितरण का अत्यधिक केंद्रीकरण, मुक्त व्यापार का निषेध और फालतू पैदावार का अधिग्रहण सन्निहित था, जिसमें किसानों को अपनी सारी फ़ाज़िल पैदावार राज्य को देनी होती थी।

अनिवार्य अधिग्रहण की जिंसी कर से प्रतिस्थापना हो जाने के बाद किसान अपनी फ़ालतू पैदावार को अपनी मरज़ी के मुताबिक खुले बाज़ार में बेच सकते थे और अपनी ज़रूरत की उपभोक्ता वस्तुएं ख़रीद सकते थे।

[2] **व्ला० इ० लेनिन,** 'सोवियतों की अखिल रूसी तीसरी कांग्रेस', समापन भाषण, १८ (३१) जनवरी। व्ला० इ० लेनिन, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड ३, भाग १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १६६६।

[3] **मज़दूर फ़ैकल्टियां** १६२० में खोली गई थीं। ३–४ वर्ष के इन पाठ्य-क्रमों का उद्देश्य मज़दूरों और मेहनतकश किसानों को उच्च शिक्षा संस्थानों में दाखिला लेने के लिए तैयार करना था। ये फैकल्टियां १६४० तक रहीं।

[4] **स्कूल सहायता परिषदें** तीसरे दशक में कार्यरत थीं। ये परिषदें हर साल छात्रों के माता-पिताओं की आम सभा में चुनी जाती थीं। माता-पिता ही इनके सदस्य होते थे। ये परिषदें छात्रों की शिक्षा-दीक्षा में, चरित्र-निर्माण कार्य में सक्रिय भाग लेती थीं।

[5] **कार्ल मार्क्स,** 'फ़े० एंगेल्स के नाम पत्र। २८ जनवरी १८६३'।

[6] यहां चर्चा क० ग० बेक्कर की पुस्तक '**आधुनिक सांस्कृतिक संकट के प्रकाश में शिक्षा की समस्या**' से है।

[7] '**जनसमूह के लिए प्रविधि**' –यह अखिलसंघीय स्वैच्छिक संगठन मज़दूरों और किसानों में तकनीकी ज्ञान के प्रसार के लिए १६२८ में स्थापित किया गया था। इसके शिक्षक विभाग की अध्यक्ष क्रूप्स्काया थीं। १६३१ में इसे नवस्थापित आविष्कारक समाज में विलय कर दिया गया।

[8] '**अव्तोदोर**' (मोटर-पथ) – रूसी संघात्मक जनतंत्र में मोटर परिवहन के विकास और सड़कों के सुधार के लिए स्थापित समाज (१६२७–१६३५)।

[9] निरक्षरता अन्मूलन समाज – प्रौढ़ आबादी में निरक्षरता के उन्मूलन में सहयोग प्रदान करता रहा अखिल रूसी स्वैच्छिक समाज (१९२३–१९२६)। मिखाईल कलीनिन इस समाज के अध्यक्ष थे।

[10] **मार्क्सवादी शिक्षक समाज** सामाजिक विज्ञानों की कम्युनिस्ट अकादमी के अंतर्गत १९२९ में गठित किया गया था। इस समाज का ध्येय था शिक्षाशास्त्र, चरित्र-निर्माण और शिक्षा के प्रश्नों पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण पर काम करना। क्रूप्स्काया इस समाज की अध्यक्ष थीं। समाज स्कूलों का निरीक्षण करता था, शिक्षकों के लिए कोर्स और संगोष्ठियां आयोजित करता था, सोवियत शिक्षाशास्त्र और जनशिक्षा-पद्धति के तात्कालिक प्रश्नों पर वाद-विवाद का प्रबंध करता था। समाज ने १९३५ तक काम किया।

[11] १९२२ में स्थापित **स्कूली कार्य की विधियों का संस्थान** जनशिक्षा के इतिहास-सिद्धांत और संगठनों के प्रश्नों का तथा विभिन्न किस्म के शिक्षा प्रतिष्ठानों में कार्य विधियों और अंतर्य के प्रश्नों का अध्ययन करता था।

पोलीटेक्निकल शिक्षा संबंधी क़ानून के संदर्भ में कुछ विचार (१९३१)

[1] १९३० में पोलीटेक्निकल शिक्षा पर पहली अखिल रूसी कांग्रेस के बाद कतिपय बैठकें हुईं, जिनमें **पोलीटेक्निकल शिक्षा संबंधी क़ानून** तैयार किया गया। इस क़ानून की स्वीकृति नहीं दी गयी, किंतु रूसी जनतंत्र की जन-कमिसार परिषद ने स्कूलों को फ़ैक्टरियों, कारखानों और राजकीय फ़ार्मों से संलग्न करने संबंधी विशेष निर्णय स्वीकार किया। इसके आधार पर प्ररूपी समझौते तैयार किये गये, जिनमें यह प्रावधान था कि आर्थिक संगठन पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने में स्कूलों की मदद करेंगे – स्कूलों की वर्कशापों के लिए औज़ार, मशीनें देंगे, छात्रों के उत्पादन अभ्यास का प्रबंध करेंगे, शिक्षकों का कौशल बढ़ाने में सहायता करेंगे। ऐसे समझौते में और पोलीटेक्निकल शिक्षा लागू करने के सारे कार्य में व्यापक जन-संस्तरों की शिरकत सुनिश्चित की जाती थी।

[2] का० मार्क्स, 'पूंजी', खंड १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृष्ठ ५४९-५५०।

[3] वही, पृष्ठ ५५०-५५१।

[4] वही, पृष्ठ ५५१।

[5] वही, पृष्ठ ५४६।

सिद्धांत और व्यवहार (१९३१)

[1] यह लेख अखिल संघीय कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति का '**प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के बारे में**' निर्णय (सितंबर, १९३१) स्वीकार होने से पहले लिखा गया था। सोवियत स्कूलों में सामान्य शिक्षा की ओर ध्यान कम दिया जाने लगा था। इस सिलसिले में क्रूप्स्काया ने जीवन और स्कूल के, सिद्धांत और व्यवहार के संबंध के महत्व पर ज़ोर देते हुए व्यवहार के अतिमूल्यांकन तथा "सिद्धांत के प्रति अत्यधिक उपयोगितावादी रुख" के खिलाफ़ चेतावनी दी।

[2] **तुर्गेनिव, इवान सेर्गेयेविच** (१८१८–१८८३), महान रूसी लेखक।

[3] **नेक्रासोव, निकोलाई अलेक्सेयेविच** (१८२१–१८७८), विलक्षण रूसी कवि।

पोलीटेक्निकल शिक्षा और पायोनियर संगठन (१९३२)

[1] **पायोनियर संगठन**– सोवियत संघ में १० से १५ वर्ष तक के किशोर-किशोरियों का स्वैच्छिक संगठन है। इसकी स्थापना १९२२ में हुई थी।

[2] **व्ला० इ० लेनिन**, 'नरोदवादी मनसूबेबाज़ी के कमाल', १८९८।

[3] **व्ला० इ० लेनिन**, 'युवक संघों के कार्यभार', १९२० (व्ला० इ० लेनिन, 'सार्वजनिक शिक्षा के बारे में', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९८३, पृष्ठ ९६)।

[4] यहां अभिप्राय अखिल संघीय कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति द्वारा २१ अप्रैल १९३२ को स्वीकृत '**पायोनियर संगठन के काम के बारे में**' निर्णय से है। इसमें यह कार्यभार रखा गया था कि पायोनियर टोलियों में भी और अन्य सभी बच्चों में भी शिक्षा, श्रम और समाजोपयोगी व्यवहारिक कार्य के प्रति समाजवादी रवैया बनाना पायोनियर संगठन का केंद्रीय कार्यभार हो। कोमसोमोल के नेतृत्व में स्कूल के संगठनों और जनशिक्षा निकायों के साथ घनिष्ठ सहयोग करते हुए शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने, सचेतन अनुशासन लाने, स्कूली शिक्षा पोलीटेक्निकल बनाने के लिए नियमबद्ध रूप से संघर्ष किया जाये।

बीते चरण पर दृष्टिपात (१९३२)

[1] **व्ला० इ० लेनिन**, 'पार्टी कार्यक्रम पुनरीक्षण संबंधी सामग्री', अप्रैल – मई, १९१७।

[2] वही।

[3] यहां चर्चा '**मज़दूरों का तात्कालिक कार्यभार – बच्चों और किशोरों की श्रम-रक्षा**' शीर्षक लेख की है।

[4] **युद्धकालीन कम्युनिज़्म** – विवशतापूर्वक अपनायी गयी वह आर्थिक नीति थी जिसका अनुसरण १९१८–१९२० में किया गया था। उन वर्षों में शत्रु पर विजय पाने के लिए सभी उपलब्ध संसाधन जुटाना आवश्यक था। इस नीति की प्रमुख विशेषताएं थीं – मालों के उत्पादन तथा वितरण का चरम केन्द्रीयकरण, स्वतंत्र व्यापार पर प्रतिबंध और हुक्मी वसूली, जिसके अनुसार किसानों को अपने उपभोग के अतिरिक्त शेष सारी कृषि उपज राज्य को देनी होती थी।

[5] '**अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और पोलीटेक्निकल शिक्षा (१९३०)**' लेख पर टिप्पणी १ देखें।

[6] '**उदीयमान पीढ़ी की सार्विक शिक्षा और पोलीटेक्निकल श्रम के बारे में लेनिन के विचार**' लेख पर टिप्पणी १३ देखें।

अखिल संघीय कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केंद्रीय समिति को पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में नोट का मसौदा (१६३६)

क्रुप्स्काया अपने जीवन के अंतिम दिनों तक पोलीटेक्निकल और श्रम-शिक्षा के प्रश्नों पर काम करती रहीं। चौथे दशक के मध्य में उन्होंने उन दिनों स्कूल के जीवन से कटने की प्रवृत्ति के, "**स्कूलों की कार्यशालाएं और छात्रों का समाजोपयोगी श्रम बंद किये जाने के**" खतरे की ओर ध्यान दिलाया। इस प्रश्न पर उन्होंने पार्टी की केंद्रीय समिति को कई पत्र लिखे। 'नोट के मसौदे' में और इसके बाद के पत्रों में उन्होंने पोलीटेक्निकल और श्रम-शिक्षा के मूलभूत सैद्धांतिक-वैज्ञानिक आधार निरूपित किये, सामान्य शिक्षा विद्यालयों में पोलीटेक्निकल और श्रम-शिक्षा का युक्तिसंगत प्रबंध करने के बारे में सुझाव दिये।

2 **व्ला० इ० लेनिन**, 'युवक संघों के कार्यभार' (व्ला० इ० लेनिन 'सार्वजनिक शिक्षा के बारे में', प्रगति प्रकाशन, मास्को, १६८३ पृष्ठ ६६।

3 वही, पृष्ठ ६६।

4 चर्चा केंद्रीय समिति के निम्न निर्णयों की है: 'प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के बारे में' (१६३१) तथा 'प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रमों तथा दिनचर्या के बारे में (१६३२)।

परिच्छेद ३। श्रम-शिक्षा और चरित्र-निर्माण

क्या लड़कों को "औरतों के काम" सिखाने चाहिए? (१६१०)

1 **'वेस्त्निक वोस्पितानिया'** (शिक्षा-दीक्षा दूत) – माता-पिताओं और शिक्षकों के लिए सुबोध वैज्ञानिक पत्रिका, जो १८६० से १६१७ तक मास्को में प्रकाशित होती रही।

[2] क्रांतिपूर्व की अपनी रचनाओं में "**स्वतंत्र स्कूल**", की चर्चा करते समय क्रूप्स्काया यह स्पष्ट करती थीं कि ऐसा स्कूल, ऐसी शिक्षा-पद्धति समाजवादी समाज में मज़दूर वर्ग द्वारा ही बनाई जा सकती है।

बाल मंडलियों का काम (१६२६)

[1] **जान हेनरिक पेस्तालोज़्ज़ी** (१७४६–१८२७) स्विट्ज़रलैंड के जनवादी शिक्षाशास्त्री, जन विद्यालयों के एक प्रवर्तक। इन्होंने मातृ भाषा, अंकगणित, भूगोल और सरल ज्यामिति की प्राथमिक शिक्षा का सामान्य सिद्धांत और विधि सबसे पहले तैयार की। अपने बुनियादी शिक्षा सिद्धांत में पेस्तालोज़्ज़ी ने शिक्षण को बच्चे के चरित्र-निर्माण और विकास के साथ जोड़ा। शिक्षा को उत्पादक श्रम से संलग्न करने का विचार विकसित किया। नेइहोफ़ और स्तांज़ में अनाथालय तथा इवेरदन में अध्यापन प्रशिक्षण संस्थान खोला।

केंद्रीय समिति के स्कूल विभाग के, साथी म० प० मालिशेव के नाम पत्र

[1] '**अखिल संघीय कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केंद्रीय समिति को पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में नोट का मसौदा**' पर टिप्पणी १ देखें।

[2] **मालिशेव, म० प०** (१८८८–१९७५) – सोवियत सत्ता के पहले वर्षों से ही एक प्रमुख शिक्षाकर्मी। १६३१–१६४३ में शिक्षा जन-कमिसारियत के अनुसंधान संस्थानों, अखिल संघीय कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केंद्रीय समिति के स्कूल विभाग और अध्यापन प्रशिक्षण संस्थानों में काम किया। १६३८ से १६६६ तक 'नचाल्नया श्कोला' (प्राथमिक विद्यालय) पत्रिका के संपादक रहे।

परिच्छेद ४। स्कूल छात्रों का व्यवसाय-चयन संबंधी मार्गदर्शन

व्यवसाय का चयन (१९२५)

[1] चर्चा लेनिन के निम्न लेखों की है: '**विद्युतीकरण की रिपोर्ट पर प्रस्ताव का मसविदा**' तथा '**शिक्षा जन-कमिसारियत के कम्युनिस्ट कर्मियों को केंद्रीय समिति के निर्देश**', १९२०।

समाजवाद के निर्माण के सभी कार्यों के लिए कर्मी तैयार करें

[1] **व्ला० इ० लेनिन**, 'नयी पीढ़ी को', १९१९।

[2] **व्ला० इ० लेनिन**, 'प्रेस्न्या क्षेत्र के गैर-पार्टी सम्मेलन में भाषण', १९२०।

व्यवसाय का सही चयन (१९३२)

[1] **का० मार्क्स**, 'पूंजी', खंड १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृष्ठ ५४९-५५०।

व्यवसाय का स्वतंत्र चयन (१९३६)

[1] **जां जाक रूसो** (१७१२–१७७८) फ़्रांसीसी ज्ञानप्रसारक, दार्शनिक, लेखक। यूरोप के प्रगतिशील चिंतन, दर्शन, साहित्य और शिक्षाशास्त्र पर इनका प्रभाव पड़ा। अपनी रचनाओं में इन्होंने सामाजिक असमानता का विरोध किया। 'एमील अथवा शिक्षा-दीक्षा के बारे में' नामक अपने उपन्यास में इन्होंने नैसर्गिक अधिकार के अपने सिद्धांत की भावना में नव मानव के निर्माण की अपनी योजना पेश की।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

प्रगति प्रकाशन,
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

नदेज्दा कोन्स्तान्तीनोव्ना क्रूप्स्काया सोवियत शिक्षा-पद्धति के प्रवर्तकों में एक थीं। व्यापकतम ज्ञान की धनी और सुशिक्षित मार्क्सवादी शिक्षाशास्त्री क्रूप्स्काया ने अनेक वर्षों तक जनशिक्षा के प्रश्नों पर कार्य किया। लेनिन से निरंतर सलाह-मशविरा करते हुए उन्होंने समाजवादी स्कूली शिक्षा के कार्यभार निरूपित किये। शिक्षा के जीवन के साथ संबंध को, उत्पादक श्रम में छात्रों की शिरकत वह विशेषतः महत्वपूर्ण मानती थीं।

इतने वर्षों पश्चात भी क्रूप्स्काया की रचनाएं सोवियत शिक्षाशास्त्र की एक आधारशिला बनी हुई हैं। सोवियत सत्ता के पहले दशकों में क्रूप्स्काया द्वारा व्यक्त शिक्षा संबंधी विचार समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं, इनकी कारगरता सिद्ध हुई है।

प्रगति प्रकाशन